

कामयाबी का राज़

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान

कामयाबी का राज़

यह किताब मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान की
उर्दू किताब राज़-ए-हयात का हिंदी अनुवाद है।

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान

संपादन टीम

ख़ुर्रम इस्लाम कुरैशी

मोहम्मद आरिफ़

साजिद अनवर

First Published 2026

This book is copyright free and royalty free. It can be translated, reprinted, stored or used on any digital platform without prior permission from the author or the publisher. It can be used for commercial or non-profit purposes. However, kindly do inform us about your publication and send us a sample copy of the printed material or link of the digital work.
e-mail: info@goodwordbooks.com

CPS International

Centre for Peace and Spirituality International

1, Nizamuddin West Market, New Delhi-110013

e-mail: info@cpsglobal.org

www.cpsglobal.org

Goodword Books

A-21, Sector 4, Noida-201301

Delhi NCR, India

e-mail: info@goodwordbooks.com

www.goodwordbooks.com

Printed in India

प्रस्तावना

अल्फ्रेड एडलर (1870-1937) आज के ज़माने के एक मशहूर मनोवैज्ञानिक थे। उन्होंने ख़ास तौर पर 'व्यक्तिगत मनोविज्ञान' (individual psychology) पर काम किया था। उनके बारे में एक जानकार ने लिखा है—

“लोगों और उनकी छुपी हुई ताकतों पर पूरी ज़िंदगी रिसर्च करने के बाद महान मनोवैज्ञानिक अल्फ्रेड एडलर ने कहा कि इंसान की सबसे ख़ास बात है— माइनस को प्लस में बदल देने की उसकी क़ाबिलियत।”

इंसानों की छुपी हुई ताकतों को ज़िंदगीभर पढ़ने के बाद अल्फ्रेड एडलर ने कहा कि इंसान की सबसे ग़ज़ब की ख़ूबी है— 'ना' को 'हाँ' में बदल देना।

ईश्वर ने इंसान को बेहद ख़ास क़ाबिलियतों के साथ बनाया है। एक मनोवैज्ञानिक के ये शब्द उसी सच्चाई को मानते हैं। इस क़ाबिलियत की सीमा यह है कि इंसान अँधेरे में भी रोशनी की एक किरण देख सकता है। वह बुरे हालात को अच्छे हालात में बदल सकता है। जब उसके पैरों तले ज़मीन खिसक जाती है, तो भी वह अपने लिए एक नया मैदान ढूँढ़ लेता है और उसमें मेहनत करके दोबारा अपनी मंज़िल तक पहुँच जाता है।

यह किताब इंसानी ज़िंदगी के इसी पहलू के बारे में है। यह नामुमकिन में मुमकिन को ढूँढ़ने की एक कोशिश है। यह निराशा में आशा जगाने का एक संदेश है और शायद आज के इंसान को इसकी पहले से कहीं ज़्यादा ज़रूरत है।

मौलाना वहीदुद्दीन खान
(दिल्ली; 30 मई, 1986)

विषय-सूची

बा-मक़सद ज़िंदगी	13
रूढ़िवादी दिमाग	14
मक़सद	15
दिमाग में खून दौड़ाना	17
एक सपने में	18
विपरीत परिस्थितियाँ	19
मैं पहले खुद पढ़ूँगा, फिर दूसरों को पढ़ाऊँगा	20
एक नई ताक़त जाग उठी	22
बेकार मसरूफ़ियत	23
कुछ और करना बाक़ी है	24
शहद का सबक	26
मौक़ा कभी ख़त्म नहीं होता	27
कुदरत का सबक	28
सँभलकर चलना	29
ताक़त की मिसाल	30
ज़िंदगी की ताक़त	32
पेड़	33
पाने से पहले	34
प्रकृति का सिस्टम	35
प्रकृति का नियम	36
दृढ़ता	37
टूटने के बाद	38
दुनिया का नियम	39
बचाव का इंतज़ाम	40

भ्रष्टाचार.....	42
राष्ट्रीय चरित्र.....	43
ताक़त का राज.....	44
सकारात्मक सोच	45
अपनी कमियाँ पहचानो.....	46
खुद को बनाना	49
अच्छे चरित्र की मिसाल	50
चरित्र की ताक़त.....	51
चरित्र का मामला	52
एक अच्छा समाज.....	54
भरोसा कमाइए	55
आसान हल	56
दुनिया टाइपराइटर नहीं	57
सड़क की सीख.....	58
हकीक़त-पसंदी	60
एक नया दौर	62
खुदकुशी नहीं	63
और ताला खुल गया.....	64
शौक़ काफ़ी है	65
ज़्यादा बहस करना या ज़बान चलाना	67
हकीक़त-पसंदी	68
दुश्मनी के वक्रत भी	69
शिक्षा की अहमियत.....	70
उसके बावजूद	71
अपनी कोशिशों से.....	72
एक के बाद दूसरा.....	73

मौके का इस्तेमाल	74
हार में जीत	75
कामयाबी के लिए	77
कमी की भरपाई	78
बरबादी के बाद भी	79
तुम गरीब नहीं हो, अमीर हो!	81
कमजोरी ही बनी बड़ी नेमत	82
रोड क्लोज़्ड है	83
अफ़सोस मत कीजिए	85
नाकामयाबी ही बनी सीढ़ी	86
समझदार कौन है?	87
इतिहास बनाना	88
कोई चीज़ मुश्किल नहीं	89
अक्ल का इस्तेमाल	90
लचीलापन भी ज़रूरी है	91
गुस्से में मत आओ	92
सुरक्षित सफ़र	93
उलटी छलाँग	95
सबसे खतरनाक	96
बेमानी उछल-कूद	97
खुद ही जानना पड़ता है	98
नई पीढ़ी	99
बिना जाँच-पड़ताल के	100
जाँच-पड़ताल करिए	101
कामयाबी का सादा सिद्धांत	102

तलवार से ज़्यादा	103
इज़्जत की जगह	105
सबसे बड़ी गारंटी	106
ज़िंदगी की सड़क	107
एक कामयाब तरीका	108
काम है, मगर काम करने वाले नहीं	109
जितना दोगे, उतना पाओगे	110
देने वाले बनो	112
क्रद्रदानी	113
बनाने की जीत	115
मेहनत का ज़रिया	116
काम का शौक	117
एक एहसास	118
यह भी एक विरासत है	119
उसे स्कूल से निकाल दिया	121
बीस साल बाद	123
बेरोज़गारी	124
बड़ी कामयाबी	125
25 पैसे से	127
हर किसी को अपनी भूमिका निभानी पड़ती है	129
देरी नहीं	130
नामुवाफ़िक़ हालात तरक्की की सीढ़ी बन गए	131
बेहतर योजना से	133
नाकामयाबी का कारण	134
जड़ का काम	135

उलटा पिरामिड.....	137
शुरुआत नीचे से.....	138
बड़ी छलाँग कब?.....	139
शुरुआती तैयारी.....	140
क्रौम का पेड़ उगाने के लिए.....	141
सीढ़ी, न कि लिफ्ट	143
तंगी में चौड़ाई	144
इतनी अक्रल जानवर को भी होती है	146
व्यक्तिगत स्तर पर	147
सही दिशा में चलिए.....	148
बड़ा काम करने वाले.....	149
निरंतर कर्म.....	150
यह क्रीमत का नहीं, बड़े समय का सवाल है.....	152
पत्थर वाली सीख	153
यह तो खुद ही पता करना पड़ता है.....	154
पंद्रह साल में कामयाबी.....	155
ज़िद्दी इरादा	157
दो सौ साल.....	158
हार मान लेना	160
हक्रीकत को मानना.....	161
दूसरों का ख्याल.....	162
मौक़ा सिर्फ़ एक बार	163
झूठी बड़ाई.....	164
एक व्यावहारिक समाधान	165
दूर का रास्ता	166

अंदर और बाहर का फ़र्क	167
बेसब्री का नतीजा	169
जीने का रहस्य	170
सब्र की ज़रूरत	171
बिना प्रतिक्रिया दिए	172
आसानी हमेशा मुश्किलों के बाद आती है	173
अपनी कमियाँ पहचानो	175
सब्र की ज़मीन पर	176
बदला नहीं	178
एक अनिवार्य बुराई	179
छलाँग नहीं	180
हौसला और जज़्बा	181
सही सबक	182
खुदकुशी	183
दुनिया की लीडरशिप का राज	184
एक और तरीका भी है	185
हिम्मत और जिद	187
बिना उस्ताद के	188
संदेह	189
आलोचना	190
निराशा नहीं	192
टूटने के बाद	193
कामयाबी का राज	194
मुश्किल हालात	195
बड़ा काम	196

मुश्किलें हीरो बना देती हैं	197
कुर्बानी	198
उसी खर्च से	199
खामोश तामीर	200
कुर्बानी	202
कामयाबी की कीमत	203
वक्त के उलट	204
बताए बिना	205
जानकारी की कमी	206
गलत क्रदम	207
समझदारी के जरिए	208
खुद जानना पड़ता है	209
हालात का ख्याल	211
पहले जागरूकता पैदा कीजिए	212
आर्थिक हमला	213
बिना जाने बोलना	215
खुशी का राज	216
बुराई की जड़	217
कामयाब तरकीब	218
एक की जगह दो	219
ऊपर वाली जगह खाली है	221
कामयाब इंसान	222
खुद पर भरोसे का राज	223
क्राबिल बनिए	224
एक छोटी-सी तरकीब से	227

कुछ भी नहीं से सब कुछ तक	228
खास काबिलियत	229
स्व-निर्माता से इतिहास-निर्माता तक	230
एक रोल निभाना	231
फ़र्क की वजह	232
मिलकर काम करना	234
असली हल	235
सामूहिक काम	236
एकता का तरीका	237
मिलकर काम करना	238
एक प्रयोग	239
एकता की कीमत	241
एकता का राज	242
शिकायतें	243
अलग हो गए, तो लोहे के भाव बिकोगे	245
नफ़रत का तेजाब	246
मिज़ाज की अहमियत	247
अपने लिए कुछ, दूसरों के लिए कुछ	248
काम या नाम	249
संतुष्ट बनो	251
पागलपन	252
नक़ली इज़ाफ़ा	253
सबका फ़ायदा	254
ग़लतफ़हमी	255
मुश्किलें और मौक़े	257

एक बड़ा इंसान	258
उल्टा नतीजा	259
कामयाबी का राज यहाँ है.....	260
शेर का सबक	261
जवाब देने का तरीका	263
भड़काओ मत	264
झगड़े से बचकर	265
डी-गॉलवाद.....	267
कहानी बन गई.....	269
बुनियाद	271
इंसान की शख्सियत	272
गलती-पर-गलती	273
वजह खुद अपने अंदर	276
कनफेशन नहीं	277
गलती को मानना	278
स्वीकार करना	279
दूसरी गलती मत करो	280
देने के बाद पाना.....	281
रचनात्मक अल्पसंख्यक	282
जानकारी नहीं, बल्कि मानसिक रुझान	283
एक के बाद दूसरा	284
एक व्यापारिक राज.....	286
बेहतरिीन कामयाबी	287
शिकायत.....	288
चोटी के लोग	289

बा-मक़सद जिंदगी



एक्सप्रेस ट्रेन पूरी रफ़्तार से अपने मक़सद की तरफ़ भाग रही थी। पटरी के दोनों तरफ़ हरे-भरे खेत और बहती नदियों का नज़ारा बहुत ही ख़ूबसूरत था, लेकिन तेज़ दौड़ती ट्रेन को इन सुंदर नज़ारों में कोई दिलचस्पी नहीं थी। ऊँच-नीच, सूखी ज़मीन और पानी— इस सबका उसकी रफ़्तार पर कोई असर नहीं पड़ता। रास्ते में छोटे-छोटे स्टेशन आते, पर वह बिना रुके ही आगे निकल जाती मानो उसे कहीं भी रुकना ही नहीं है।

बा-मक़सद जिंदगी का मामला भी कुछ ऐसा ही है। जिस इंसान ने अपनी जिंदगी का एक लक्ष्य बना रखा हो, उसका सारा ध्यान अपने उसी मक़सद पर टिका रहता है। वह बेमतलब की बातों में अपना वक़्त ज़ाया नहीं करता।

एक बा-मक़सद इंसान उस यात्री की तरह होता है, जो हर पल अपनी मंज़िल की तरफ़ बढ़ना चाहता है। दुनिया के आकर्षक नज़ारे उसे लुभाने के लिए आते हैं, मगर वह उनसे आँखें मूँद लेता है। आराम करने वाली जगहें उसे रुकने के लिए कहती हैं, पर वह उन्हें छोड़कर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता रहता है। दूसरी चीज़ें उसके रास्ते में रुकावट बनती हैं, मगर वह उनसे बचता हुआ आगे बढ़ता जाता है। जिंदगी के उतार-चढ़ाव उससे टकराते हैं, लेकिन फिर भी उसके हौसले और रफ़्तार में कोई कमी नहीं आती।

बा-मक़सद इंसान की जिंदगी उस भटके हुए इंसान की तरह नहीं होती, जो बिना दिशा के कभी इधर भागता है, कभी उधर; बल्कि उसे अपने रास्ते और मंज़िल के बारे में साफ़-साफ़ पता होता है। उसके सामने एक तय लक्ष्य होता है। ऐसा इंसान कहीं भी रुक कैसे सकता है? वह दूसरी चीज़ों में उलझकर अपना वक़्त कैसे बरबाद कर सकता है? उसे तो हर तरफ़ से ध्यान हटाकर एक ही दिशा में बढ़ना है और तब तक बढ़ते रहना है, जब तक वह अपना लक्ष्य हासिल न कर ले।

जिंदगी को सार्थक बनाने के लिए ज़रूरी है कि इंसान के सामने एक सोचा-समझा मक़सद हो, जिसकी सच्चाई पर उसे यक़ीन हो, जिसे उसका दिल और दिमाग़ पूरी तरह से मानते हों और जो उसकी रगों में ख़ून की तरह दौड़ता हो। यही

मक़सद इंसान को जानवरों से अलग करता है। अगर यह न हो, तो इंसान और जानवर में कोई फ़र्क नहीं रह जाता और जिस इंसान के अंदर मक़सद आ जाता है, उसकी ज़िंदगी बदल जाती है। वह छोटी-मोटी बातों में उलझने के बजाय अपनी मंज़िल पर नज़र रखता है। वह एकाग्र होकर अपने तय लक्ष्य की तरफ़ बढ़ता रहता है, जब तक कि वह उसे हासिल नहीं कर लेता।



रूढ़िवादी दिमाग़



एलियास होवे (Elias Howe) अमेरिका के मशहूर शहर मैसाचुसेट्स का एक मामूली कारीगर था। उसका जन्म 1819 में हुआ और सिर्फ़ 48 साल की उम्र में 1867 में उसकी मौत हो गई, लेकिन उसने दुनिया को एक ऐसी चीज़ दी, जिसने कपड़ा उद्योग में क्रांति ला दी— यह थी सिलाई मशीन, जो उसने 1845 में बनाई।

शुरू में एलियास होवे ने जो मशीन बनाई, उसमें सुई में धागा डालने का छेद नीचे की तरफ़ था, जैसे आम तौर पर हाथ से सिलने वाली सुइयों में होता है। हज़ारों साल से इंसान सुई के नीचे वाले हिस्से में ही छेद बनाता आ रहा था, इसलिए जब होवे ने सिलाई मशीन बनाई, तो उसने भी पुराने चलन के हिसाब से सुई के नीचे ही छेद बनाया। इस वजह से उसकी मशीन ठीक से काम नहीं करती थी। शुरू में वह इस मशीन से सिर्फ़ जूते ही सिल पाता था। कपड़े की सिलाई इस मशीन से मुमकिन नहीं थी।

एलियास होवे लंबे समय तक इसी उलझन में फँसा रहा, लेकिन उसे कोई हल नहीं सूझ रहा था। आखिरकार उसने एक सपना देखा, जिसने उसकी समस्या हल कर दी।

उसने सपने में देखा कि एक जंगली क़बीले के लोगों ने उसे पकड़ लिया है और उसे हुक़म दिया है कि वह 24 घंटे के अंदर एक सिलाई मशीन बनाकर दे, नहीं तो उसे मार दिया जाएगा। उसने कोशिश की, लेकिन तय समय में वह मशीन बना नहीं पाया। जब समय पूरा हो गया, तो क़बीले के लोग उसे मारने के लिए

दौड़े। उनके हाथों में भाले थे। होवे ने गौर से देखा, तो हर भाले की नोक पर एक छेद था। यह देखते ही उसकी नींद खुल गई।

होवे को आइडिया आ गया। उसने भाले की तरह अपनी सुई की नोक पर भी छेद बनाया और उसमें धागा डाला। अब समस्या हल हो गई थी। धागे का छेद नीचे होने की वजह से जो मशीन काम नहीं कर रही थी, नोक पर छेद बनाने के बाद वह बिलकुल ठीक से काम करने लगी।

होवे की मुश्किल यह थी कि वह पुराने खयालात से ऊपर उठकर सोच नहीं पा रहा था। उसे लग रहा था कि जो चीज़ हजारों साल से चली आ रही है, वह सही है। जब उसके दिमाग ने उसे समस्या का दूसरा पहलू दिखाया, तो वह मामले को समझ गया और फ़ौरन हल कर लिया। जब इंसान पूरी तरह से किसी काम में जुट जाता है, तो वह उसके राज ऐसे ही खोज लेता है, जैसे इस शख्स ने खोज लिया।

मक़सद

1931 में जापान ने चीन के उत्तर-पूर्वी हिस्से मंचूरिया (Manchuria) पर क़ब्ज़ा कर लिया और वहाँ अपनी पसंद की सरकार बना दी, जिससे चीन और जापान के रिश्ते बिगड़ गए। 7 जुलाई, 1937 को बीजिंग (पेकिंग) के पास मार्को पोलो ब्रिज की घटना हुई। इसने दबे हुए जज़्बात भड़का दिए और दोनों देशों में लड़ाई छिड़ गई, जो आगे चलकर दूसरे विश्वयुद्ध तक पहुँच गई।

उस समय से चीन और जापान के बीच नफ़रत और तनाव बना रहा। कुछ साल पहले दोनों के बीच एक समझौता हुआ कि जापान चीन में एक स्टील प्लांट बनाएगा, लेकिन समझौता पूरा होने के बाद चीन की सरकार ने अचानक उसे रद्द कर दिया।

जब चीन के नए प्रधानमंत्री डेंग श्याओपिंग ने साम्यवादी (कम्युनिस्ट) सख्ती को कम किया और ओपन डोर पॉलिसी अपनाई, तो जापान को फिर से मौक़ा मिल गया। आज हालत यह है कि जापान ने चीन में व्यापार की ज़बरदस्त मुहिम छेड़ रखी है। अगर आप जापान से चीन जाना चाहें, तो आपको तीन

महीने पहले हवाई जहाज़ की टिकट बुक करनी होगी, क्योंकि हर फ्लाइट पूरी तरह भरी रहती है।

चीन में व्यापार के बड़े मौक़े हैं और जापान चाहता है कि उनका पूरा फ़ायदा उठाए। इसी मक़सद से जापान ने पुरानी कड़वी यादों को अचानक भुला दिया। एक यात्री के शब्दों में, “जापान ने तय कर लिया कि वह चीन की हर छोटी-बड़ी चुभन (Pinpricks) को चुपचाप सह लेगा।”

उस यात्री ने लिखा कि जून, 1985 में जब वह टोक्यो में था, रेडियो बीजिंग ने ऐलान किया कि चीन एक म्यूज़ियम बनाएगा, जहाँ तस्वीरों से दिखाया जाएगा कि अतीत में जापानियों ने चीनी लोगों पर कैसे ज़ुल्म किए। यह म्यूज़ियम 1987 में खुलेगा, जब मार्को पोलो ब्रिज की घटना को 50 साल पूरे होंगे। जब जापानियों से इस बारे में राय पूछी गई, तो उन्होंने चुप्पी साध ली। बहुत ज़ोर देने पर उन्होंने सिर्फ़ इतना कहा—

“आप जानते हैं, हमारे चीनी दोस्त हमारी पूँछ मरोड़ने और हमारे ज़मीर को जगाने का तरीक़ा जानते हैं।”

जापान के सामने सिर्फ़ एक मक़सद था— अपना व्यापार बढ़ाना। इस मक़सद ने जापान को एक चरित्र दिया। इसने उसे समझदारी, सब्र, बरदाश्त और कम बोलने की आदत सिखाई। इस मक़सद ने उसे बताया कि कैसे अतीत को भुलाकर सब झगड़े और शिकायतें दफ़न कर दे, ताकि आगे बढ़ने का रास्ता साफ़ हो जाए।

हमेशा एक मक़सद रखने वाले लोगों की यही मनोवृत्ति होती है— चाहे मक़सद व्यापार हो या कोई और चीज़। जब कोई क्रौम इन आदतों को खो देती है, तो इसका मतलब होता है कि उसने अपना मक़सद खो दिया है। जब सामने कोई मक़सद नहीं होता, तो इंसानों का कोई चरित्र भी नहीं बनता।

आज हमारी क्रौम की सबसे बड़ी कमज़ोरी यही है— चरित्रहीन होना। जिस भी मैदान में देख लीजिए, आपको लगेगा कि लोगों ने अपना चरित्र खो दिया है। उन पर कोई मज़बूत योजना खड़ी नहीं की जा सकती। वे हमेशा कमज़ोर ईंट साबित होते हैं, मज़बूत ईंट नहीं।

इस कमज़ोरी की असली वजह यही है कि आज हमारी पूरी क्रौम ने मक़सद का एहसास खो दिया है। वे एक बे-मक़सद गिरोह बनकर रह गए हैं। उनके सामने

न दुनिया बनाने का लक्ष्य है, न परलोक की दुनिया बनाने का। यही उनकी असली कमजोरी है। अगर लोगों में फिर से मक़सद का एहसास जगा दिया जाए, तो वे फिर से एक जिंदा और ताक़तवर क्रौम बन जाएँगे। वे फिर से वैसा ही चरित्रवान गिरोह बन जाएँगे, जैसा वे पहले थे।

इंसान के अंदर जब मक़सद का एहसास पैदा होता है, तो उसके अंदर सब कुछ पैदा हो जाता है। मक़सद उसकी छिपी हुई ताक़तों को जगा देता है और उसे एक नया इंसान बना देता है।



दिमाग़ में खून दौड़ाना



प्रोफ़ेसर पॉल डिराक का जन्म 1902 में हुआ था। अक्टूबर, 1984 में उनका 82 साल की उम्र में फ़्लोरिडा में निधन हो गया। उन्हें न्यूटन और आइंस्टीन के बाद के ज़माने का सबसे मशहूर वैज्ञानिक माना जाता है। उन्हें नोबेल पुरस्कार और बहुत सारे दूसरे सम्मान मिले।

‘क्वांटम मैकेनिकल थ्योरी’ का श्रेय पॉल डिराक को जाता है। यह वैज्ञानिक सिद्धांत परमाणु के बहुत छोटे कणों के बारे में बताता है। उन्होंने सबसे पहले एंटी-मैटर के होने का अंदाज़ा लगाया था, जो बाद में और रिसर्च से साबित हो गया। इसलिए जब ‘द गार्डियन’ (4 नवंबर, 1984) ने पॉल डिराक पर एक आर्टिकल छपा तो उसकी हेडलाइन यह थी—

एंटी-यूनिवर्स का भविष्यवक्ता

पॉल डिराक ने परमाणु में सबसे पहला एंटी-पार्टिकल खोजा, जिसे पॉज़िट्रॉन कहते हैं। इस खोज ने न्यूक्लियर फिज़िक्स में एक क्रांति ला दी। जब लोग पॉल डिराक से पूछते थे कि उन्होंने परमाणु से भी छोटे पदार्थ की प्रकृति के बारे में इतना हैरान करने वाला विचार कैसे ढूँढा, तो वे समझाते थे कि वे अपने स्टडी रूम के फ़र्श पर इस तरह लेट जाते थे कि उनके पैर ऊपर रहते थे, ताकि खून उनके दिमाग़ की तरफ़ दौड़े।

यह सुनने में एक मज़ाक़ लगता है, लेकिन असलियत यह है कि कोई भी

बड़ा बौद्धिक काम वही इंसान कर पाता है, जो अपने पूरे शरीर का खून अपने दिमाग में जमा कर दे।

ज्यादातर लोगों की हालत यह होती है कि उनकी ताकत बँटी हुई होती है। वे खुद को एक ही जगह पर केंद्रित नहीं करते, इसलिए वे अधूरी जिंदगी जीकर इस दुनिया से चले जाते हैं। हर काम इंसान से उसकी पूरी ताकत माँगता है। वह इंसान बड़ी कामयाबी हासिल करता है, जो अपनी पूरी ताकत एक ही काम में लगा दे।

एक सपने में

श्री रामरतन कपिला फ्रिज और एयर कंडीशनर का बिज़नेस करते हैं। उनकी कंपनी का नाम कैप्संस है और इसका हेड ऑफिस नई दिल्ली के आसफ़ अली रोड पर है।

श्री रामरतन कपिला को अपनी कंपनी के लिए एक स्लोगन चाहिए था। उन्होंने अखबार में विज्ञापन दिया कि जो व्यक्ति कम शब्दों में एक अच्छा स्लोगन बनाकर देगा, उसे अच्छा इनाम दिया जाएगा। बार-बार विज्ञापन देने के बाद भी कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला, जो एक अच्छा स्लोगन दे सके। कुछ लोगों ने कुछ वाक्य लिखकर भेजे, लेकिन श्री कपिला को वे पसंद नहीं आए। उन्होंने 4 दिसंबर, 1983 की एक मीटिंग में कहा, “स्लोगन पैनेट्रेटिंग (गहरा असर छोड़ने वाला) होना चाहिए,” लेकिन ये नारे पैनेट्रेटिंग नहीं थे।

श्री कपिला इसी उलझन में दिन-रात लगे रहे। वे लगातार इसी के बारे में सोचते रहे। उनका दिमाग हमेशा नारे की तलाश में लगा रहता था, लेकिन कामयाबी नहीं मिल रही थी।

इसी चिंता में लगभग छह साल बीत गए। इसके बाद एक दिन ऐसा हुआ कि श्री कपिला ने एक रात एक सपना देखा। सपने में उन्होंने देखा कि वे एक बगीचे में हैं। मौसम बहुत सुहावना है। तरह-तरह की चिड़ियाँ पेड़ों पर चहचहा रही हैं। यह नज़ारा देखकर वे बहुत खुश हो गए और उनके मुँह से अपने आप निकल गया—

मौसम हो तो ऐसा।

यह कहते ही उनकी आँख खुल गई अचानक उन्हें एहसास हुआ कि उन्हें वह स्लोगन मिल गया है, जिसकी तलाश में वे सालों से थे। तुरंत उनके दिमाग में यह अंग्रेजी वाक्य बन गया—

KAPSONS: The weather masters (कैप्संस : मौसम के मालिक)

सपना इंसानी दिमाग की वह गतिविधि है, जो वह नींद की हालत में भी जारी रखता है। अगर आप अपने दिमाग को पूरे दिन किसी चीज़ में लगाए रखेंगे, तो रात के वक्त वही चीज़ आपके सपने में आएगी। इतिहास की बहुत-सी खोजें सपनों के जरिए हुई हैं। इसकी वजह यह थी कि खोज करने वाला अपनी खोज में इतना डूबा हुआ था कि उसे नींद में भी उसी के सपने आने लगे। सपना असल में किसी चीज़ में पूरी तरह से दिमाग लगाने का नतीजा है। ऐसे इंसान का काम करने का समय 12 घंटे की जगह 24 घंटे हो जाता है। यही किसी भी मक़सद में कामयाब होने का राज है। इस तरह की गहरी लगन के बिना लोक या परलोक के लिए कोई बड़ा काम नहीं किया जा सकता।



विपरीत परिस्थितियाँ



सर वॉल्टर स्कॉट (1771-1832) को अंग्रेजी साहित्य में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, लेकिन उनकी इस साहित्यिक महानता के साथ उस क्रीमत को भी समझना आवश्यक है, जो उन्होंने अपने साधारण जीवन में चुकाई। उनकी साधारण जिंदगी ने उन्हें हालात का ऐसा शिकार बनाया कि उन्हें अपनी पहचान के लिए ज़बरदस्त जद्दोजहद करनी पड़ी।

जीवन के आरंभिक वर्षों में वॉल्टर स्कॉट को असाधारण प्रतिभा का व्यक्ति नहीं माना जाता था। 30 वर्ष की आयु तक उनका जीवन किसी महान कवि या लेखक जैसा नहीं था। हालात ने उन्हें व्यापारिक जिम्मेदारियों का बोझ उठाने के लिए मजबूर कर दिया। हालाँकि उनकी शुरुआती कविताओं ने उन्हें थोड़ा-बहुत वित्तीय सहारा तो दिया, लेकिन इसी सहारे के दम पर उन्होंने कुछ कारोबारी जोखिम उठा लिये।

वक्रत ने ऐसी करवट ली कि उनके हालात बद से बदतर हो गए। इन कड़े इम्तिहानों ने उनकी शख्सियत को जड़ से झकझोरकर रख दिया, लेकिन कहते हैं न कि 'मुसीबत इंसान को तराशती है'; इन मुश्किलों ने वॉल्टर स्कॉट को अंदर से पूरी तरह बदल दिया और उनके ज़हन को मेहनत के एक नए और विशाल मैदान की ओर मोड़ दिया। यहीं से उनके जीवन का दूसरा निर्णायक अध्याय आरंभ होता है। उन्होंने शौर्य और प्रेम से भरी ऐतिहासिक कथाएँ लिखनी शुरू कीं। उन्होंने इतिहास को उपन्यास की शैली में ढालते हुए प्रेम-कथाओं की रचना की।

कारोबार में मिले झटकों ने उन्हें इस रास्ते पर धकेल दिया था। अगले करीब 35 सालों तक उन्होंने अपनी पूरी तवज्जोह और ताकत इसी काम में झोंक दी। उस दौर में उनकी रचनाओं की बाज़ार में बहुत ऊँची कीमत मिलना मुमकिन नहीं था, लेकिन उनकी रचनाओं में ऐसा आकर्षण था कि प्रकाशकों का ध्यान स्वाभाविक रूप से उनकी ओर खिंचता चला गया।

आखिरकार वॉल्टर स्कॉट की बेमिसाल लगन और मेहनत ही उनकी कामयाबी की गारंटी बनी। उनकी किताबें खूब बिकीं और उन्होंने अपना पाई-पाई कर्ज़ उतार दिया। सच तो यह है कि अगर उन पर मुसीबतों का पहाड़ न टूटा होता, तो शायद उनके भीतर छिपा वह 'लेखक' कभी बाहर न आता, जिसने उन्हें अंग्रेज़ी साहित्य में एक असाधारण मुक़ाम दिलाया।

उनकी इसी साहित्यिक सेवा के लिए उन्हें 'सर' की उपाधि से सम्मानित किया गया। मज़े की बात यह है कि वॉल्टर स्कॉट कभी खुद को साहित्य के ऊँचे दर्जों का दावेदार नहीं मानते थे। वे न तो किसी प्रतिष्ठित अकादमिक पद पर थे, न ही किसी साहित्यिक सत्ता के केंद्र में, लेकिन उनकी सादगी और संघर्ष ने ही उन्हें वह महान 'सर वॉल्टर स्कॉट' बना दिया, जिसे आज सारी दुनिया जानती है।

मैं पहले खुद पढ़ूँगा, फिर दूसरों को पढ़ाऊँगा



फादर हेनरी हेरास (1889-1956) एक स्पेनिश ईसाई पादरी थे। वे 34 साल की उम्र में 18 नवंबर, 1922 को बंबई (मुंबई) के किनारे जहाज़ से उतरे। भारत की

धरती ने उन्हें बहुत प्रभावित किया। उन्हें लगा कि उनके प्रचार करने के जोश के लिए इस देश में काम करने का बहुत अच्छा मौक़ा है। उन्होंने तय कर लिया कि वे यहीं रहकर अपने प्रचार का काम करेंगे, लेकिन भारत उनका अपना देश नहीं था। काम शुरू करने से पहले ज़रूरी था कि यहाँ उनके रहने की कोई जगह या आधार हो। यहाँ अपनी जगह बनाकर ही वे यहाँ के लोगों के बीच अपने प्रचार के काम को चला सकते थे। उन्होंने तय किया कि वे भारत में एक टीचर के रूप में रहेंगे और उसके बाद कॉलेज में और कॉलेज के बाहर अपने लिए काम का इंतज़ाम करेंगे। बंबई का 'हेरास इंस्टीट्यूट' आज भी उनकी याद दिलाता है।

हेरास कुछ दिनों बाद सेंट ज़ेवियर्स कॉलेज (बंबई) के प्रिंसिपल से मिले। प्रिंसिपल एक इतिहासकार (Historian) भी थे। फादर हेरास ने अपने देश से इतिहास की डिग्री ले रखी थी। प्रिंसिपल ने उनके काज़ात देखकर पूछा, "आप यहाँ कौन-सा इतिहास पढ़ाना पसंद करेंगे?"

फादर हेरास ने तुरंत जवाब दिया, "भारतीय इतिहास।"

प्रिंसिपल का अगला सवाल था, "भारतीय इतिहास में आपने क्या पढ़ा है?"
उन्होंने कहा, "कुछ भी नहीं।"

प्रिंसिपल ने पूछा, "फिर आप भारतीय इतिहास कैसे पढ़ाएँगे?"

फादर हेरास का जवाब था, "मैं इसे पहले खुद पढ़ूँगा। मैं खुद को भारतीय इतिहास पढ़कर तैयार करूँगा, फिर उसे पढ़ाऊँगा।"

फादर हेरास जानते थे कि वे टीचर का काम कोई नौकरी के तौर पर नहीं कर रहे हैं, जहाँ वे यूरोप का इतिहास या कोई भी विषय पढ़ा दें और महीने के अंत में तनख्वाह लेकर खुश हो जाएँ। उनके लिए टीचर बनने का एक खास मक़सद था और वह यह था कि वे अपने प्रचार के काम के लिए एक अच्छा आधार तैयार करें और इस मक़सद के हिसाब से उनके लिए 'भारतीय इतिहास' सबसे सही विषय था। वे भारत में थे, इसलिए भारतीय इतिहास के टीचर बनकर वे यहाँ के नौजवानों के बीच अपने धर्म का प्रचार बेहतर तरीक़े से कर सकते थे। यही वजह थी कि भारतीय इतिहास के बारे में कुछ न जानने के बावजूद भी उन्होंने इसे ही चुना।

उन्होंने भारतीय इतिहास पढ़ने में इतनी मेहनत की कि वे न सिर्फ़ इसके अच्छे टीचर बने, बल्कि भारतीय इतिहास में जदुनाथ सरकार और डॉक्टर सुरेंद्रनाथ सेन जैसे बड़े इतिहासकारों के बराबर के माने जाने लगे।



एक नई ताक़त जाग उठी



इटली के गेरार्ड ने पश्चिम के लोगों (लैटिनों) के लिए वही काम किया, जो हुनैन इब्न इसहाक़ ने पूरब के अरबों के लिए किया था। उसने अरबी भाषा से दर्शनशास्त्र, गणित, दवाई और प्राकृतिक विज्ञान की अनगिनत किताबों का लैटिन भाषा में अनुवाद कर डाला।

गेरार्ड का जन्म 1114 ईस्वी में इटली के क्रेमोना शहर में हुआ था। उसे अरबी भाषा अच्छी तरह आती थी। टॉलेमी की अरबी में किताब ‘अलमजेस्ट’ की तलाश में वह टोलेडो शहर आया। सन् 1175 में उसने इस किताब का लैटिन भाषा में अनुवाद किया। अरबी किताबों का अनुवाद करने वालों में वह सबसे मशहूर शाख्स बन गया। एक ईसाई विद्वान और एक यहूदी विद्वान इस काम में उसके सहायक थे। उसने पहली बार यूनानी और अरबी विज्ञान के दरवाज़े पश्चिमी दुनिया के लिए खोल दिए। उसके बाद और भी बहुत-से लोग आए, जिन्होंने इस मामले में उसकी नक़ल की। डॉक्टर मैक्स मेयरहॉफ़ के शब्दों में, “वह यूरोपीय दुनिया में अरबी ज्ञान का संस्थापक था।”

दवाई के क्षेत्र में गेरार्ड ने हिप्पोक्रेट्स और गैलेन की किताबों, हुनैन के लगभग सभी अनुवादों, अल-किंदी की सारी किताबों, बू अली सीना (Avicenna) की मोटी किताब ‘क्रानून’ और अबुल क़ासिम जहरावी की किताब ‘सर्जरी’ का अनुवाद कर दिया। भौतिक विज्ञान (Physics) में उसने अरस्तू की बहुत-सी किताबों का अरबी से अनुवाद किया, जिनमें खनिज पदार्थों (minerals) पर वह लेख भी शामिल है, जो अरस्तू का बताया जाता है। इसके अलावा इस विज्ञान की शाखा में उसने अल-किंदी, अल-फ़ाराबी, इसहाक़ और साबित आदि की किताबों को भी लैटिन में अनुवाद किया।

सन् 1187 में गेरार्ड बीमार पड़ गया। उसे लगा कि अब उसकी मौत नज़दीक है। यह सोचकर कि अगर मैं मर गया, तो क़ीमती अरबी किताबों का पश्चिमी भाषाओं में अनुवाद कौन करेगा? वह बहुत परेशान हुआ। उसके अंदर काम करने

की एक नई ताक़त जाग उठी। बीमारी के बावजूद उसने बची हुई अरबी किताबों का अनुवाद शुरू कर दिया, जो उसने अपने पास जमा की थीं। कहा जाता है कि अपनी मौत से पहले सिर्फ़ एक महीने के अंदर ही उसने लगभग अस्सी किताबों के अनुवाद पूरे कर लिये।

काम करना असल में जुनून से जुड़ा है, सेहत और ताक़त से नहीं। अगर इंसान के अंदर कुछ करने की आग भड़क उठे, तो वह उस काम को हर हाल में कर डालता है, चाहे वह बीमारी के बिस्तर पर ही क्यों न पड़ा हो और चाहे बाहरी हालात कुछ भी कहते हों।

बेकार मसरूफ़ियत

सालज़नीत्सिन (Alexander Solzhenitsyn) एक रूसी उपन्यासकार थे। उन्हें रूसी जनता के दुखों का एहसास हुआ और उन्होंने इसे अपनी कहानियों में प्रतीकात्मक रूप से दिखाना शुरू किया। इसके नतीजे में वे रूस की कम्युनिस्ट सरकार की नज़र में एक अवांछित व्यक्ति बन गए। आखिरकार उन्हें अपना वतन छोड़कर अमेरिका में शरण लेनी पड़ी। वे अमेरिका के एक छोटे-से शहर वर्मांट (Vermont) में चुपचाप रहने लगे और अपने विचारों को किताबों के रूप में लिखने में जुट गए।

मई, 1982 में सालज़नीत्सिन को अमेरिकी सरकार की तरफ़ से एक निमंत्रण मिला। उनके सम्मान में वाशिंगटन के व्हाइट हाउस में एक सरकारी समारोह का आयोजन किया गया था, जिसमें दूसरे महत्वपूर्ण लोगों के अलावा खुद अमेरिकी राष्ट्रपति (President Reagan) भी शामिल होने वाले थे। इस दौरान अमेरिकी राष्ट्रपति और सालज़नीत्सिन के बीच 15 मिनट की एक खास मुलाक़ात भी तय थी।

सालज़नीत्सिन ने अमेरिकी राष्ट्रपति के नाम 3 मई, 1982 को एक जवाबी ख़त लिखा, जिसमें उन्होंने समारोह में शामिल होने में अपनी पूरी तरह से असमर्थता ज़ाहिर की। उन्होंने लिखा कि मेरे पास जो थोड़ा-सा समय बचा है, वह

मुझे यह इजाज़त नहीं देता कि मैं औपचारिक मुलाक़ातों में उसे बरबाद कर दूँ—
“मेरे पास जो ज़िंदगी बची है, उसमें दिखावटी मुलाक़ातों के लिए कोई
समय नहीं है।”

सालज़नीत्सिन के सामने एक सीमित मक़सद था यानी रूसी लोगों की
दुखभरी ज़िंदगी को उपन्यास के ज़रिए पेश करना। इस मक़सद ने उनका इतना
समय ले लिया कि उनके पास अमेरिकी राष्ट्रपति के निमंत्रण को ठुकराने के सिवा
कोई चारा नहीं बचा।

इंसान के सामने अगर कोई साफ़ मक़सद होता है, तो उसकी यही हालत
होती है, मगर जब इंसान की ज़िंदगी मक़सद से ख़ाली हो जाती है, तो उसकी
नज़र में अपने समय की कोई क़ीमत नहीं रह जाती। वह अपना मूल्यांकन अपनी
राय से करने के बजाय दूसरों की राय से करने लगता है। वह रस्मी जलसों और
समारोहों में रौनक का सामान बनता रहता है। वह दूसरों के लिए जीने लगता है,
ख़ुद के लिए नहीं। यहाँ तक कि उसकी उम्र पूरी हो जाती है। दिखने में मसरूफ़ियत
से भरी हुई एक ज़िंदगी इस तरह अपने अंत को पहुँचती है कि उसके पास एक
ख़ाली ज़िंदगी के सिवा और कोई पूँजी नहीं बचती।



कुछ और करना बाक़ी है



अठारहवीं सदी में उन अंग्रेज़ों में, जिनकी कुर्बानियों से भारत में अंग्रेज़ों का
साम्राज्य कायम हुआ, लॉर्ड रॉबर्ट क्लाइव (1725-1774) का नाम सबसे ऊपर
आता है। सन् 1743 में जब वह सिर्फ़ 18 साल का था, वह ईस्ट इंडिया कंपनी
में एक क्लर्क की हैसियत से मद्रास आया। उस वक़्त उसकी सालाना तनख़्वाह
महज़ पाँच पौंड थी। यह रक़म उसके खर्च के लिए बिलकुल नाकाफ़ी थी। इस
वजह से वह क़र्ज़ के बोझ तले दबा रहता और ना-उम्मीदी और चिड़चिड़ाहट में
अपने साथियों व अफ़सरों से लड़ता-झगड़ता रहता।

फिर एक वाक़या ऐसा हुआ, जिसने उसकी ज़िंदगी की दिशा ही बदल दी।
अपनी नाकामयाब ज़िंदगी को ख़त्म करने के मक़सद से उसने एक दिन भरी हुई

पिस्तौल ली, अपने सिर पर रखी और घोड़ा दबा दिया, लेकिन उसकी हैरानी की कोई हद न रही, जब उसने देखा कि पिस्तौल नहीं चली। उसने पिस्तौल खोलकर देखा, तो वह गोलियों से भरी पड़ी थी। अपनी जान लेने की पक्की नीयत के बावजूद वह बिलकुल जिंदा था।

यह एक बेहद अजीब और चमत्कारी घटना थी। रॉबर्ट क्लाइव यह देखकर चिल्लाया— “ज़रूर ईश्वर ने तुम्हें किसी खास काम के लिए बचाया है!” उसने फ़ौरन अपनी क्लर्क की नौकरी छोड़ दी और अंग्रेज़ी फ़ौज में भर्ती हो गया। उस वक़्त अंग्रेज़ और फ़्रांसीसी दोनों ही भारत में अपना ठिकाना बनाने की कोशिश में थे। इसी सिलसिले में दोनों के बीच जंग छिड़ गई। इस लड़ाई में रॉबर्ट क्लाइव ने शानदार क्राबिलियत और बहादुरी दिखाई। उसके बाद उसने तरक्की की और अंग्रेज़ी फ़ौज में कमांडर-इन-चीफ़ बन गया। वही क्लाइव, जो ना-उम्मीद होकर खुदकुशी करने पर उतारू था, आगे चलकर इतिहास में भारत को जीतने वाले पहले अंग्रेज़ों में से एक के तौर पर दर्ज हुआ।

हममें से हर किसी के साथ कभी-न-कभी ऐसा होता है कि वह किसी बड़े खतरे में फँसने के बावजूद चमत्कारिक ढंग से बच जाता है, मगर बहुत कम लोग होते हैं, जो रॉबर्ट क्लाइव की तरह इससे सबक लेते हैं, जो ऐसी घटनाओं में कुदरत का यह इशारा पढ़ लेते हैं कि “तुम्हारा अभी वक़्त नहीं आया, दुनिया में अभी तुम्हें अपना काम करना बाक़ी है।”

हर इंसान को दुनिया में काम करने के लिए एक निश्चित वक़्त और कुछ मौक़े दिए गए हैं। यह वक़्त और मौक़े तब तक नहीं छीने जाते, जब तक ईश्वर का लिखा पूरा नहीं हो जाता। अगर रात के बाद ईश्वर आप पर सुबह का उजाला करे, तो समझ लीजिए कि ईश्वर की नज़र में आपके पास करने के लिए अभी कुछ दिन और बाक़ी हैं। अगर आप हादसों से भरी इस दुनिया में अपनी जान बचाने में कामयाब होते हैं, तो इसका मतलब है कि ईश्वर की योजना के मुताबिक़ आपको कुछ और करना है, जो आपने अभी तक नहीं किया।



शहद का सबक



मधुमक्खियाँ फूलों से रस (Nector) इकट्ठा करती हैं, लेकिन वह सारा-का-सारा शहद नहीं बनता। उस रस का बस एक-तिहाई हिस्सा ही शहद बन पाता है। सिर्फ एक पौंड शहद बनाने के लिए मधुमक्खियों को लगभग 20 लाख फूलों का रस इकट्ठा करना पड़ता है। इसके लिए मधुमक्खियों को करीब 30 लाख उड़ानें भरनी पड़ती हैं और इस दौरान वे कुल मिलाकर लगभग 50 हजार मील का सफ़र तय करती हैं। जब यह रस ज़रूरी मात्रा में इकट्ठा हो जाता है, तब शहद बनाने की प्रक्रिया शुरू होती है।

शहद अपने शुरुआती दौर में पानी की तरह पतला होता है। शहद बनाने वाली मक्खियाँ अपने परों को पंखे की तरह हिला-हिलाकर फ़ालतू पानी को भाप बनाकर उड़ा देती हैं। जब यह पानी उड़ जाता है, तो एक मीठा तरल बच जाता है, जिसे मक्खियाँ चूस लेती हैं। मक्खियों के मुँह में ख़ास ग्रंथियाँ (glands) होती हैं, जो अपने काम से इस मीठे तरल को शहद में बदल देती हैं। फिर मक्खियाँ इस तैयार शहद को छत्ते के ख़ास बने हुए छोटे-छोटे कोषों (cells) में भर देती हैं। ये कोष दूसरी मक्खियाँ मोम से बेहद बारीकी और मेहनत से बनाती हैं। मक्खियाँ शहद को इन कोषों में भरकर उसे 'डब्बाबंद' खाने की तरह बंद कर देती हैं, जिससे वह भविष्य में इंसानों के काम आता है।

शहद की तैयारी में ऐसे अनगिनत काम और प्रक्रियाएँ शामिल हैं। ईश्वर चाहता, तो जादू की तरह एक पल में शहद पैदा कर देता या फिर पानी की तरह शहद की नदियाँ बहा देता, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। इतनी ताक़त के बावजूद ईश्वर शहद को कारण और प्रभाव (cause and effect) की एक बेहद पेचीदा प्रणाली के ज़रिए बनाता है। यह इंसानों को एक सबक सिखाने के लिए है, ताकि वह समझे कि ईश्वर ने दुनिया का सिस्टम कैसे बनाया है और किन नियमों का पालन करके कोई व्यक्ति इस दुनिया में कामयाब हो सकता है।

मधुमक्खी जिस तरह काम करती है, उसे एक शब्द में कहें तो योजनाबद्ध कार्यवाही (planned action)। यही सिद्धांत इंसानों पर भी लागू होता है। इंसान भी तभी कोई सार्थक कामयाबी हासिल कर सकता है, जब वह योजना बनाकर

और व्यवस्थित तरीके से अपने मक़सद तक पहुँचने की कोशिश करो। संगठित और योजनाबद्ध कार्यवाही ही इस दुनिया में कामयाबी पाने का एकमात्र पक्का तरीका है, चाहे वह मधुमक्खी के लिए हो या इंसान के लिए।



मौक़ा कभी ख़त्म नहीं होता



पश्चिम की तरफ़ फैले पहाड़ों के ऊपर सूरज डूब रहा था। सूरज का आधा हिस्सा पहाड़ की चोटियों के पीछे छुप चुका था और आधा हिस्सा अभी भी दिख रहा था। थोड़ी देर बाद पूरा सूरज ऊँचे पहाड़ों के पीछे डूब गया।

चारों तरफ़ अँधेरा छाने लगा। सूरज की रोशनी धीरे-धीरे कम होती गई। ऐसा लग रहा था मानो सारा माहौल गहरे अँधेरे में डूब जाएगा, लेकिन ठीक उसी वक़्त आसमान के दूसरी तरफ़ एक दूसरी रोशनी दिखनी शुरू हुई। यह बारहवीं रात का चाँद था, जो सूरज के डूबने के बाद उसकी उलटी दिशा से चमकने लगा और कुछ ही देर में वह पूरी तरह से जगमगा उठा। सूरज की रोशनी के जाने के बाद ज़्यादा वक़्त नहीं बीता था कि एक नई रोशनी ने माहौल पर कब्ज़ा कर लिया।

‘यह कुदरत का इशारा है,’ मैंने अपने मन में सोचा, ‘जब एक मौक़ा ख़त्म होता है, तभी दूसरे मौक़े की शुरुआत हो जाती है। सूरज डूबा, तो दुनिया ने चाँद से अपनी महफ़िल रोशन कर ली।’

ठीक इसी तरह इंसानों और क़ौमों के उभरने के मौक़े कभी ख़त्म नहीं होते। अगर ज़माना किसी को एक बार गिरा भी दे, तो ईश्वर की इस दुनिया में उसके लिए ना-उम्मीद होने का कोई सवाल ही नहीं। वह नए मौक़ों का इस्तेमाल करके दोबारा अपने उभरने का बंदोबस्त कर सकता है। ज़रूरत बस इतनी है कि इंसान समझदारी दिखाए और लगातार कोशिशों से कभी थके नहीं।

ईश्वर ने इस दुनिया को हैरतअंगेज़ संभावनाओं के साथ बनाया है। यहाँ पदार्थ (matter) ख़त्म होता है, तो वह ऊर्जा (energy) बन जाता है। अँधेरा आता है, तो उसी के अंदर से एक नई रोशनी निकल आती है। एक इमारत गिरती है, तो वह

दूसरी इमारत बनाने के लिए ज़मीन खाली कर देती है। यही बात इंसानी ज़िंदगी की घटनाओं पर भी लागू होती है। यहाँ हर नाकामी के अंदर से एक नई कामयाबी की संभावना पैदा हो जाती है। दो क्रौमों की प्रतिस्पर्धा (competition) में अगर एक क्रौम आगे निकल जाए और दूसरी क्रौम पीछे रह जाए, तो बात यहीं खत्म नहीं हो जाती। उसके बाद एक नई प्रक्रिया शुरू होती है। आगे निकल चुकी क्रौम में आरामतलबी और आलस्य आने लगता है, जबकि पिछड़ी हुई क्रौम में मेहनत और संघर्ष का नया जज़्बा जाग उठता है।

इसका मतलब यह है कि ईश्वर की इस दुनिया में किसी के लिए भी हिम्मत हारने या निराश होने की कोई वजह नहीं है। हालात चाहे जितने भी बुरे दिखाई दें, उसके आस-पास एक नई कामयाबी का मौक़ा ज़रूर मौजूद होगा। इंसान को चाहिए कि वह इस नए मौक़े को पहचाने और उसका इस्तेमाल करके अपनी हारी हुई बाज़ी को दोबारा जीत ले।



कुदरत का सबक़



एक शाख्स ने अपना एक क्रिस्सा लिखा है। उन्होंने कहा कि एक मछुआरे ने मुझे बताया, “केकड़ों की टोकरी पर ढक्कन लगाने की ज़रूरत नहीं होती। अगर उनमें से कोई एक केकड़ा बाहर निकलने की कोशिश करता है, तो बाक़ी केकड़े उसे ऊपर से पकड़ लेते हैं और वापस नीचे खींच लेते हैं।”

—चार्ल्स एलन, ‘द मिरेकल ऑफ़ लव’ किताब में

केकड़ों की यह आदत यक़ीनन ईश्वर ने बनाई है यानी केकड़ों का यह तरीक़ा एक खुदाई तरीक़ा है। केकड़ों की मिसाल देकर ईश्वर इंसानों को बता रहा है कि हमें अपनी सामूहिक ज़िंदगी कैसे चलानी चाहिए।

सामूहिक ज़िंदगी में एकता बहुत ज़रूरी है और एकता कायम करने का सबसे अच्छा तरीक़ा वही है, जो केकड़ों की दुनिया में ईश्वर ने कायम कर रखा है। किसी भी इंसानी समूह को इतना होशियार होना चाहिए कि अगर उनमें से कोई शाख्स ग़लत राह पर चले और अपने समूह से अलग होना चाहे, तो बाक़ी लोग

उसे पकड़कर वापस अंदर खींच लें यानी 'टोकरी' वाले अपने किसी भी आदमी को टोकरी के बाहर न जाने दें।

इस्लामी तारीख में इसकी एक बहुत बढ़िया मिसाल हज़रत मुहम्मद के साथी साद बिन उबादा की है। हज़रत मुहम्मद के निधन के बाद खलीफ़ा चुनने के मसले पर उनके अंदर एक अलग राय पैदा हो गई। ज़्यादातर साथी इस बात पर राज़ी थे कि खलीफ़ा कुरैश क़बीले (मक्का) में से ही होना चाहिए, मगर साद बिन उबादा जो खुद अंसार (मदीने के साथी) थे, उनकी यह राय थी कि खलीफ़ा तो अंसार में से होना चाहिए या फिर दो खलीफ़ा बनाए जाएँ— एक कुरैश क़बीले में से और एक अंसार में से, मगर तारीख़ बताती है कि साद बिन उबादा की अपनी ही क्रौम के सारे लोग अपने सरदार के रास्ते में रुकावट बन गए। उन्होंने साद बिन उबादा को वापस 'टोकरी' में खींच लिया और उन्हें बाहर नहीं जाने दिया।

सँभलकर चलना

जब छोटे जानवरों को नदी पार करनी होती है, तो वे तेज़ी से दौड़कर पार निकल जाते हैं, लेकिन जब हाथी नदी पार करता है, तो वह तेज़ी से नहीं चलता, बल्कि वह हर क़दम पर रुक-रुककर बहुत ही सावधानी से आगे बढ़ता है।

इस अंतर की वजह यह है कि छोटे जानवरों के लिए कोई खतरा नहीं होता। पानी के नीचे की मिट्टी नरम हो या सख्त, उनके हल्के-फुल्के शरीर आसानी से निकल जाते हैं, पर हाथी एक बहुत बड़ा जानवर है। अपने भारी-भरकम शरीर की वजह से उसके लिए यह खतरा है कि अगर नीचे की मिट्टी नरम हो और उसका पैर धँस गया, तो उसका निकलना मुश्किल हो जाएगा। इसीलिए हाथी तब तक आगे क़दम नहीं बढ़ाता, जब तक कि वह यह नहीं देख लेता कि नीचे की ज़मीन मज़बूत है। हर बार पैर रखते समय वह उस पर पूरा वज़न नहीं डालता। पहले हल्का क़दम रखकर वह ज़मीन की नरमी-सख्ती को आजमाता है और जब अंदाज़ा हो जाता है कि ज़मीन सख्त है, तभी पूरा वज़न डालकर आगे बढ़ता है।

हाथी को यह तरीक़ा किसने सिखाया? जवाब है— ईश्वर ने। इसका मतलब

है कि हाथी के इस तरीके को ईश्वर की मंजूरी हासिल है यानी ज़िंदगी के लिए ईश्वर का सबक यह है कि जब रास्ते में किसी खतरे का डर हो, तो उस पर इस तरह नहीं चला जाए, जैसे सुरक्षित रास्ते पर चलते हैं, बल्कि हर कदम सँभलकर रखा जाए, ज़मीन की मज़बूती का अंदाज़ा लगाते हुए ही आगे बढ़ा जाए।

ईश्वर ने इंसान को हाथी से ज़्यादा अक्ल दी है। जहाँ बारूद का भंडार हो, वहाँ इंसान माचिस नहीं जलाता। जिस ट्रेन में पेट्रोल के टैंक लदे हों, उसका ड्राइवर लापरवाही से शॉटिंग नहीं करता, मगर बहुत-से लोग सामाजिक ज़िंदगी में इस सिद्धांत को भूल जाते हैं। हर समाज में तरह-तरह के लोग होते हैं और वे तरह-तरह के हालात पैदा करते रहते हैं। समाज में कहीं 'दलदल' होती है, तो कहीं 'पेट्रोल'। कहीं 'काँट' होते हैं, तो कहीं 'गड्ढे'। समझदार वही है, जो इस तरह की सामाजिक परिस्थितियों से बचकर निकल जाता है, न कि उनमें उलझकर अपना रास्ता खराब करता है।

जिस आदमी के सामने कोई मक़सद होता है, वह कभी भी रास्ते की मुशक़लों और बुराइयों में नहीं उलझता, क्योंकि वह जानता है कि इनमें उलझना ख़ुद को अपने मक़सद से दूर करना है। मक़सद वाला आदमी आगे देखता है, दाएँ-बाएँ नहीं। वह हमेशा के नतीजों पर नज़र रखता है, फ़ौरी कार्रवाइयों पर नहीं। वह चीज़ों को हक़ीक़त के हिसाब से देखता है, न कि अपनी ख्वाहिशों के हिसाब से।



ताक़त की मिसाल



एक जंगली जानवरों के एक्सपर्ट ने 21 मई, 1984 के टाइम्स ऑफ़ इंडिया के एक लेख में लिखा कि शेर अक्सर तब इंसान का शिकार करते हैं, जब वे इतने बूढ़े हो जाते हैं कि जंगली जानवरों का शिकार नहीं कर पाते, लेकिन दस में से नौ आदमखोर शेर वे होते हैं, जिन्हें अनाड़ी शिकारियों ने ग़लती से घायल कर दिया होता है—

“बड़ी बिल्लियाँ यानी शेर अकसर तब आदमखोर बनते हैं, जब वे शिकार करने के लिए बहुत बूढ़े हो जाते हैं, लेकिन दस में से नौ बार! ऐसा इसलिए होता है, जब एक अवैध शिकारी ने उन्हें घायल कर दिया हो।”

अपनी फ़ितरत से शेर आदमखोर नहीं होते। हालाँकि वे सभी जानवरों में सबसे ज्यादा ‘दुश्मन को खाने वाले’ होते हैं। एक बार अगर शेर किसी को अपना दुश्मन समझ ले, तो वह उसे किसी हाल में नहीं छोड़ता। आम हालात में जब शेर किसी इंसान को देखता है, तो वह दूर हट जाता है, लेकिन जिन शिकारियों के पास अच्छे हथियार नहीं होते और जो अनाड़ीपन से शेर पर गोली चला देते हैं, वे अकसर उसे मार नहीं पाते, बल्कि घायल करके छोड़ देते हैं। यही वे शेर होते हैं, जो आदमखोर बन जाते हैं। वे ‘इंसान’ को अपना दुश्मन मानने लगते हैं और जब भी वे किसी इंसान को देखते हैं, तो उसे खत्म किए बिना नहीं रहते।

यह जिंदगी का एक क़ानून है। यह बात जिस तरह शेर और इंसान पर लागू होती है, ठीक उसी तरह यह एक इंसान और दूसरे इंसान पर भी लागू होती है। चाहे एक इंसान का मामला हो या एक क़ौम का मामला, दुनिया का सिद्धांत यही है— अगर आप किसी दुश्मन को खत्म नहीं कर सकते, तो उसे घायल भी मत कीजिए, क्योंकि एक घायल दुश्मन आपके लिए पहले से भी ज्यादा बड़ा खतरा बन जाता है।

अगर कोई शख्स आपका दुश्मन है और आप पर्याप्त तैयारी के बिना उस पर हमला कर देते हैं, तो यह अपनी क़ब्र खुद खोदने के बराबर है। इस तरह के क़दम के पीछे बेसब्री के सिवा और कुछ नहीं होता। जिन लोगों में यह क़ाबिलियत नहीं होती कि वे सोच-समझकर प्लान बना सकें और चुपचाप संघर्ष करके खुद को मज़बूत बना सकें, वही लोग होते हैं, जो दुश्मन पर ऊपरी-सा हमला करके उसे और ज्यादा अपना दुश्मन बना लेते हैं और बाद में शिकायतों और विरोध का दफ़्तर खोल देते हैं। हालाँकि इस दुनिया में न तो झूठे क़दम की कोई क़ीमत है और न ही झूठी शिकायतों की।



जिंदगी की ताकत



एक घर के आँगन में एक बेल उग आई थी। मकान की मरम्मत के दौरान वह मलबे के नीचे दब गई। आँगन की सफ़ाई करते समय मकान-मालिक ने बेल को कटवा दिया। दो गज तक ज़मीन खोदकर उसकी जड़ें भी निकलवा दी गईं उसके बाद पूरे आँगन में ईंटें बिछाकर सीमेंट से पक्का करवा दिया गया।

कुछ समय बाद बेल वाली जगह के पास एक नई घटना हुई। पक्की ईंटें एक जगह से उभर आईं। ऐसा लग रहा था, जैसे किसी ने धक्का देकर उन्हें उठा दिया हो। किसी ने कहा कि यह चूहों का काम है, तो किसी ने कोई और अंदाज़ा लगाने की कोशिश की। आखिरकार जब ईंटें हटाई गईं, तो पता चला कि बेल का पौधा उनके नीचे मुड़ी हुई हालत में मौजूद था। बेल की कुछ जड़ें नीचे रह गई थीं। वे बढ़कर ईंटों तक पहुँच गई थीं और अब ऊपर आने के लिए ज़ोर लगा रही थीं।

“ये पत्तियाँ और अंकुर, जिन्हें हाथ से मसलने पर वे आटे की तरह पिस जाते हैं, उनमें इतनी ताकत है कि वे ईंटों के फ़र्श को तोड़कर ऊपर आ सकते हैं,” मकान-मालिक ने कहा, “मैं उनके रास्ते में रुकावट नहीं बनना चाहता। अगर यह बेल मुझसे दोबारा जिंदगी का हक़ माँग रही है, तो मैं उसे यह हक़ दूँगा।” इसलिए उसने कुछ ईंटें हटवाकर उसके लिए जगह बना दी। एक साल बाद ठीक उसी जगह पर लगभग पंद्रह फ़ुट ऊँची बेल खड़ी थी, जहाँ उसे नष्ट करके ऊपर पक्की ईंटें जोड़ दी गई थीं।

अपनी सारी विशालता और भव्यता के बावजूद एक पहाड़ में यह ताकत नहीं होती कि वह किसी पत्थर के टुकड़े को इधर-से-उधर खिसका सके, लेकिन एक छोटे-से पौधे में इतना ज़ोर होता है कि वह पत्थर के फ़र्श को धकेलकर बाहर आ जाता है। उसके अंदर यह ताकत कहाँ से आई? इसका स्रोत प्रकृति की वह रहस्यमय शक्ति है, जिसे जिंदगी कहा जाता है। जिंदगी इस ब्रह्मांड का एक अद्भुत चमत्कार है। जिंदगी एक ऐसी ताकत है, जिसे कोई दबा नहीं सकता। कोई इसे ख़त्म नहीं कर सकता। कोई इसे फैलने और बढ़ने के अधिकार से वंचित नहीं कर सकता।

जिंदगी एक ऐसी शक्ति है, जो इस दुनिया में अपना हक हमेशा लेकर रहती है। जब जिंदगी की जड़ें तक खोद डाली जाती हैं, तब भी वह कहीं-न-कहीं अपना अस्तित्व बनाए रखती है और मौक़ा मिलते ही दोबारा प्रकट हो जाती है। जब देखने वालों को यक़ीन हो जाता है कि उसका सफ़ाया हो चुका है, तब भी वह ठीक उसी जगह से सिर निकाल लेती है, जहाँ उसे तोड़ा और मसला गया था।



पेड़



पेड़ का एक हिस्सा होता है— तना और दूसरा हिस्सा होता है— उसकी जड़ें। कहा जाता है कि पेड़ का जितना हिस्सा ज़मीन के ऊपर होता है, लगभग उतना ही हिस्सा ज़मीन के नीचे जड़ों के रूप में फैला होता है। पेड़ अपने आधे अस्तित्व को हरा-भरा और जीवंत बनाकर तभी खड़ा रह पाता है, जब वह अपने बाक़ी आधे अस्तित्व को ज़मीन के नीचे दफ़न करने को तैयार हो जाता है। पेड़ का यह नमूना इंसानी जिंदगी के लिए ईश्वर का सबक़ है। यह हमें बताता है कि लोगों को अपनी जिंदगी को बनाने और मज़बूत करने के लिए क्या करना चाहिए। एक पश्चिमी विचारक ने लिखा है—

Root Downward, fruit upward. That is the divine protocol. The rose comes to perfect combination of colour, line and aroma atop a tall stem. Its perfection is achieved, however, because first a root went down into the homely matrix of the common earth. Those who till the soil or garden understand the analogy. Our interests have so centred on gathering the fruit that it has been easy to forget the cultivation of the root. We cannot really prosper and have plenty without first rooting in a life of sharing. The horn of plenty does not stay full unless first there is rooting in sharing... The horn of

plenty does not stay full unless first there is rooting in sharing.

जड़ें नीचे की ओर, फल ऊपर की ओर। यही खुदाई नियम है। गुलाब का फूल रंग, आकार और खुशबू का एक बेहतरीन मेल है, जो एक लंबे तने के ऊपर खिलता है, मगर यह परफेक्शन तभी हासिल होता है, जब पहले एक जड़ साधारण मिट्टी की गोद में नीचे उतरती है। जो लोग खेती करते हैं या बाग लगाते हैं, वे इस बात को समझते हैं। हमारी दिलचस्पी फल इकट्ठा करने में इतनी ज्यादा हो गई है कि हम जड़ों की देखभाल करना आसानी से भूल जाते हैं। हम तब तक सचमुच तरक्की और खुशहाली हासिल नहीं कर सकते, जब तक कि हम समाजी जिंदगी में जड़ें न जमाएँ। खुशहाली का भंडार तभी भरा रह सकता है, जब हम पहले समाज में जड़ें जमाएँ।

पेड़ ज़मीन के ऊपर खड़ा होता है, मगर वह अपनी जड़ें ज़मीन के अंदर गाड़ता है। वह नीचे से ऊपर की ओर बढ़ता है, न कि ऊपर से नीचे की ओर। पेड़ मानो कुदरत का एक शिक्षक है, जो इंसानियत को यह सबक दे रहा है— बिना अंदरूनी मज़बूती के बाहरी तरक्की इस दुनिया में मुमकिन नहीं है।

पाने से पहले

एक अंग्रेज़ी कहावत है— “देने में ही हम पाते हैं।”

दुनिया बनाने वाले ने यह नियम बनाया है— यहाँ जो देता है, वही पाता है। जिसके पास देने के लिए कुछ भी नहीं है, उसके लिए इस दुनिया में पाना भी तय नहीं है।

हमारे चारों ओर की दुनिया में ईश्वर ने इस सिद्धांत को एकदम सही तरीके से बनाया है। यहाँ हर चीज़ को हालाँकि अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए दूसरों से कुछ लेना पड़ता है, लेकिन हर चीज़ की यह हालत है कि वह जितना लेती है, उससे ज्यादा देने की कोशिश करती है।

पेड़ का उदाहरण लो। पेड़ ज़मीन से पानी और खनिज लेता है। वह हवा से

नाइट्रोजन लेता है। वह सूरज से गर्मी लेता है और इस तरह पूरी कायनात से अपना भोजन लेकर अपने आपको पूरी तरह से विकसित करता है, लेकिन उसके बाद वह क्या करता है? उसके बाद उसका पूरा अस्तित्व दूसरों के लिए समर्पित हो जाता है। वह दूसरों को छाँव देता है। वह दूसरों को लकड़ी देता है। वह दूसरों को फूल और फल देता है। वह पूरी जिंदगी इसी तरह अपने आपको दूसरों के लिए देता रहता है, यहाँ तक कि खत्म हो जाता है।

यही हाल ब्रह्मांड की हर चीज़ का है। हर चीज़ दूसरों को देने और दूसरों को फ़ायदा पहुँचाने में लगी हुई है। सूरज, नदियाँ, पहाड़, हवा— हर चीज़ दूसरों का फ़ायदा करने में लगी है। ब्रह्मांड का तरीका फ़ायदा पहुँचाना है, हक़ माँगना नहीं।

इस दुनिया में सिर्फ़ एक ही जीव है, जो देने के बजाय लेना चाहता है और वह इंसान है। इंसान सिर्फ़ अपने फ़ायदे के लिए दूसरों का इस्तेमाल करता है; वह बिना दूसरों को कुछ दिए उनसे लेना चाहता है। वह बिना फ़ायदा पहुँचाने वाला बने सिर्फ़ फ़ायदा उठाने वाला बनना चाहता है।

इंसान का यह तरीका ईश्वर की योजना के खिलाफ़ है। यह ब्रह्मांड के सामान्य स्वभाव से अलग है। यह अंतर साबित करता है कि ऐसे लोगों के लिए मौजूदा दुनिया में कामयाबी तय नहीं है। मौजूदा दुनिया में कामयाबी सिर्फ़ उन्हीं लोगों को मिल सकती है, जो खुद को इस बड़े ब्रह्मांड के साथ मिला लें, जो एक देने वाली दुनिया में खुद भी देने वाले बनकर रहें, सिर्फ़ लेने वाले न बनें।



प्रकृति का सिस्टम



अगर तुम अपना कमरा बंद करके चले जाओ और कुछ महीने बाद वापस आकर इसे खोलो, तो हर तरफ़ इतनी धूल जमी होगी कि जब तक तुम उसे साफ़ नहीं कर लेते, तुम उस कमरे में बैठना पसंद नहीं करोगे। तेज़ हवा के साथ जब धूल उठती है, तो इंसान बहुत परेशान होता है और चाहता है कि यह धूल की मुसीबत उससे दूर हो जाए।

यह धूल है क्या? यह ज़मीन की ऊपरी सतह की वह उपजाऊ मिट्टी है,

जिससे हर तरह की सब्जियाँ, फल और अनाज पैदा होते हैं। अगर ज़मीन की सतह पर यह मिट्टी न हो, तो ज़मीन पर ज़िंदगी बिताना इंसान के लिए नामुमकिन हो जाए।

फिर यह वही धूल है, जो हवा में घनत्व पैदा करती है, जिसकी वजह से पानी की भाप बादल का रूप लेती है और बूँद-बूँद करके ज़मीन पर बरसती है। अगर ऊपरी हवा में धूल न हो, तो बारिश का प्रोसेस बंद हो जाए।

सूरज निकलने और डूबने के समय आसमान के किनारों पर जो रंगीन शाम दिखाई देती है, वह भी हवा में इसी धूल के होने की वजह से है। धूल हमारे लिए एक उपयोगी चीज़ भी है और हमारी दुनिया को सुंदर बनाने का ज़रिया भी।

यह एक साधारण-सी मिसाल है, जिससे पता चलता है कि कैसे इस दुनिया की ज़िंदगी में ईश्वर ने नापसंद चीज़ों के साथ पसंद की चीज़ें भी रखी हैं। जैसे फूल के साथ काँटा होता है, वैसे ही ज़िंदगी में पसंदीदा चीज़ों के साथ नापसंदीदा चीज़ों की जोड़ी भी लगी हुई है।

अब जबकि खुद प्रकृति ने फूल और काँटे को एक साथ पैदा किया है, तो हमारे पास इसके सिवा कोई चारा नहीं कि हम इसके साथ तालमेल बैठाने का तरीका ढूँढें। इस दुनिया में इसके अलावा कुछ और होना मुमकिन नहीं है।

दूसरों की शिकायत करना बस अपने ही समय को बरबाद करना है। यह दुनिया इस तरह बनाई गई है कि यहाँ शिकायत के मौके जरूर आएँगे। समझदार इंसान का काम यह है कि वह इसे भूल जाए। उसे शिकायतों को नज़र-अंदाज़ करके अपने मक़सद की तरफ़ अपना सफ़र जारी रखना चाहिए।

प्रकृति का नियम

हैरी एमर्सन फॉस्डिक ने अपनी किताब 'लिविंग अंडर टेंशन' में ज़िंदगी की एक सच्चाई इन शब्दों में बताई है—

“कोई भाप या गैस तब तक किसी चीज़ को नहीं चलाती, जब तक उसे बंद न किया जाए। नायाग्रा फाल्स (Niagra falls) तब तक रोशनी

और बिजली में नहीं बदलता, जब तक उसे सुरंग में न बहाया जाए। कोई जिंदगी तब तक नहीं बढ़ती, जब तक उस पर ध्यान न दिया जाए, उसे समर्पित और अनुशासित न किया जाए।”

प्रकृति का एक ही नियम है, जो जानदार और बेजान चीजों दोनों पर लागू होता है। वह यह है— हर चाही हुई चीज की एक क्रीमत होती है; जब तक वह क्रीमत अदा नहीं की जाती, वह चाही हुई चीज हासिल नहीं होती।

यहाँ ऊपर उठने के लिए पहले नीचे दबना पड़ता है। तरक्की के मुकाम तक पहुँचने के लिए पहले बिना तरक्की के मान लेना पड़ता है। दूसरों पर हुकूमत पाने के लिए पहले उनके द्वारा दबाए जाना सहना पड़ता है।

एक बात बिलकुल साफ़ है, मगर इंसान अपनी असल जिंदगी में अकसर इसे भूल जाता है— हम अपनी बनाई हुई दुनिया में नहीं हैं, बल्कि ईश्वर की बनाई हुई दुनिया में हैं। जब यही हाल है कि यह दुनिया ईश्वर की है, तो हमारे पास इसके सिवा कोई चारा नहीं कि हम ईश्वर के बनाए हुए नियमों को समझें और खुद को उनके साथ मिलाएँ। किसी और तरकीब से हम यहाँ अपने लिए जगह नहीं बना सकते।

जो लोग चाहते हैं कि उन पर ये सब चीजें न गुज्रें और बिना इनके ही वे तरक्की और कामयाबी का मुकाम पा लें, तो उन्हें अपनी पसंद की दूसरी दुनिया बनानी पड़ेगी, क्योंकि ईश्वर ने जो दुनिया बनाई है, उसमें ऐसा होना मुमकिन नहीं है।



दृढ़ता



ईश्वर ने अपनी दुनिया में हर तरह के व्यावहारिक उदाहरण कायम किए हैं, जैसे कि उसने पेड़ों में दो क्रिस्म के पेड़ बनाए। एक बेल और दूसरे बड़े-बड़े फल वाले पेड़। बेल महीनों में फैलती है और फिर महीनों में ही खत्म हो जाती है। इसके उलट एक पेड़ को तैयार होने में सालों लगते हैं और फिर वह सालों, कभी-कभी सदियों तक, जमीन पर खड़ा रहता है। इस तरह दो अलग तरह की मिसालें खड़ी करके ईश्वर चुपचाप यह कह रहा है कि हमें कौन-सा तरीका अपनाना चाहिए और कौन-सा नहीं। कौन-सा रास्ता कामयाबी का है और कौन-सा नाकामयाबी का।

क्रौम को बनाने के मामले में हमें बेल की तरह नहीं फैलना चाहिए, बल्कि पेड़ की तरह बढ़ने की कोशिश करनी चाहिए। बेल का यह हाल होता है कि वह तुरंत बढ़ती है, मगर कुछ ही महीनों में सूखकर खत्म हो जाती है। शुरुआत में चाहे वह एक फर्लांग तक फैली दिखे, मगर आखिर में वह पैरों के नीचे भी दिखाई नहीं देती।

इसके उलट पेड़ का यह मामला है कि भले ही तैयार होने में सालों इंतज़ार करना पड़े, मगर उसकी जड़ें मज़बूत होती हैं। वह जितना ऊपर दिखाई देता है, उतना ही ज़मीन के अंदर छुपा होता है। वह ज़मीन की सतह को पार करके उसकी गहराई से अपना खाना लेता है। पेड़ जब एक बार तैयार हो जाता है, तो फिर वह सौ साल तक लोगों को अपने फल और अपनी छाँव देता रहता है। लोगों को उससे सिर्फ़ फ़ायदा ही मिलता है। किसी भी तरह से वह लोगों के लिए नुक़सान का सबब नहीं बनता। वह लोगों के लिए किसी तरह की मुश्किल पैदा नहीं करता।

ठीक इसी तरह क्रौम को बनाने में सिर्फ़ फैलाव से ज़्यादा ज़रूरी मज़बूती को ध्यान में रखना है। मज़बूती के बिना फैलाव ऐसा ही है, जैसे बिना नींव के मकान बनाना।

जो बात पेड़ की है, वही इंसानी ज़िंदगी की भी है। अगर आप पक्की और टिकाऊ चीज़ बनाना चाहते हैं, तो इसके लिए आपको सब्र करके इंतज़ार के दौर से गुज़रना होगा और लंबे वक़्त तक लगातार मेहनत करनी पड़ेगी, लेकिन अगर आप बच्चों का खिलौना-घर (playhouse) बनाना चाहते हैं, तो फिर सुबह-शाम में वैसा घर बनकर तैयार हो सकता है। हाँ, ऐसे में आपको इस हादसे के लिए भी तैयार रहना चाहिए कि जितनी देर में आपका खिलौना-घर खड़ा हुआ था, उससे भी कम वक़्त में वह फिर से ज़मींदोज़ हो जाए।

टूटने के बाद

अगर तुम लकड़ी को तोड़ोगे, तो वह टूटकर दो टुकड़े हो जाएगी। उसका टूटना हमेशा के लिए टूटना बन जाएगा। लकड़ी अपने आपको फिर से पहले जैसा एक

नहीं बना सकती, मगर जानदार चीजों का मामला इससे बिलकुल उल्टा है। एक जानदार चीज टूटने के बाद भी जिंदा रहती है। एक जीवित अमीबा जब टूटता है, तो वह दो जीवित अमीबा बन जाता है।

हमारी दुनिया में इस तरह की घटनाएँ ईश्वर की बड़ी निशानियाँ हैं। वे बताती हैं कि एक जिंदा इंसान के लिए ईश्वर ने इस दुनिया में कितनी बड़ी संभावना छुपा रखी है। यह संभावना कि उसकी कोई भी हार आखिरी हार न बने। कोई भी हादसा उसे आखिरी तौर पर खत्म न कर पाए। एक जानदार चीज या एक जिंदा इंसान को कभी तोड़ा नहीं जा सकता। जानदार चीज अगर टूटती है, तो उसका हर हिस्सा एक नए जानदार अस्तित्व का रूप ले लेता है और नतीजे के तौर पर पहले से भी ज्यादा बड़ा बन जाता है।

इंसान एक ऐसा प्राणी है कि नाकामी उसे विचारात्मक गहराई अता करती है। रुकावटें उसके दिमाग के बंद दरवाजे खोलती हैं। हालात अगर उसके अस्तित्व को टुकड़े-टुकड़े कर दें, तो उसका हर टुकड़ा दोबारा नई जान हासिल कर लेता है। इस संभावना ने इस दुनिया में किसी भी इंसान को हमेशा के लिए अजेय बना दिया है। शर्त यह है कि वह जिंदा रहे। वह टूटने के बाद दोबारा अपनी ताकतों को जोड़ना जानता हो। मैच हारने के बाद वह अपना हौसला न खोए। एक कश्ती के टूट जाने के बाद वह दोबारा नई कश्ती के ज़रिए अपनी यात्रा शुरू कर सके।



दुनिया का नियम



गाय दूध देती है। यह तो हर कोई जानता है, लेकिन बहुत कम लोग हैं, जो यह सोचते हों कि गाय दूध कैसे देती है। गाय दूध जैसी चीज देने के क्राबिल तभी बनती है, जब वह घास को दूध में बदल सके। गाय जब इस अनोखी क्राबिलियत का सबूत देती है कि वह एक छोटी चीज को बेहतर चीज में बदल सकती है, तभी यह मुमकिन होता है कि वह ईश्वर की दुनिया में दूध जैसी क्रीमती चीज देने वाली बने।

यही हाल पेड़ का है। पेड़ से इंसान को अनाज, सब्जी और फल मिलते हैं,

लेकिन ऐसा कब होता है? ऐसा तभी होता है, जब पेड़ अपनी क्राबिलियत साबित करे कि उसमें मिट्टी और पानी डाला जाए और वह उसे बदलकर अनाज, सब्जी और फल के रूप में बाहर निकाले। एक छोटी चीज़ पेड़ के अंदर जाती है और वह उसे अपने अंदरूनी सिस्टम से बदल देता है और उसे एक बेहतर चीज़ के रूप में बाहर लाता है।

यही मामला इंसानी जिंदगी का भी है। जिंदगी भी इसी तरह की एक परीक्षा है। इस दुनिया में इंसान के साथ भी यही होता है कि उसे कमियों का सामना करना पड़ता है। उसके सामने नापसंद हालात आते हैं। यहाँ फिर से इंसान की कामयाबी यह है कि वह अपने बुरे हालात को अच्छे हालात में बदल सके। वह अपनी नाकामियों के अंदर से कामयाबी का रास्ता निकाल ले।

यही दुनिया का नियम है। यह इंसान और जानवर दोनों पर लागू होता है। जो कोई भी इस खास क्राबिलियत को साबित करे, वही इस दुनिया में कामयाब है और जो इस क्राबिलियत को साबित करने में नाकाम रहे, वह ईश्वर की इस दुनिया में अपने आपको नाकामी से नहीं बचा सकता।

ईश्वर की गाय यानी ईश्वर की मर्जी का ऐलान। वह बताती है कि इस दुनिया में ईश्वर हमसे क्या चाहता है। ईश्वर हमसे यह चाहता है कि हमारे अंदर 'घास' जाए और वह 'दूध' बनकर बाहर निकले। लोग हमारे साथ बुराई करें, तब भी हम उनके साथ भलाई करें। हमारे साथ बुरे हालात पेश आएँ, तब भी हम उन्हें अच्छे हालात में बदल सकें।



बचाव का इंतज़ाम



अलवर में एक मदरसा है, जो शहर के बाहरी इलाक़े में है। मदरसे के एक तरफ़ शहर की इमारतें हैं और दूसरी तरफ़ खेत शुरू हो जाते हैं। एक बार मैं कुछ दिन इसी मदरसे में ठहरा। शाम को अस्त्र की नमाज़ के बाद मैं मदरसे से निकला और खेतों की तरफ़ टहलने चला गया। कुछ दूर आगे बढ़ा, तो एक जगह बहुत सारे कुत्ते दिखे। उन्होंने मुझे देखा और ज़ोर-ज़ोर से भौंकने लगे और मेरी तरफ़ दौड़े। मुझे पत्थर फेंककर उन्हें भगाना पड़ा।

शाम ढलते ही मैं टहलकर वापस आया, तो मैंने मदरसे के मैनेजर मौलाना मुफ्ती जमालुद्दीन कासमी साहब से इस बात का जिक्र किया। वे मुस्कराए और बोले, “कल हम भी आपके साथ चलेंगे। फिर आप देखिएगा कि कोई कुत्ता भौंकेंगा भी नहीं।” अगले दिन अस्त्र की नमाज़ के बाद जब मैं टहलने के लिए निकला, तो मुफ्ती साहब भी मेरे साथ हो लिये। उन्होंने अपने हाथ में एक लंबी लाठी ले ली थी, जो दूर से ही दिख रही थी। हम लोग चलते हुए उस जगह पहुँचे, जहाँ पिछले दिन मुझे कुत्तों का झुंड मिला था। मैंने देखा कि आज भी कुत्ते वहाँ मौजूद थे, मगर आज कोई कुत्ता हमारी तरफ़ नहीं दौड़ा और न ही किसी के भौंकने की आवाज़ आई। हम आराम से उस जगह से निकल गए और कुत्ते हमारी तरफ़ ध्यान देने के बजाय अपने काम में लगे रहे। वापस आते वक़्त हम फिर से उस जगह से गुज़रे। अब भी कुत्ते वहीं थे, मगर उन्होंने हमारी तरफ़ कोई ध्यान नहीं दिया। हम बिना किसी रुकावट के अपनी मंज़िल पर वापस आ गए।

“यह लाठी की बरकत थी,” मुफ्ती साहब मुस्कराते हुए बोले, “कल आप लाठी के बिना थे, तो कुत्तों की हिम्मत बढ़ गई और वे भौंकते हुए आप पर दौड़ पड़े। आज हमारे साथ यह लंबी लाठी थी, तो कुत्तों ने इसे देखकर समझ लिया कि हम बेज़ार नहीं हैं, बल्कि उनका जवाब देने के लिए हमारे पास एक मज़बूत हथियार है। इस बात ने कुत्तों को हम पर हमला करने की हिम्मत ही नहीं की। कुत्ता हमेशा तभी दौड़ेगा, जब उसे आपमें कमज़ोरी नज़र आए। अगर उसे लगेगा कि आपके पास ताक़त है, तो वह आपकी तरफ़ रुख भी नहीं करेगा।”

इंसानों में भी कुछ लोग ऐसे ही स्वभाव वाले होते हैं। वे उस इंसान से ठीक से पेश आते हैं, जिसके हाथ में ‘एक लाठी’ हो। ऐसे इंसान से सामना होते ही वे कतराकर अलग हो जाते हैं। हालाँकि जब वे किसी को बिना लाठी के देखते हैं, तो उसके लिए वे शेर बन जाते हैं। वे ताक़तवर के आगे बुज़दिल होते हैं और कमज़ोर के आगे बहादुर। यह स्थिति इस बात की माँग करती है कि इंसान समाज के ऐसे लोगों के लिए भी ‘लाठी’ का इंतज़ाम रखे।

न केवल सिद्धांत के तौर पर, बल्कि आम तौर पर इंसान को शांतिपूर्ण रहना चाहिए। उसे लोगों के साथ नम्रता और कोमलता का रवैया अपनाना चाहिए, मगर साथ ही कम-से-कम दिखाने के लिए ही सही उसे अपने आस-पास एक ‘लाठी’ भी खड़ी रखनी चाहिए, ताकि इस क्रिस्म के लोगों की उस पर हमला

करने की हिम्मत न हो। ठीक वैसे ही, जैसे कुदरत एक डाल पर नर्म और कोमल फूल खिलाती है, तो साथ ही उस डाल के चारों ओर काँटे भी उगा देती है।



भ्रष्टाचार



मुंबई में एक बहुमंजिला इमारत बनाई गई थी। उसका नाम 'आकाश दीप' रखा गया था, मगर जब वह बनकर तैयार हुई, तो अचानक से ढह गई। कहा जाता है कि ढहने की वजह यह थी कि उसकी बनावट में सीमेंट ज़रूरत से कम इस्तेमाल किया गया था।

इस मामले में एक टेक्निकल इंस्टीट्यूट के डायरेक्टर ने कहा—

“आरसीसी (RCC) कंस्ट्रक्शन एक साइंटिफिक प्रोसेस है, जो क्वालिफाइड और एक्सपीरियेंस्ड लोगों के हाथों में बहुत अच्छी होती है, लेकिन अगर इसे नाक्राबिल (incompetent) इंजीनियरों और ठेकेदारों के हाथों में दे दिया जाए, तो यह खतरनाक हो जाती है।”

ऊपर से देखने में यह बात बिलकुल सही और सुंदर लगती है, मगर असलियत यह है कि इसमें एक ग़लतफ़हमी छुपी हुई है। यह ग़लतफ़हमी तब साफ़ दिखने लगती है, जब हम 'नाक्राबिल' की जगह 'भ्रष्ट' (corrupt) शब्द का इस्तेमाल करते हैं। असल बात यह है कि हमारे देश में इस तरह की दिक्कतें लोगों के लालच और भ्रष्टाचार की वजह से पैदा होती हैं, न कि टेक्निकल जानकारी की कमी की वजह से।

भाखड़ा डैम भारत का सबसे बढ़िया सरकारी प्रोजेक्ट था। इसकी बनावट में देश के सबसे अच्छे इंजीनियर लगाए गए थे, मगर जब वह बनकर तैयार हुआ, तो उसकी दीवार में दरार आ गई, जिसे ठीक करने में करोड़ों रुपये दोबारा लगाने पड़े। इस तरह की घटनाएँ हमारे देश में रोज़ हो रही हैं। ये सारे काम हमेशा टेक्निकल एक्सपर्ट्स की निगरानी में ही होते हैं। इसके बावजूद हालत यह है कि सड़कें बनने के बाद जल्द ही खराब हो जाती हैं। इमारतें बनते ही मरम्मत के क्राबिल हो जाती हैं। प्रोजेक्ट पूरे होने के बाद भी अधूरे लगते हैं। इस तरह की सभी घटनाओं की वजह भ्रष्टाचार है, न कि टेक्निकल कमी।

एक 'दिमागी बीमारी' (psychological flaw) है और टेक्निकल कमी एक 'तकनीकी बीमारी' (technical flaw) है। दिमागी बीमारी को टेक्निकल ट्रेनिंग से ठीक नहीं किया जा सकता। अगर हम चाहते हैं कि देश में सचमुच एक बेहतर समाज बने, तो हमें देश के लोगों के दिमाग को सुधारना होगा। सिर्फ टेक्निकल कोर्सेज बढ़ाने से यह मकसद कभी हासिल नहीं हो सकता।



राष्ट्रीय चरित्र



1965 की बात है। भारत के एक उद्योगपति (industrialist) पश्चिमी जर्मनी गए। वहाँ उन्हें एक कारखाने में जाने का मौका मिला। वे इधर-उधर घूमकर कारखाने का काम देखते रहे। इसी दौरान वे एक मजदूर के पास खड़े हो गए और उससे कुछ सवाल करने लगे। बार-बार पूछने के बावजूद उस मजदूर ने कोई ध्यान नहीं दिया और अपने काम में लगा रहा।

कुछ देर बाद खाने की घंटी बजी। अब मजदूर अपनी मशीन से उठकर खाने के हॉल की तरफ जाने लगा। तभी वह मजदूर भारतीय उद्योगपति के पास आया। उसने उद्योगपति से हाथ मिलाया और हैरानी से कहा, “क्या आप अपने देश के मजदूरों से काम के वक़्त भी बातें करते हैं? अगर मैं उस वक़्त आपके सवालियों का जवाब देता, तो काम के कुछ मिनट बरबाद हो जाते और कंपनी का नुक़सान होता और इसका मतलब होता पूरे देश का नुक़सान। हम यहाँ अपने देश को फ़ायदा पहुँचाने आते हैं, नुक़सान पहुँचाने नहीं आते।”

यही वह किरदार (चरित्र) है, जो पश्चिमी देशों की तरक्की का राज है। 1945 में एलाइड पावर्स (Allied Powers) ने जर्मनी को पूरी तरह तबाह कर दिया था, मगर सिर्फ़ 25 साल बाद ही जर्मनी फिर से पहले से ज़्यादा ताक़तवर बन गया और उसकी तरक्की का राज यही है कि वहाँ का हर शख्स अपनी यह ज़िम्मेदारी समझता है कि वह अपना काम ईमानदारी से करे। वह अपनी खुद की इच्छाओं को देश के फ़ायदे के आगे छोटा समझता है। हर आदमी खुद को बेहतर बनाने में लगा है, मगर देश के नुक़सान की कीमत पर नहीं, बल्कि अपनी मेहनत की

कामयाबी का राज

क्रीमत पर। जहाँ खुद के और देश के फ़ायदे में टकराव होता है, वहाँ वह देश के फ़ायदे को पहली प्राथमिकता देता है और अपनी खुद की इच्छा को दबा देता है।

देश की हालत हमेशा उसके लोगों की हालत पर निर्भर करती है। लोगों के अच्छे बनने से देश बनता है और लोगों के बिगड़ने से देश बिगड़ जाता है। देश का मामला ठीक वैसा ही है, जैसा किसी मशीन का होता है। मशीन तभी ठीक काम करती है, जब उसके सारे पुर्जे ठीक हों। ठीक उसी तरह देश तभी ठीक रहता है, जब उसके सारे लोग अपनी-अपनी जगह पर ठीक से काम कर रहे हों। मशीन बनाने के लिए पहले उसके पुर्जे बनाने पड़ते हैं। ठीक उसी तरह देश बनाने के लिए पहले उसके लोगों को बनाना पड़ता है। बिना लोगों को सुधारे देश को सुधारना ठीक वैसे ही नामुमकिन है, जैसे बिना पुर्जे बनाए मशीन खड़ी करना।



ताक़त का राज



विश्वस्तर के खिलाड़ियों के शरीर की ताक़त अकसर एक जैसी ही होती है। उन्हें एक जैसी ही अच्छी ट्रेनिंग भी मिलती है। फिर क्या चीज़ उनमें जीत और हार का फ़ैसला करती है? जो जीतता है, वह क्यों जीतता है और जो हारता है, वह क्यों हारता है? यह सवाल पिछले तीन साल से अमेरिका के कुछ वैज्ञानिकों के लिए रिसर्च का विषय बना हुआ था। अब उन्होंने तीन साल बाद अपनी रिसर्च के नतीजे छापे हैं।

इन वैज्ञानिकों ने दुनिया के बेहतरीन पहलवानों पर टेस्ट किए। उन्होंने उनकी मांसपेशियों की ताक़त और उनके दिमाग़ का बारीकी से अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि विश्व-प्रतियोगिताओं में जीतने वाले और हारने वाले पहलवानों में एक ख़ास फ़र्क़ होता है, मगर यह फ़र्क़ शारीरिक नहीं, बल्कि पूरी तरह से मानसिक (psychological) होता है। असल में यह पहलवान की दिमागी हालत (state of mind) होती है, जो उसके लिए जीत या हार तय करती है। एक्सपर्ट्स ने पाया कि हारने वालों के मुक़ाबले जीतने वाला पहलवान ज़्यादा अनुशासित और अपने क़ाबू में रहने वाला (disciplined and in control) इंसान होता है।

उनकी रिपोर्ट का निचोड़ यह है—

“हारने वाले खिलाड़ी मुक्काबले से पहले ही उदास और परेशान रहते थे, जबकि जीतने वाले खिलाड़ी पॉज़िटिव और रिलेक्स्ड रहते थे।”

(टाइम्स ऑफ इंडिया; 26 जुलाई, 1981)

यही बात जिंदगी की बड़ी जंग के लिए भी सही है। जिंदगी के मैदान में जब दो इंसानों या दो ग्रुपों की आपस में प्रतियोगिता होती है, तो कामयाब होने में असली फ़ैसला इस बात से नहीं होता कि किसके पास ज़्यादा पैसा-दौलत या साधन हैं, बल्कि असली फ़ैसला उनके दिल और दिमाग़ की हालत से होता है। जिसके अंदर दिल और दिमाग़ वाले अच्छे गुण (inner qualities) ज़्यादा होते हैं, वह कामयाब होता है और जिसमें ये गुण कम होते हैं, वह नाकामयाब हो जाता है, भले ही उसके पास बाहरी साधन कितने भी ज़्यादा क्यों न हों।

अपने मक़सद के बारे में पक्का यक़ीन, दिमाग़ में उलझन न होना, अनुशासन कभी न छोड़ना, रोमांचक पलों में भी ठंडे दिमाग़ से फ़ैसला लेने की क़ाबिलियत, अपनी भावनाओं पर पूरा कंट्रोल रखना, हमेशा सोच-समझकर क़दम उठाना— ये सारी चीज़ें दिल और दिमाग़ से जुड़ी हुई हैं और यही वे चीज़ें हैं, जो जिंदगी की लड़ाई में हमेशा फ़ैसला करती हैं।



सकारात्मक सोच



डॉक्टर अब्दुल जलील साहब (नई दिल्ली) 1970 में जापान गए थे और वहाँ छह महीने रहे। 14 अक्तूबर, 1984 की एक मुलाक़ात में उन्होंने बताया कि वे टोक्यो में ठहरे हुए थे और काम के सिलसिले में अकसर टोक्यो से एक जगह जाया करते थे। यह सफ़र ट्रेन से पंद्रह मिनट में पूरा होता था।

उन्होंने बताया कि एक दिन वे टोक्यो से ट्रेन पर चढ़े। पंद्रह मिनट बीत गए, लेकिन उनका स्टेशन नहीं आया। ट्रेन एक स्टेशन पर रुकी, लेकिन जब उन्होंने बोर्ड देखा, तो वह कोई दूसरा ही स्टेशन था। अब उन्हें चिंता हुई। उन्हें लगा कि शायद वे ग़लत ट्रेन पर चढ़ गए हैं। डिब्बे में उनके पास ही एक जापानी जवान

खड़ा था, लेकिन भाषा की दिक्कत थी, क्योंकि डॉक्टर साहब जापानी भाषा नहीं जानते थे और वह शाख्स अंग्रेजी से अनजान था। उन्होंने यह किया कि एक कागज़ पर अपने मनचाहे स्टेशन का नाम लिखा और उस जापानी जवान को दिखाया।

डॉक्टर साहब ने बताया कि इस बीच ट्रेन चल तो चुकी थी, लेकिन अभी प्लेटफॉर्म छोड़ा नहीं था। उस जवान ने डॉक्टर साहब का कार्ड देखते ही फ़ौरन चेन खींच दी। ट्रेन रुकी, तो वह डॉक्टर साहब को लेकर नीचे उतरा। अब वह उनके साथ चलने लगा। फिर उसने उन्हें उलटी दिशा से आने वाली दूसरी ट्रेन पर बैठाया और खुद भी उनके साथ बैठ गया। ट्रेन दोनों को लेकर चल दी। कुछ ही मिनटों में डॉक्टर साहब का स्टेशन आ गया। अब वह जवान उन्हें लेकर उतरा और यहाँ छोड़कर दूसरी ट्रेन से अपने असली रास्ते पर चला गया, जहाँ उसे जाना था। इस पूरे वक़्त दोनों के बीच कोई बातचीत नहीं हुई, क्योंकि डॉक्टर साहब जापानी नहीं जानते थे और वह जापानी जवान अंग्रेजी से अनजान था।

इसी तरह मिसाल के तौर पर उन्होंने बताया कि मैं एक सड़क पर था। मैंने देखा कि दो जापानियों की कार आमने-सामने से आते हुए टकरा गईं। दोनों अपनी-अपनी गाड़ी से उतरे और एक-दूसरे के सामने सिर झुकाकर खड़े हो गए। एक ने कहा, “ग़लती मेरी है। मुझे माफ़ कर दो।” दूसरे ने कहा, “नहीं, ग़लती मेरी है। मुझे माफ़ कर दो।”

इसी का नाम है सकारात्मक सोच और यही सोच किसी भी क्रौम की तरक्की की सबसे बड़ी गारंटी है। इसके उलट जिस क्रौम के लोगों का यह हाल हो कि वे सिर्फ़ अपने बारे में सोचें और दूसरों को नज़र-अंदाज़ करें, वे कभी भी बड़ी तरक्की हासिल नहीं कर सकते।

अपनी कमियाँ पहचानो

अच्छे चरित्र की दो किस्में होती हैं। पहली यह कि आप उन्हीं के साथ अच्छा बरताव करें, जिनसे आपका कोई रिश्ता हो या जिनसे कोई फ़ायदा मिलने की उम्मीद हो। दूसरी यह कि अच्छे बरताव को अपनी आदत बना लें और हर किसी

के साथ प्यार से पेश आएँ, चाहे वह कोई भी हो। पहली क्रिस्म के अच्छे चरित्र से भी इंसान को कुछ-न-कुछ फ़ायदा मिल ही जाता है, लेकिन दूसरी क्रिस्म के फ़ायदे इतने ज़्यादा हैं कि उनका हिसाब ही नहीं लगाया जा सकता।

मिस्टर अजवानी को 1965 में कोलकाता की एक बड़ी दवा कंपनी में सेल्समैन की नौकरी मिली। उनसे पहले जो आदमी उनकी जगह काम करता था, उसे 1,200 रुपये की तनख्वाह और सफ़र के लिए रेलवे का पास मिलता था। अजवानी ने कहा, “मैं 3,000 रुपये महीना लूँगा और हवाई जहाज़ से सफ़र करूँगा।” कंपनी के डायरेक्टर ने कहा, “यह तो बहुत ज़्यादा है।” उन्होंने जवाब दिया, “मैं उससे कहीं ज़्यादा काम दूँगा। आप एक बार कोशिश करके देखिए।” आखिरकार उनकी नौकरी पक्की हो गई और उन्हें गुजरात का इलाक़ा सौंपा गया।

उस वक़्त गुजरात में एक लेडी डॉक्टर थीं, जिनकी प्रैक्टिस बहुत चलती थी और वहाँ दवाओं की खपत भी बहुत थी, मगर वे किसी मर्द सेल्स एजेंट से मिलती ही नहीं थीं। एक बार एक दवा कंपनी का एजेंट उनके पास गया। बातचीत के दौरान उसने बताया कि वह हाथ पढ़ना जानता है और हाथ देखता है। लेडी डॉक्टर ने उसके सामने अपना हाथ कर दिया। एजेंट ने हाथ देखकर कहा, “आपके हाथ की रेखाएँ बहुत अच्छी हैं,” यह कहते हुए उसने उनका हाथ चूम लिया। इस घटना के बाद लेडी डॉक्टर को मर्द एजेंटों से नफ़रत हो गई और उन्होंने अपने क्लिनिक में उनका आना पूरी तरह बंद कर दिया।

जब मिस्टर अजवानी अपनी बिज़नेस ट्रिप पर उस शहर के लिए निकले, तो कंपनी के डायरेक्टर ने लेडी डॉक्टर का ज़िक्र किया। मिस्टर अजवानी ने कहा, “मैं उनसे भी ऑर्डर लेकर आऊँगा।” डायरेक्टर ने इसे उनकी नादानी समझा और कहा, “उनसे ऑर्डर लेना बिलकुल नामुमकिन है।” लेडी डॉक्टर इस मामले में इतनी मशहूर हो चुकी थीं कि लोगों ने उनके बारे में सोचना ही छोड़ दिया था।

मिस्टर अजवानी अपने सफ़र पर निकल पड़े। हवाई जहाज़ में उनकी सीट की बग़ल में एक बुज़ुर्ग महिला बैठी थीं। सफ़र के दौरान अचानक उस बुज़ुर्ग महिला को खाँसी आने लगी और बलगम निकलने लगा। वे बहुत परेशान हो रही थीं। अपनी अच्छे चरित्र वाली आदत के मुताबिक़, मिस्टर अजवानी को उनसे हमदर्दी हुई और उन्होंने तुरंत अपना रूमाल उनके मुँह के सामने कर दिया। उन्होंने बलगम अपने रूमाल में लिया और फिर वॉशरूम जाकर उसे धो लिया।

महिला इस घटना से बहुत प्रभावित हुई। वे भी उसी शहर जा रही थीं, जहाँ मिस्टर अजवानी जा रहे थे। जब हवाई जहाज वहाँ पहुँचा और बुजुर्ग महिला बाहर निकलीं, तो वे यह देखकर परेशान हो गईं कि उन्हें लेने कोई एयरपोर्ट नहीं आया है। यह महिला एक अमीर घराने से थीं और उन्हें लेने के लिए कार आनी चाहिए थी, मगर उनके आने की सही जानकारी न होने की वजह से उनके घर से कार नहीं आ सकी। मिस्टर अजवानी ने एक बार फिर उनकी मदद की। उन्होंने कहा, “मैं अपने होटल जाने के लिए टैक्सी ले रहा हूँ। आप भी उसी में बैठ जाइए, पहले मैं आपको आपके घर छोड़ दूँगा, फिर अपने होटल जाऊँगा।” उन्होंने बुजुर्ग महिला को अपनी टैक्सी में बैठाया और उन्हें उनके घर छोड़ दिया। घर पहुँचने पर महिला ने उनका नाम और पता पूछा। उन्होंने अपना नाम और होटल का पता लिखकर दे दिया और फिर अपने होटल चले गए।

थोड़ी देर बाद महिला की बेटी अपने काम से छुट्टी होने पर घर पहुँची, तो देखा कि उनकी माँ आ चुकी हैं। उसने कहा, “हमें आपके आने की खबर नहीं थी, इसलिए कार एयरपोर्ट पर नहीं जा सकी। आपको बहुत तकलीफ़ हुई होगी।” माँ ने कहा, “नहीं, मुझे कोई तकलीफ़ नहीं हुई।” फिर उन्होंने मिस्टर अजवानी की पूरी कहानी सुनाई। यह सुनकर बेटी बहुत प्रभावित हुई। उसने तुरंत उस होटल को फ़ोन करके मिस्टर अजवानी से बात की और कहा, “हम आपके बहुत शुक्रगुजार हैं और आज रात का खाना आप हमारे यहाँ खाइए।” मिस्टर अजवानी तय कार्यक्रम के मुताबिक़ महिला के घर पहुँच गए। जब सब खाने की मेज़ पर बैठे और परिचय हुआ, तो पता चला कि बुजुर्ग महिला की बेटी वही लेडी डॉक्टर थीं, जिन्हें मर्द एजेंटों से नफ़रत थी और वे उनसे मिलती भी नहीं थीं। जब उन्हें पता चला कि मिस्टर अजवानी एक दवा कंपनी के सेल्समैन हैं, तो उन्होंने फ़ौरन खुद ही दवाओं का एक बड़ा ऑर्डर लिख दिया और कहा, “हमारे यहाँ दवाओं की खपत बहुत है। आप हमें अपना परमानेंट कस्टमर समझिए और हर महीने दवाएँ भेजते रहिए।”

मिस्टर अजवानी खाना और मुलाक़ात ख़त्म होने के बाद होटल वापस आए और उसी वक़्त कोलकाता में अपने डायरेक्टर को ट्रंक कॉल की। उन्होंने डायरेक्टर को फ़ोन पर बताया कि उन्होंने उस लेडी डॉक्टर से हजारों रुपये का ऑर्डर हासिल कर लिया है। डायरेक्टर ने तुरंत कहा, “तुम ग़लत कह रहे हो। ऐसा

हो ही नहीं सकता,” मगर अगली डाक से जब डायरेक्टर के पास उस लेडी डॉक्टर का चेक और उनके दस्तखत वाला ऑर्डर पहुँचा, तो उन्हें एहसास हुआ कि जिस चीज़ को वे नामुमकिन समझ रहे थे, वह वाक़ई हो चुकी थी।

21 नवंबर, 1980 की एक मुलाक़ात में मैंने मिस्टर अजवानी से पूछा, “आपको व्यापार का बहुत अनुभव है। बताइए, व्यापार में कामयाबी का राज क्या है?” उन्होंने जवाब दिया, “मीठी ज़बान और अच्छा बरतावा।” मैंने कहा, “हाँ, चाहे उसका कोई फ़ायदा दिखाई भी न दे। मीठी ज़बान और अच्छा बरताव हमेशा फ़ायदेमंद होते हैं, लेकिन जब वे इंसान की आदत बन जाएँ, तो उसके फ़ायदे की कोई सीमा ही नहीं रहती।”



खुद को बनाना



ईश्वर ने लकड़ी पैदा की, मगर उसने कश्ती नहीं बनाई। उसने ज़मीन में लोहा रखा, मगर उसे मशीन का रूप नहीं दिया। उसने एल्युमीनियम और प्लास्टिक बनाया, मगर उन्हें हवाई जहाज़ का आकार देने का काम छोड़ दिया। इसकी वजह क्या है? वजह यह है कि यह दूसरा काम ईश्वर इंसान से लेना चाहता है। एक तरफ़ तो ईश्वर ने हर तरह का कच्चा माल पैदा किया और दूसरी तरफ़ इंसान को दिमाग़ की ताक़त दी। अब ईश्वर की मर्ज़ी यह है कि इंसान ज़मीन से कच्चा माल ले और उसे मशीन का रूप दे। वह बिना घड़े हुए माल को घड़े हुए माल में बदले।

यह प्रकृति की ताक़तों को सभ्यता (civilization) में ढालने की मिसाल है। ठीक इसी बात की अपेक्षा इंसान से भी की गई है। ईश्वर ने इंसान को एक बेहतरीन शख्सियत दी। प्रकृति ने उसे सबसे अच्छा वजूद दिया, मगर यह इंसानी शख्सियत अपनी शुरुआती हालत में एक तरह का कच्चा माल है। अब यह काम खुद इंसान का है कि वह ईश्वर के दिए हुए इस वजूद की नई बनावट करे। वह फ़ितरत के सादे पन्ने पर अपनी खुद की कहानी लिखे। यही इंसान का इम्तिहान है। इसी काम में कामयाबी या नाकामयाबी पर उसका भविष्य निर्भर करता है। इंसान से यह अपेक्षा की गई है कि वह अपनी चेतना को ईश्वर के बोध में बदले।

अपनी भावनाओं को ईश्वर की याद में तब्दील करो। वह अपने कर्मों को 'दैवी चरित्र' (Divine Character) का रूप दे। वह अपनी शख्सियत को आखिरी हद तक ईश्वर का बंदा बना दे।

एक इंसान वह है, जो माँ के पेट से पैदा होता है और दूसरा इंसान वह है, जो अपने आपको खुद बनाता है। आदमी माँ के पेट से बोलने का गुण लेकर आता है। अब कोई इंसान इस गुण का इस्तेमाल सच की खबर देने में करता है और कोई इसे सच से इनकार करने में। इंसान ऊँचे गुण लेकर दुनिया में आता है। कोई इसे तुरंत फ़ायदा उठाने के लिए इस्तेमाल करता है और कोई इसे ऊँचे मक़सद के लिए समर्पित कर देता है। हर इंसान प्रकृति की एक ज़मीन है। कोई अपनी ज़मीन पर काँटे उगाता है और कोई उस पर फूलों का बाग़ लगा देता है। कोई अपने आपको स्वर्ग का हक़दार बना लेता है और कोई नरक का।

अच्छे चरित्र की मिसाल

जिसे आम तौर पर 'अच्छा चरित्र' कहा जाता है, असल में वह बुरे चरित्र की सबसे ख़राब श्रेणी होती है। इसका एक उदाहरण वह है, जिसे 'व्यापारी शिष्टाचार' कह सकते हैं। एक सफल दुकानदार हर ग्राहक के साथ बहुत अच्छा व्यवहार करता है, लेकिन इस 'अच्छे व्यवहार' के पीछे स्वार्थ के अलावा और कुछ नहीं होता। अगर दुकान पर आने वाला ग्राहक अपना रूप बदलकर भीख माँगने वाला व्यक्ति बन जाए, तो तुरंत पता चल जाएगा कि दुकानदार के 'अच्छे चरित्र' की असली सच्चाई क्या थी।

'अच्छे चरित्र' की एक दूसरी किस्म वह है, जिसे 'सभ्य व्यवहार' कहा जा सकता है। यह ख़ास तौर पर आधुनिक शिक्षित वर्ग में आम है। जब ये लोग आपस में मिलते हैं, तो बहुत ही सुसंस्कृत शब्दों में बात करते हैं। वे बिना मतलब की राय को भी सुंदर बौद्धिक शब्दों में पेश करते हैं। आग उगलने वाले मुद्दों पर भी ऐसे बात करते हैं, जैसे बर्फ़ की चर्चा कर रहे हों। अपने विरोधी से बात करते समय ऐसा रवैया अपनाते हैं, जैसे उनका मतभेद सिर्फ़ एक बौद्धिक मतभेद है,

जिसका स्वार्थ से कोई लेना-देना नहीं, लेकिन अगर गहराई से देखा जाए, तो पता चलता है कि यह सब कुछ भी नहीं, बल्कि नकली नैतिकता है। इनका शुरू से लेकर आखिर तक मकसद समाज में 'सभ्य इंसान' कहलाना है, न कि असल में नैतिक सिद्धांतों पर चलना।

‘अच्छे चरित्र’ की एक तीसरी किस्म ‘बड़े’ लोगों में देखने को मिलती है जो लोग उनसे छोटे बनकर मिलते हैं, उनके साथ वे पूरी तरह से अच्छा व्यवहार करते हैं। इसी तरह जो लोग स्पष्ट तौर पर बड़ाई हासिल कर चुके हैं, उनके साथ भी उनका रवैया हमेशा अच्छा बना रहता है, लेकिन इन दोनों का असली चरित्र से कोई संबंध नहीं होता। पहले वाले के साथ उनकी अच्छाई दरअसल उनके अपने अहंकार को आहार देने की कीमत होती है। दूसरे वाले के साथ उनकी अच्छाई इसलिए होती है, क्योंकि ऐसे लोगों से जुड़ने से उनकी यह छवि बनती है कि वे भी ‘बड़ों’ की सूची में शामिल हैं।

यही वजह है कि ‘बड़े’ लोग तब अपना ‘अच्छी चरित्र’ खो देते हैं, जब कोई उनकी महानता को चुनौती देता है। जब कोई ऐसी बात कह देता है, जो उनके अहंकार पर चोट करती हो। ऐसे व्यक्ति के सामने वे तुरंत अपना मुखौटा उतार फेंकते हैं। उनका ‘अच्छा चरित्र’ अचानक से बुरे चरित्र की सबसे खराब किस्म में बदल जाता है।

चरित्र की ताकत

आम तौर पर लोग दो तरह के इंसानों को ताकतवर मानते हैं— एक तो वे, जिनके पास दौलत-शोहरत का ढेर हो और दूसरे वे, जो दादागीरी करना जानते हों; लेकिन ताकत का सबसे बड़ा राज है— चरित्र और सबसे खास बात यह है कि चरित्र वह चीज है, जो हर इंसान अपना सकता है। इसके लिए न तो दौलत चाहिए, न ही बड़ी-बड़ी मांसपेशी।

मौलाना मुहम्मद कासिम कासमी (जन्म : 1957) दिल्ली के मदरसा हुसैन बख्श में टीचर हैं और साथ ही एक मस्जिद में इमाम भी हैं।

उन्होंने दिल्ली में एक घड़ी की मरम्मत की दुकान खोली। दुकान चलाने के लिए उन्हें एक कारीगर की जरूरत थी। इसी बीच एक दिन की बात है कि उनकी मस्जिद में एक व्यक्ति नमाज़ पढ़ने आया। उसकी उम्र लगभग 40 साल थी। जब उससे बात हुई, तो पता चला कि उसका नाम मुहम्मद दीन कश्मीरी है और उसे घड़ी ठीक करने का काम आता है।

मौलाना मुहम्मद कासिम ने पूछा, “आप दिल्ली कैसे आए?”

मुहम्मद दीन कश्मीरी ने जवाब दिया, “काम की तलाश में।”

“क्या आपको घड़ी ठीक करना आता है?”

“ईश्वर की कृपा है, आता है और मैं अपने काम पर पूरा भरोसा रखता हूँ।”

“क्या दिल्ली में कोई है, जो आपकी ज़मानत ले सकता है?”

“मेरी ज़मानत सिर्फ़ ईश्वर है। अगर आपको ईश्वर की ज़मानत पर भरोसा है, तो मैं वही ज़मानत दे सकता हूँ।”

मुहम्मद दीन कश्मीरी की बातों का यह अंदाज़ सुनकर मौलाना कासिम बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने उसे अपनी दुकान पर रख लिया। इस घटना को कई महीने बीत चुके हैं और ईश्वर की दया से दोनों खुश हैं। मौलाना मुहम्मद कासिम की दुकान भी चल निकली है और मुहम्मद दीन कश्मीरी को भी रोज़गार मिल गया है।

ऐसी घटनाएँ बताती हैं कि चरित्र में अपनी एक ताकत होती है। अगर इंसान अच्छे चरित्र का है, तो उसकी यह अच्छाई उसकी बातों में विश्वास और दृढ़ता पैदा कर देती है और जहाँ विश्वास और दृढ़ता आ जाती है, वहाँ कामयाबी उसी तरह आती है, जैसे सूरज के बाद रोशनी और पानी के बाद तृप्ति।



चरित्र का मामला



इंसान कच्चे माल से पूरी एक सभ्यता (civilization) बना देता है। वह साधारण चीज़ों का इस्तेमाल करके शानदार शहर खड़े कर देता है। ऐसा क्यों होता है? इसकी सिर्फ़ एक ही वजह है— हर चीज़ के अंदर कुछ खास गुण होते हैं। इंसान

उन प्राकृतिक गुणों को पहचानकर उनका इस्तेमाल करता है। कह सकते हैं कि ये गुण ही उस चीज का 'कैरेक्टर' यानी 'चरित्र' होते हैं।

हर चीज का एक तय चरित्र होता है, जिसे वह जरूर व्यक्त करती है। चरित्र की इसी 'निश्चितता' (certainty) की वजह से ही जिंदगी की सारी गतिविधियाँ और तरक्की मुमकिन हो पाती है। अगर यह 'निश्चितता' खत्म हो जाए, तो पूरी इंसानी सभ्यता अचानक खंडहर बनकर रह जाएगी।

सोचिए कि अगर किसी नदी पर लोहे का पुल बनाया जाए और बाद में पता चले कि वह मोम की तरह नरम है या पत्थर और सीमेंट से बनी हुई कई मंजिला इमारत रेत के ढेर जैसी साबित हो या इंजन में पेट्रोल भरा जाए, लेकिन इंजन चलते ही पेट्रोल एनर्जी में न बदले या चुंबकीय क्षेत्र (magnetic field) और गति (motion) को मिलाया जाए, लेकिन इलेक्ट्रॉन हिलें ही न और बिजली पैदा न हो वगैरह-वगैरह।

अगर ऐसा हो, तो इसका मतलब है कि चीजों ने अपना चरित्र खो दिया है और अगर चीजों ने अपना तय चरित्र खो दिया, तो सभ्यता बनाना नामुमकिन हो जाएगा। सभ्यता तभी बनती है, जब उसके जरूरी हिस्से वही करें, जिसकी उनसे उम्मीद की जाती है। अगर आइस फैक्टरी में पानी जमने के बजाय भाप बनकर उड़ने लगे, तो आइस फैक्टरी का कोई मतलब नहीं रह जाएगा। अगर भट्टी में डाला गया लोहा पिघलने से इनकार कर दे, तो सारा मशीनी कारोबार बिखरकर रह जाएगा।

ठीक यही नियम इंसानी समाज पर भी लागू होता है। किसी भी सामाजिक व्यवस्था में जो लोग जुड़े होते हैं, उनमें से हर एक को अपने-अपने मौके पर एक खास भूमिका निभानी पड़ती है। समाज का टिके रहना इसी बात पर निर्भर करता है कि हर कोई अपनी भूमिका ठीक से निभाए। जिस तरह भौतिक चीजों (physical things) की क्रीमत उनके खास चरित्र से होती है, उसी तरह इंसान की क्रीमत इस बात में है कि वह अलग-अलग हालात में इंसान होने का वह चरित्र दिखा सके, जिसकी उससे उम्मीद की जाती है।

लोहा तभी असली लोहा है, जब इस्तेमाल के वक़्त भी वह लोहा ही साबित हो। ठीक उसी तरह इंसान भी तभी असली इंसान है, जब इम्तिहान के वक़्त वह 'लोह-पुरुष' (मजबूत और भरोसेमंद इंसान) साबित हो सके। जो व्यक्ति अपने

ऊपर किए गए भरोसे पर खरा उतरता है, वह हर मौक़े पर इंसान ही साबित होता है, न कि कोई हैवान।



एक अच्छा समाज



भौतिक दुनिया का सिस्टम एक अनुशासित सिस्टम है, जबकि इंसानी दुनिया का सिस्टम अस्त-व्यस्त है। भौतिक दुनिया में हर जगह व्यवस्था है, इंसानी दुनिया में हर तरफ़ अव्यवस्था है। इसकी वजह यह है कि पदार्थ अपने नियमों का पालन करते हैं, लेकिन इंसान अपने नियमों का पालन नहीं करते।

एक मज़बूत व्यवस्था या अच्छा समाज तभी बनता है, जब उसके लोग असली मायनों में सच्चे इंसान साबित होते हैं। जहाँ दृढ़ता की ज़रूरत हो, वे लोहे की तरह मज़बूत बन जाएँ। जहाँ नरमी की आवश्यकता हो, वे झरने की तरह कोमल साबित हों। जहाँ चुप्पी ज़रूरी हो, वे पत्थर की तरह खामोश हो जाएँ। जहाँ अटल रहने की ज़रूरत हो, वे पहाड़ की तरह डटकर खड़े हो जाएँ। जहाँ कार्रवाई की आवश्यकता हो, वे बाढ़ की तरह बहने लगें। उन्हें हर मौक़े पर वही बोलना चाहिए, जो उन्हें बोलना चाहिए और हर स्थिति में खुद को वैसा ही साबित करना चाहिए, जैसा उन्हें होना चाहिए।

ऐसे व्यक्ति सामूहिक जीवन के लिए उतने ही ज़रूरी हैं, जितना कि किसी सभ्यता के लिए लोहा और पेट्रोल। लोहे और पेट्रोल के बिना कोई सभ्यता नहीं बन सकती। ठीक उसी तरह मज़बूत चरित्र वाले लोगों के बिना कोई सामूहिक जीवन नहीं बन सकता।

एक इंसान को जहाँ वादा पूरा करना चाहिए, वहाँ वह वादा-खिलाफ़ी करे; जहाँ उसे शराफ़त का रास्ता अपनाना चाहिए, वहाँ वह घटिया तरीक़े से पेश आए; जहाँ उसे दरियादिली दिखानी चाहिए, वहाँ कंजूसी दिखाए; जहाँ उसे बड़प्पन दिखाना चाहिए, वहाँ वह छोटापन दिखाए; जहाँ उसे माफ़ कर देना चाहिए, वहाँ वह बदला लेने लगे; जहाँ उसे आज्ञा का पालन करना चाहिए, वहाँ वह बगावत करने लगे; जहाँ उसे अपनी ग़लती मान लेनी चाहिए, वहाँ वह ज़िद

पर अड़ जाए; जहाँ उसे अपने भाई की गलतियों को छिपाना चाहिए, वहाँ वह उन्हें उजागर करने लग जाए; जहाँ उसे निःस्वार्थ भाव से काम करना चाहिए, वहाँ वह स्वार्थ से काम लेने लगे। — अगर ऐसा होता है, तो इसका मतलब है कि उस व्यक्ति ने अपना इंसानी चरित्र खो दिया है। वह सामाजिक व्यवस्था के एक हिस्से के रूप में उससे की गई उम्मीद पर खरा नहीं उतर रहा है। अगर कोई समाज ऐसी स्थिति में पहुँच जाए, जहाँ समाज के लोग अपना इंसानी चरित्र खो दें, तो केवल अराजकता का ही राज होगा। वहाँ कोई स्थिर सामाजिक व्यवस्था नहीं बन सकती।



भरोसा कमाइए



एक आदमी ने कारोबार शुरू किया। उसके पास मुश्किल से कुछ सौ रुपये थे। वह कपड़े के टुकड़े खरीदकर लाता और घर-घर जाकर उन्हें बेचता। जब काम थोड़ा बढ़ा, तो उसने एक दुकानदार से इजाजत लेकर उसकी दुकान के सामने फुटपाथ पर बैठना शुरू कर दिया।

जिस थोक वाले (wholesaler) से वह कपड़ा खरीदता था, उसके साथ वह बहुत ईमानदारी से पेश आया। धीरे-धीरे उस थोक वाले को इस आदमी पर भरोसा हो गया। वह उसे उधार पर कपड़ा देने लगा। जब आदमी उधार कपड़ा लेता, तो कोशिश करता कि वादे से थोड़ा पहले ही पैसे चुका दे।

वह ऐसा करता रहा, यहाँ तक कि थोक वाले की नज़र में उसकी साख (credibility) बहुत बढ़ गई। अब वह उसे और ज्यादा कपड़ा उधार देने लगा। कुछ सालों में ऐसा हो गया कि थोक वाला उसे पचास हजार या एक लाख रुपये का कपड़ा बिना हिचक दे देता। वह उसे माल ऐसे देता, जैसे कैश में बेच रहा हो।

अब आदमी का काम इतना बढ़ चुका था कि उसने एक दुकान ले ली। दुकान भी उसने पूरे सिद्धांतों के साथ चलाई। वह तेज़ी से आगे बढ़ता रहा, यहाँ तक कि वह अपने शहर के बड़े कपड़ा व्यापारियों में गिना जाने लगा।

इस दुनिया में सबसे बड़ी दौलत पैसा नहीं है— सबसे बड़ी दौलत भरोसा है।

भरोसे की बुनियाद पर आप कुछ भी हासिल कर सकते हैं, ठीक जैसे कोई इंसान नोटों की बदौलत बाज़ार से सामान खरीदता है। इसी तरह भरोसा हर चीज़ का विकल्प है, मगर भरोसा सिर्फ़ जुबानी दावों से नहीं कमाया जाता और न ही यह एक दिन में मिल जाता है। भरोसा जीतने की सिर्फ़ एक ही बुनियाद है और वह है— ईमानदारी। बाहरी दुनिया इस मामले में बेहद बेरहम है। लंबे समय तक बेदाग़ आचरण दिखाने के बाद ही वह वक्रत आता है, जब लोग आप पर भरोसा करते हैं। ठीक जैसे उस थोक वाले ने उस फेरी वाले पर भरोसा किया था।



आसान हल



एक हकीम साहब थे। एक आदमी उनके पास आया। उसके पास एक डिब्बा था। उसने डिब्बा खोला और एक ज़ेवर निकाला। उसने कहा, “यह ख़ालिस सोने का ज़ेवर है। इसकी कीमत दस हज़ार रुपये से कम नहीं है। इस वक्रत मैं मजबूरी में हूँ। आप इसे रखकर मुझे पाँच हज़ार रुपये दे दीजिए। मैं एक महीने में पैसे देकर इसे वापस ले लूँगा।” हकीम साहब ने कहा, “नहीं, मैं इस तरह के काम नहीं करता,” मगर उस आदमी ने अपनी मजबूरी कुछ इस अंदाज़ में बयान की कि हकीम साहब को तरस आ गया और उन्होंने पाँच हज़ार रुपये देकर ज़ेवर ले लिया। उसके बाद उन्होंने उस ज़ेवर को लोहे की अलमारी में बंद करके रख दिया।

कई महीने गुज़र गए और वह आदमी वापस नहीं आया। हकीम साहब को चिंता हुई। आखिरकार एक दिन उन्होंने वह ज़ेवर लोहे की अलमारी से निकाला और उसे बेचने के लिए बाज़ार भेजा, मगर सुनार ने जाँचकर बताया कि वह पीतल का है। हकीम साहब को बहुत दुख हुआ, मगर पैसे गँवाने के बाद वे खुद को भी नहीं खोना चाहते थे। उन्होंने इस बात को भुला दिया। उन्होंने बस इतना किया कि जिस ज़ेवर को वे पहले बंद अलमारी में रखते थे, उसे एक खुली अलमारी में डाल दिया। उन्होंने उसे ‘सोने वाले’ खाने से निकालकर ‘पीतल वाले’ खाने में रख दिया।

इंसानी मामलों के लिए भी यही तरीक़ा सबसे बेहतर तरीक़ा है। अकसर

लोगों के बीच शिकायत और कड़वाहट सिर्फ इसलिए पैदा होती है, क्योंकि जिस इंसान से हमने जो उम्मीद लगा रखी थी, वह उसमें पूरा नहीं उतरा। हमने एक आदमी को बा-उसूल समझा था, मगर तजुर्बे के बाद पता चला कि वह बे-उसूल है। हमने एक शख्स को अपना शुभचिंतक समझा था, मगर वह 'अशुभचिंतक' (ill-intentioned) निकला। हमने एक व्यक्ति को समझदार मान रखा था, मगर अनुभव के बाद वह नासमझ साबित हुआ।

ऐसे मौकों पर सबसे अच्छा तरीका यही है कि उस आदमी को एक खाने से निकालकर दूसरे खाने में रख दिया जाए। जिस चीज को हमने 'सोने की अलमारी' में सुरक्षित रखा था, उसे वहाँ से निकालकर 'पीतल की अलमारी' में डाल देना चाहिए।

दुनिया टाइपराइटर नहीं

एक आदमी अकेला कमरे में बैठा था। उसके सामने एक टाइपराइटर रखा था। उसके मन में अनगिनत विचार उठ रहे थे। उसने कागज़ को टाइपराइटर में लगाया और कुंजियों पर उँगलियाँ चलाने लगा। देखते-ही-देखते उसके मन के विचार शब्दों का आकार लेकर कागज़ पर उतरने लगे। वह विचार शब्दों में ढल गया और कागज़ पर उतर आया। जैसे-जैसे टाइपराइटर की आवाज़ बढ़ती गई, शब्दों का नशा उसके मन पर हावी होता गया। उसने एक पूरा पन्ना भर दिया, जिस पर कुछ ऐसी पंक्तियाँ अंकित थीं, जो इस प्रकार थीं—

“मैं हमेशा सही हूँ। मेरे आस-पास के सभी लोग ग़लत हैं।”

“मेरी कोई ग़लती नहीं। ग़लती सिर्फ़ दूसरों की है।”

“मैं सबसे बेहतर हूँ। बाक़ी सभी लोग मुझसे कमतर हैं।”

“मैं ईश्वर का प्रिय हूँ। यह संसार मेरा है और परलोक भी मेरा ही है।”

इन विचारों को कागज़ पर उतरा हुआ देखकर वह व्यक्ति प्रसन्न हो उठा, लेकिन उसकी बदकिस्मती यह थी कि वह ऐसी दुनिया में जी रहा था और खुद भी 'टाइपराइटर की दुनिया' का होकर रह गया था।

टाइपराइटर ने उसके विचारों को एक ही पन्ने पर क़ैद कर लिया था, लेकिन वह इस सच्चाई को भूल चुका था कि वह खुद भी इसी दुनिया का हिस्सा है। वह सिर्फ़ कुंजियाँ दबा रहा था मानो शब्द अपने आप उँगलियों से निकलकर कागज़ पर उतर रहे हों। उसके लिए दुनिया 'शब्दों की दुनिया' बन गई थी, जहाँ कड़ी मेहनत और बड़ी कोशिशों के बिना ही सब कुछ हासिल हो जाता है, लेकिन विचारों की दुनिया वास्तविक कर्म-जगत से अलग होती है। विचारों में जो कुछ संभव है, वह कर्म में अकसर असंभव हो जाता है। यही कारण है कि वह व्यक्ति शब्दों की दुनिया में तो सब कुछ पा चुका था, लेकिन कर्म की दुनिया में वह पूरी तरह से ख़ाली था।

शायद अपने बारे में यह बात कहना अप्रिय लगे, लेकिन सच यह है कि मैं भी किसी हद तक ऐसा ही एक 'टाइपराइटर-मैन' हूँ। मेरे पास भी एक टाइपराइटर है। उँगलियों की हल्की-सी गति से मैं कागज़ पर कुछ भी उकेर सकता हूँ। मुझे दुनिया की सच्चाई भी पता है और मुझे उनसे तालमेल भी बैठाना है।

ईश्वर ने मनुष्य को वाणी और क़लम की शक्ति दी है। वह लिखता है और लिखवाता भी है, लेकिन उसे यह नहीं भूलना चाहिए कि शब्द तभी सार्थक होते हैं, जब वे कर्म में बदलें। शब्दों के सहारे संसार को बदलने का दावा करना आसान है, लेकिन केवल शब्दों में सिमटे रह जाना आख़िरकार खोखले इंतज़ार में बदल जाता है।

अतः बेहतर यही है कि सत्य शब्दों में नहीं, बल्कि अदृश्य कर्मों में बना रहे और आख़िर में इस दुनिया में आदमी के लिए बस एक चीज़ बचती है— खोखला इंतज़ार और सच की इस दुनिया में किसी का भी खोखला इंतज़ार बेकार नहीं जाता।

सड़क की सीख

शहर की व्यस्त सड़कों पर हमेशा एकसीडेंट का खतरा बना रहता है, इसीलिए ट्रैफ़िक को नियंत्रित करने के लिए सड़कों पर कई निर्देश लिखे होते हैं। इनमें से

एक निर्देश यह है—

“अपनी लेन में चलना सुरक्षित चलना है।”

यानी अगर कोई इंसान अपनी लेन का पाबंद रहकर गाड़ी चलाए, तो वह खुद को एक्सीडेंट से बचा सकता है। वह इस खतरे से सुरक्षित रह सकता है कि उसकी गाड़ी दूसरी गाड़ियों से टकराए और वह अपनी मंज़िल पर पहुँचने के बजाय कब्रिस्तान पहुँच जाए।

लंदन के एक ड्राइवर ने एक बार एक लेख लिखा था। उसमें उसने ट्रैफ़िक के कई नियम बताए थे। उसने अपने ज्ञान और तजुर्बे की रोशनी में बहुत ही अजीबो-गरीब बातें लिखी थीं। मिसाल के तौर पर, उसने लिखा—

“मान लीजिए कि आप सड़क पर गाड़ी चला रहे हैं कि अचानक एक साइड की गली से एक बॉल सड़क पर आ लुढ़कती है। इस बॉल को देखकर आपको समझ जाना चाहिए कि उसके पीछे एक बच्चा भी आ रहा होगा। अगर आपने सिर्फ़ ‘बॉल’ देखी और बच्चे को नहीं देखा, तो आप एक अच्छे ड्राइवर नहीं हैं। एक अच्छा ड्राइवर वही है, जो बॉल को देखते ही बच्चे को भी भाँप ले, भले ही उस वक़्त बच्चा उसे दिखाई न दे रहा हो। अगर ड्राइवर ने बॉल देखकर भी अपनी गाड़ी के ब्रेक नहीं लगाए, तो यक़ीनन अगले ही पल उसकी गाड़ी एक बच्चे को कुचल चुकी होगी।”

सड़क पर किया जाने वाला यह सफ़र ज़िंदगी के सफ़र के लिए एक शिक्षक है। इंसान चाहे तो सड़क के सफ़र से वह सब कुछ सीख सकता है, जो उसे ज़िंदगी के बड़े सफ़र के लिए ज़रूरी है।

अपनी गतिविधियों को हमेशा अपने ही दायरे में सीमित रखिए। अगर आपने दूसरे के दायरे में दखल-अंदाज़ी की, तो फ़ौरन ही उससे आपका टकराव शुरू हो जाएगा। इसका नतीजा यह होगा कि आपका चलता हुआ सफ़र रुक जाएगा। सामूहिक ज़िंदगी में जब बाहर से कोई संकेत नज़र आए, तो यह जानने की कोशिश कीजिए कि इस संकेत के पीछे और क्या-क्या बातें हैं, जो मौजूद तो हैं, मगर वक़्त रहते दिखाई नहीं दे रही हैं। अगर आपने सिर्फ़ दिखाई देने वाली चीज़ों को देखा और जो चीज़ें दिखाई नहीं दे रही हैं, उनसे बेखबर रहे, तो इस मुक़ाबले वाली दुनिया में आप कभी भी कोई बड़ी कामयाबी हासिल नहीं कर सकते।



हकीकत-पसंदी



अगस्त, 1945 में अमेरिका ने जापान पर दो परमाणु बम गिराए। इसकी वजह से जापान बिलकुल बरबाद हो गया। फिर भी जापानी लोगों को इस बात पर गुस्सा नहीं आया। ऐसा इसलिए, क्योंकि वे समझते हैं कि अमेरिका की कार्रवाई एकतरफ़ा नहीं थी, बल्कि वह जापान की हिंसक कार्रवाइयों का जवाब थी। जापानियों का यही व्यावहारिक स्वभाव है, जिसने उन्हें आज के ज़माने में इतनी तरक्की दिलाई है।

अमेरिका ने जापान के दो बड़े औद्योगिक शहरों हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम गिराए। कुछ ही मिनटों में दोनों आबाद शहर बड़े-बड़े खंडहरों में तब्दील हो गए। ये दोनों शहर दस मील से भी ज़्यादा इलाक़े में फैले हुए थे, लेकिन जब उन पर बम गिरे तो इंसान, जानवर, पेड़... सब जलकर राख हो गए। डेढ़ लाख लोग मारे गए। दस हजार लोग तो ऐसे थे, जो घटना के तुरंत बाद भाप बनकर उड़ गए। आज ये दोनों शहर फिर से बहुत खूबसूरती से बसाए जा चुके हैं। चौड़ी सड़कें, बड़े-बड़े मकान, हर तरफ़ पार्क और बगीचों ने शहर को एकदम नया रूप दे दिया है। अब शहर में सिर्फ़ एक टूटी हुई इमारत बची है, जो देखने वालों को याद दिलाती है कि दूरे विश्वयुद्ध में इस शहर पर कितनी बड़ी तबाही आई थी।

मिस्टर खुशवंत सिंह, जो 'हिंदुस्तान टाइम्स' (नई दिल्ली) के एडिटर थे, जापान गए थे। अपने सफ़र के बारे में बताते हुए वे लिखते हैं कि उन्होंने जापान में एक बहुत ही अजीब बात देखी। जहाँ दुनिया के बाक़ी देशों ने हिरोशिमा और नागासाकी की घटनाओं को अमेरिका के खिलाफ़ प्रोपेगंडा (प्रचार) के लिए इस्तेमाल किया, वहीं जापानी खुद इन घटनाओं को अमेरिका के खिलाफ़ नहीं लेते। जब खुशवंत सिंह ने अपने जापानी दोस्त से इस बारे में पूछा, तो उम्मीद के खिलाफ़ उसने हल्के स्वर में कहा—

“हमने उन पर पहले पर्ल हार्बर में हमला किया। हमने उनके बहुत-से लोगों को मार डाला। उन्होंने हमें चेतावनी दी थी कि वे क्या करने वाले हैं, लेकिन हमने सोचा कि वे सिर्फ़ दिखावा कर रहे हैं। उन्होंने हमें साफ़-साफ़ हराया। अब हम बराबर हैं और अब हम दोस्त हैं।”

(हिंदुस्तान टाइम्स; 4 अप्रैल, 1981)

हिरोशिमा में परमाणु हमले में मारे गए लोगों की याद में एक स्मारक बनाया गया है— शांति संग्रहालय (Peace Museum)। इसमें युद्ध की तबाही की तस्वीरें भी लगी हैं। इन चीजों को देखने के लिए हर साल लगभग 70 लाख जापानी हिरोशिमा आते हैं। बातचीत से ऐसा लगता है कि आम जापानी के दिल में अमेरिका के खिलाफ छुपा हुआ गुस्सा मौजूद है। हालाँकि वे अपने रोजमर्रा के व्यवहार में इसे ज़ाहिर नहीं होने देते। उन्होंने अपनी नाराज़गी पर व्यावहारिकता का पर्दा डाल रखा है। जापानियों के इसी स्वभाव का नतीजा है कि युद्ध के बाद बहुत कम समय में उन्होंने फिर से कमाल की तरक्की कर ली। उनके यहाँ न तेल निकलता है और न ही खानों में खनिज पदार्थ हैं। उन्हें ज़्यादातर कच्चा माल बाहर से मँगाना पड़ता है। इसके बावजूद जापान आज अपने बेहतरीन सामान की वजह से दुनिया के बाज़ार में छाया हुआ है।

मिस्टर खुशवंत सिंह ने जापान में वकीलों के बारे में पूछा। उन्हें बताया गया कि यहाँ वकालत का पेशा ठीक नहीं चल रहा है। इसकी वजह यह है कि जब लोगों के बीच कोई झगड़ा होता है, तो वे कोर्ट जाने के बजाय आपसी बातचीत से उसे सुलझा लेते हैं। जब इंसान अपनी ग़लती मानने को तैयार होता है, तो झगड़ा कभी आगे नहीं बढ़ता। झगड़ा न सुलझने की वजह ज़्यादातर यह होती है कि एक इंसान दूसरे पर एकतरफ़ा इल्जाम लगाता है। इसकी वजह से दूसरे में भी ज़िद पैदा हो जाती है और मसला बढ़ता चला जाता है। जब एक पक्ष अपनी तरफ़ की ग़लती मान लेता है, तो दूसरा भी झुकने को तैयार हो जाता है और समस्या वहीं ख़त्म हो जाती है।

इस व्यावहारिक नज़रिए का जापान को एक बहुत बड़ा फ़ायदा यह मिला है कि एक जापानी दूसरे जापानी पर भरोसा करता है। भारत जैसे देशों में व्यापारिक समझौते और व्यापारिक चिट्ठियाँ आम तौर पर ऐसे एक्सपर्ट लिखते हैं, जो बहुत बँधे हुए और क़ानूनी भाषा का इस्तेमाल करते हैं, लेकिन जापानी इस तरह के लिखित ड्राफ़्ट तैयार करने में अपना समय बरबाद नहीं करते। अमेरिका में वकीलों की संख्या 5 लाख है, जबकि जापान में वकीलों की संख्या सिर्फ़ 11 हजार है। जापान में इस तरह के ‘शब्दों के जानकारों’ के लिए ज़्यादा काम ही नहीं है।

जापान के ज़्यादातर व्यापारिक संस्थान मौखिक समझौतों (verbal agreements) पर भरोसा करते हैं। पहले तो यह चलन जापानियों के आपसी रिश्तों में था, लेकिन अब बाहर के व्यापारी भी यह समझने लगे हैं कि वे एक

जापानी के मुँह से निकले शब्द पर भरोसा कर सकते हैं। क्रान्ती पाबंदियों से आजादी का यह फ़ायदा है कि काम तेज़ी से होता है और अनावश्यक शाब्दिक पाबंदियाँ काम की रफ़्तार में रुकावट नहीं बनतीं।

जापान के इस स्वभाव ने उसे आपसी एकता का तोहफ़ा दिया है और एकता निस्संदेह सबसे बड़ी ताक़त है। जापान की तरक्की का राज एक जापान विशेषज्ञ ने इन शब्दों में बताया है—

“कभी आपस में न लड़ना, हमेशा मिल-जुलकर काम करना।”
(हिंदुस्तान टाइम्स; 4 अप्रैल, 1981)

एक नया दौर

इतिहास का एक ज़माना बीसवीं सदी के साथ ख़त्म हो गया है। इक्कीसवीं सदी एक नए ऐतिहासिक दौर की शुरुआत है। इसके अलावा हमारी क्रिस्मत अच्छी है कि आज वे सारे अनुकूल हालात पूरी तरह मौजूद हैं, जो एक नए और बेहतर दौर को शुरू करने के लिए ज़रूरी हैं।

जब रात का अँधेरा ख़त्म होता है और नए दिन के सूरज निकलने के संकेत दिखते हैं, तो यह प्रकृति की तरफ़ से एक चुपचाप ऐलान होता है कि दिन और रात का एक चक्र पूरा हो गया है। अब इसका दूसरा चक्र शुरू होने वाला है। जो कोई चाहे, वह इसकी रोशनी में अपनी नई यात्रा शुरू कर सकता है और अपने मुक़ाम तक पहुँच सकता है।

सुबह के वक़्त सूरज का निकलना हर इंसान को दो चीज़ों के बीच में खड़ा कर देता है— एक वह मौक़ा, जो बीत चुका है और दूसरा वह मौक़ा, जो सामने मौजूद है। जो कोई भी इन मौक़ों का इस्तेमाल करेगा, वह यकीनन अपने मक़सद तक पहुँच जाएगा। हालाँकि इतिहास की इस दुनिया में मौक़े सिर्फ़ उन्हीं के लिए होते हैं, जो इन्हें भुनाते हैं। जो लोग मौक़ों का इस्तेमाल करने में नाकाम रहते हैं, उनके लिए कोई मौक़ा नहीं रह जाता। कामयाबी, दूसरे शब्दों में, मौजूद मौक़ों का इस्तेमाल करने का ही दूसरा नाम है।

कोई भी इंसान अपनी यात्रा बीते हुए कल में शुरू नहीं कर सकता। यात्रा चाहे कभी भी शुरू हो, वह 'आज' से ही शुरू होगी, बीते हुए 'कल' से नहीं। जो लोग आज के दिन भी कल में जीते हैं, उनके लिए इस दुनिया में बराबारी के सिवा और कुछ नहीं है।

जो मौक़े बीत चुके हैं, उन्हें भूल जाइए। जो मौक़े आज मौजूद हैं, उन्हें पहचानिए और उनका इस्तेमाल कीजिए। ईश्वर की कृपा से आप यक़ीनन कामयाब होंगे। याद रखिए कि बीता हुआ दिन कभी किसी के लिए वापस नहीं आता। बीता हुआ दिन आपके लिए भी वापस आने वाला नहीं है।

खुदकुशी नहीं

पाकिस्तान के (रिटायर्ड) जनरल अतीकुर्रहमान पाकिस्तान फ़ेडरल सर्विस कमीशन के चेयरमैन थे। वे एक 'मुहाजिर' थे, जो दूसरे विश्वयुद्ध में फ़ील्ड मार्शल मानेकशॉ के साथ बर्मा में काम कर चुके हैं।

फ़रवरी, 1984 में जनरल रहमान एक सरकारी दौरे पर नई दिल्ली आए। एक अख़बारी मुलाक़ात में उन्होंने बताया कि बर्मा के दौरान एक बार मानेकशॉ बहुत बुरी तरह घायल हो गए थे। दर्द बरदाश्त से बाहर हो गया, तो मानेकशॉ ने तय किया कि वे खुद को गोली मारकर अपनी जान ले लें। उन्होंने जनरल रहमान से एक पिस्तौल माँगी। जनरल अतीकुर्रहमान ने पिस्तौल देने से मना कर दिया। जनरल रहमान ने हँसते हुए कहा, "अगर मुझे उस वक़्त पता होता कि मानेकशॉ 1971 की जंग में हमारे साथ क्या करने वाले हैं, तो मैं यक़ीनन उन्हें अपनी पिस्तौल दे देता।" (टाइम्स ऑफ़ इंडिया; 20 फ़रवरी, 1984)

मानेकशॉ दूसरे विश्वयुद्ध में निराश होकर खुदकुशी करने वाले थे, हालाँकि इसके 25 साल बाद 1971 की जंग में वे जीत हासिल करने वाले और मशहूर होने वाले थे।

हर धर्म में खुदकुशी वर्जित है, क्योंकि यह ईश्वर से पूरी तरह निराश होना है, साथ ही यह परलोक को न मानने के बराबर है। अगर किसी इंसान को यक़ीन

हो कि मरने के बाद वह खत्म नहीं होगा, बल्कि दोबारा ज़िंदा होकर परलोक की दुनिया में पहुँच जाएगा, तो वह कभी खुदकुशी नहीं करेगा। जिस शाख्स को परलोक की अहमियत का एहसास हो, उसके लिए हर दूसरी तकलीफ़ छोटी लगने लगती है।

इसके अलावा इसका एक और पहलू भी है। खुदकुशी को वर्जित ठहराना यह संदेश देना है— “थोड़े समय की तकलीफ़ से घबराकर अपने भविष्य को न भूल जाओ।”

यह दुनिया एक ऐसी जगह है, जहाँ हर इंसान पर दुख और तकलीफ़ का वक्रत आता है, मगर ऐसे वक्रत हमेशा थोड़े समय के लिए होते हैं। अगर कोई इंसान उस वक्रत को बरदाशत कर ले, तो उसे जल्द ही पता चलता है कि ‘आज के अँधेरे’ में उसके लिए एक ‘उज्ज्वल भविष्य’ का वादा छुपा हुआ है। वह हार मानकर खुद को मिटाना चाहता है, इस बात से अनजान कि भविष्य उसका नाम एक विजेता के तौर पर इतिहास में लिखने का इंतज़ार कर रहा है।



और ताला खुल गया



उसकी नाकाम कोशिश अब झुँझलाहट में बदल चुकी थी। वह काफ़ी देर से ताले के साथ ज़ोर-आज़माइश कर रहा था।

‘चाबी तो सही लग रही है। ज़रूर ताले के अंदर कोई ख़राबी है, जिसकी वजह से ताला नहीं खुल रहा,’ उसने सोचा।

उसका गुस्सा अब उस हद तक पहुँच चुका था कि अगला क़दम सिर्फ़ यही था कि ताला खोलने के लिए वह चाबी की जगह हथौड़े का इस्तेमाल शुरू कर दे। तभी उसके मेज़बान (host) रफ़ीक़ अहमद आ गए।

“क्या ताला नहीं खुल रहा?” उन्होंने चाबी अपने हाथ में लेते हुए कहा, “अच्छा, आप ग़लत चाबी लगा रहे थे। असल में आज ही मैंने इसका ताला बदल दिया है, लेकिन मैं नई चाबी चाबी-छल्ले में डालना भूल गया। इसकी चाबी दूसरी है।”

इसके बाद उन्होंने जब से दूसरी चाबी निकाली और पलभर में ताला खुल गया।

जब जमाना बदलता है, तो ऐसा ही हाल उन लोगों का हो जाता है, जो पुरानी क्राबिलियत के भरोसे आज की दुनिया में अपनी क्रीमत वसूलना चाहते हैं। नए दौर में जिंदगी के सभी दरवाजों के ताले बदल चुके होते हैं, मगर वे पुरानी चाबियों का गुच्छा लिये नए तालों के साथ जोर-आजमाइश करते रहते हैं और जब उनकी पुरानी चाबियों से नए ताले नहीं खुलते, तो कभी ताला बनाने वाले पर और कभी पूरे माहौल पर नाराज होते हैं। हालाँकि जब ताले बदल चुके हों, तो ऐसा कभी नहीं हो सकता कि पुरानी चाबियों से नए ताले खुल जाएँ।

वास्तविकता के दौर में भावुक भाषण और लेख, रचनात्मक मजबूती के ज़रिए ऊपर उठने के दौर में जलसों और जुलूसों के ज़रिए देश का भविष्य बनाने की कोशिश, सामाजिक बुनियादों की अहमियत के ज़माने में राजनीतिक सौदेबाज़ी के ज़रिए तरक्की की योजनाएँ— ये सब इसी की मिसालें हैं। ये पुराने पैमानों के आधार पर आज की दुनिया में जिंदगी का हक़ माँगना है, जो कभी कामयाब नहीं हो सकता। ऐसे लोगों का आज की दुनिया में सिर्फ़ यही अंजाम होता है कि वे मानसिक मरीज़ बनकर रह जाते हैं। जो कुछ उन्हें उनके हक़ के आधार पर नहीं मिला है, उसे वे जुल्म समझने लगते हैं और फिर हमेशा के लिए नकारात्मक सोच का शिकार हो जाते हैं।



शौक़ काफ़ी है



उस्ताद यूसुफ़ देहलवी (देहांत : 1977) एक मशहूर कैलिग्राफ़र थे। उन्हें कैलिग्राफ़ी की कला में ग़ैर-मामूली महारत हासिल थी। कहा जाता है कि एक बार 'ख़त-ए-जली' (बड़े आकार की कैलिग्राफ़ी) की प्रतियोगिता हुई। यमुना नदी के रेतीले किनारे पर बहुत-से कैलिग्राफ़र जमा हुए। जब उस्ताद यूसुफ़ आए, तो उनके हाथ में बाँस का एक बड़ा टुकड़ा था। उन्होंने बाँस से रेत पर लिखना शुरू किया। जब वे 'अलिफ़' से 'शीन' तक पहुँचे, तो

तक़रीबन लगभग 200 मीटर का फ़ासला तय हो चुका था। लोगों ने कहा, “बस कीजिए।” उस्ताद यूसुफ़ ने जवाब दिया, “जो मैंने लिखा है, उसमें रंग भर दो और फिर हवाई जहाज़ से छोटे आकार में इसकी फ़ोटो ले लो। मुझे यकीन है कि फ़ोटो में मेरी लिखावट का असली सौंदर्य बरकरार रहेगा।” इसके बाद किसी और में अपना हुनर दिखाने की हिम्मत नहीं हुई।

बँटवारे के बाद वे पाकिस्तान चले गए। वहाँ शाह सऊद के आगमन पर उन्हें एक मेहराब पर लिखने का काम दिया गया। गवर्नर-जनरल स्वागत की तैयारियों का जायज़ा लेने खुद पहुँचे। इस दौरान उन्होंने उस्ताद यूसुफ़ द्वारा लिखी गई मेहराब भी देखी। लिखावट की शान देखकर वे हैरान रह गए। उन्होंने पूछा, “यह किस कैलिग्राफ़र ने लिखा है?” इस पर उस्ताद यूसुफ़ को बुलाया गया। गवर्नर-जनरल ने उनके काम की तारीफ़ की और पूछा कि इसे लिखने में कितना वक़्त लगा। उस्ताद यूसुफ़ ने कहा, “सात दिन।” गवर्नर-जनरल ने तुरंत अपने सचिव को आदेश दिया कि उस्ताद को उनकी सेवा के सम्मान में सात हजार रुपये पेश किए जाएँ। तभी उन्हें इस रक़म का चेक दे दिया गया।

किसी ने उस्ताद यूसुफ़ से पूछा कि कैलिग्राफ़ी का हुनर आपने किस उस्ताद से सीखा। उन्होंने जवाब दिया, “किसी से नहीं।” उनके पिता खुद एक मशहूर कैलिग्राफ़र थे, लेकिन उन्होंने अपने पिता से भी नहीं सीखा था। पूछने पर उन्होंने समझाया, “मैंने कैलिग्राफ़ी का हुनर लाल क्रिले से सीखा है।” लाल क्रिले में मुग़ल दौर के उस्तादों की तख़्तियाँ रखी हुई हैं। इन तख़्तियों पर कैलिग्राफ़ी के शाहकार नमूने लिखे हैं। उस्ताद यूसुफ़ लगातार दस साल तक रोज़ लाल क्रिले जाकर इन तख़्तियों को देखते थे। हर रोज़ एक टुकड़ा याद करके वापस आते। फिर उसे अपने क़लम से बार-बार लिखते और अगले दिन अपना लिखा हुआ काग़ज़ लेकर फिर लाल क्रिले जाते। वहाँ रखी तख़्ती से अपने लिखे की तुलना करते और इस तरह अपनी ग़लतियाँ सुधारते। इस तरह लगातार दस साल तक रोज़ाना लाल क्रिले की तख़्तियों से उन्होंने खुद ही सीखा और मेहनत से अभ्यास किया। यही दस साल की मेहनत थी, जिसने उन्हें उस्ताद यूसुफ़ बना दिया।

अगर इंसान के अंदर शौक़ हो, तो न पैसे की ज़रूरत है, न उस्ताद की, न किसी और चीज़ की। उसका शौक़ ही हर चीज़ का विकल्प बन जाएगा। वह बिना किसी चीज़ के हर चीज़ हासिल कर लेगा।



ज्यादा बहस करना या ज़बान चलाना



सुक्रात (Socrates) ने कहा था— “अगर तुम इतने ज्यादा झगड़ालू हो कि तुमसे बहस में कोई जीत नहीं सकता, तो तुम गरीबों के साथ कभी हमदर्दी नहीं रख सकते।”

ऊपर से देखने पर यह बात अजीब लगती है कि इतना बहस करने का गरीबों के साथ हमदर्दी से क्या लेना-देना, लेकिन अगर गहराई से सोचो, तो इन दोनों का गहरा कनेक्शन है! गरीबों के साथ सच्ची हमदर्दी वही इंसान रख सकता है, जो सच्चाई को मानना जानता हो, चाहे वह सच्चाई एकदम गरीब इंसान से ही क्यों न जुड़ी हो।

एक कहानी से यह बात पूरी तरह समझ आ जाएगी।

एक ज़मींदार ने अपना आम का बाग एक माली को बेच दिया। जब पेड़ों पर फल लगे, तो एक तूफ़ान आया। उस तूफ़ान में बहुत सारे फल टूटकर गिर गए। माली को डर सताने लगा कि वह फल बेचकर पूरे पैसे नहीं कमा पाएगा और उसे नुक़सान हो जाएगा। उसने टूटे हुए आम एक टोकरी में इकट्ठे किए और उन्हें लेकर ज़मींदार के पास पहुँचा और बोला, “देखिए, तूफ़ान की वजह से बहुत सारे फल गिर गए हैं। हमें नुक़सान का डर है, इसलिए आप बाग की कीमत में थोड़ी कमी कर दें।”

ज़मींदार ने यह सुना तो गुस्से में बोला, “जब तुमने हमारा बाग ख़रीदा था, तब तुम्हें यह मालूम नहीं था कि बाग के चारों तरफ़ कोई ऊँची दीवार नहीं है, जो तूफ़ान को रोक सके?” गरीब माली निराश होकर चला गया।

उस वक़्त ज़मींदार का एक दोस्त भी वहाँ बैठा हुआ था और उसने सारी बातचीत सुन ली थी। जब माली चला गया, तो उसने ज़मींदार से कहा, “तुम बहुत ही सख़्त दिल लगते हो, तुम्हें एक गरीब आदमी पर दया नहीं आती।”

ज़मींदार साहब ने यह सुनकर कहा, “आप जैसे पढ़े-लिखे लोग शायद यही सोचते हैं कि एक इंसान दूसरे को रोज़ी देता है, पर असलियत यह है कि रोज़ी देने वाला ईश्वर है। वह हर किसी को उसकी रोज़ी पहुँचा ही देता है।”

एक इंसान ताक़तवर लोगों के सामने अकसर बोल नहीं पाता, लेकिन जब कमज़ोर इंसान का मामला होता है, तो वह पूरी ज़बान चला देता है। उसकी यह बहस करने की आदत उसे यह मौक़ा ही नहीं देती कि वह गंभीरता से मामले को समझे, सच्चाई को स्वीकार करे और फिर उसी के हिसाब से वह सही काम करे, जो उसे करना चाहिए।



हकीक़त-पसंदी



शहद की मक्खियाँ (honeybees) अकसर अपना छत्ता ऐसी जगह बनाती हैं, जो फूलों से कई मील दूर होता है। एक फूल में बहुत ही थोड़ी मिठास (nectar) होती है, इसलिए उसे बहुत दूर-दराज़ जाना पड़ता है, ताकि ढेर सारे फूलों का रस चूसकर ज़रूरी मात्रा में शहद जमा कर सके।

एक मक्खी पूरा दिन उड़ती रहती है, ताकि हर एक फूल से रस निकाल सके और उसे लेकर अपने छत्ते में इकट्ठा कर सके। देखने में आया है कि मक्खी जब सुबह अपनी पहली उड़ान भरती है, तो अँधेरे में निकलती है, लेकिन शाम को जब फूलों वाली जगह से आखिरी बार वापस आती है, तो उसकी यह उड़ान कुछ रोशनी में होती है। सवाल है— पहली बार अँधेरे में जाना और आखिरी बार रोशनी में क्यों? इसकी वजह इन दोनों वक़्तों का फ़र्क़ है। सुबह के वक़्त उड़ान का मतलब है कि वह अँधेरे से रोशनी की तरफ़ जा रही है, जबकि शाम के वक़्त उड़ान का मतलब है कि वह रोशनी से अँधेरे की तरफ़ जा रही है।

मक्खी इस वक़्त के फ़र्क़ को समझती है और पूरा ध्यान रखती है। मक्खी अपना लंबा सफ़र सही से सिर्फ़ धूप (sunlight) में ही पूरा कर पाती है। अँधेरे में उसके भटक जाने और अपनी मंज़िल पर न पहुँच पाने का ख़तरा रहता है। इसलिए सुबह वह अपनी पहली उड़ान अँधेरे में ही शुरू कर देती है, क्योंकि उसे पता है कि अगले पल रोशनी के होंगे। इसके उलट शाम को वह आखिरी उड़ान के लिए रोशनी रहते ही निकल पड़ती है, क्योंकि उसे पता है कि जितनी देर होगी, उतना ही अँधेरा बढ़ता जाएगा।

यह कुदरत की सीख है। इस तरह कुदरत हमें बताती है कि ज़िंदगी में हमारा हर क़दम हक़ीक़त पर उठाना चाहिए, ख़्याली पुलाव या झूठी उम्मीदों पर नहीं। आने वाले पल कभी 'अँधेरे' के होते हैं और कभी 'रोशनी' के। अगर हम इस फ़र्क़ को नज़र-अंदाज़ करें और आने वाले वक़्त का ख़्याल किए बिना ही चल पड़ें, तो आने वाला हर पल हमारा ख़्याल नहीं रखेगा। वह अपने सिस्टम के मुताबिक़ आएगा, हमारे ख़्यालों के मुताबिक़ नहीं। नतीजा यह होगा कि कभी हमें लगेगा कि हम एक शानदार भविष्य और चमकदार नतीजे की तरफ़ बढ़ रहे हैं, लेकिन जब अगला पल आएगा, तो पता चलेगा कि हम तो बस अँधेरे की तरफ़ बढ़ते जा रहे थे।

दुश्मनी के वक़्त भी

रूस और अमेरिका दोनों एक-दूसरे के सबसे बड़े दुश्मन हैं। इसके अलावा दोनों ने बहुत बड़ी मात्रा में ख़तरनाक परमाणु हथियार बना रखे हैं। ये हथियार मिनटों में एक देश से दूसरे देश तक पहुँच सकते हैं। इसका मतलब है कि एक छोटी-सी ग़लतफ़हमी भी इन दोनों ताक़तवर देशों के बीच ऐसी जंग छेड़ सकती है, जो उनके शानदार शहरों को एकदम से मलबे में बदल दे।

इसलिए एक तरफ़ तो ये देश एक-दूसरे के खिलाफ़ हर तरह के जानलेवा हथियार जमा कर रहे हैं, दूसरी तरफ़ पिछले 20 सालों से उनके बीच एक इमरजेंसी कम्युनिकेशन सिस्टम बना हुआ है। इस सिस्टम की मदद से वे दिन या रात के किसी भी वक़्त एक-दूसरे से संपर्क कर सकते हैं और बहुत नाज़ुक मौक़ों पर सीधी बात करके ग़लती से होने वाली जंग के ख़तरे को टाल सकते हैं। इस हमेशा चलने वाले सिस्टम को 'हॉटलाइन' कहते हैं। परमाणु हथियारों के और विकसित होने के बाद यह समझ आया कि पुरानी हॉटलाइन बहुत 'स्लो' है। हथियारों की तेज़ रफ़्तार के मुक़ाबले में जंग के तुरंत ख़तरे को रोकने के लिए यह बिलकुल भी काफ़ी नहीं थी, इसलिए पिछले एक साल से मास्को और वाशिंगटन के एक्सपर्ट्स इस बात पर बातचीत कर रहे थे कि मौजूदा हॉटलाइन को अपग्रेड करके आज के ज़माने के हिसाब से आधुनिक बनाया जाए।

आखिरकार जुलाई, 1984 में दोनों देशों के बीच एक नई संधि पर सहमति हुई। (टाइम्स ऑफ़ इंडिया; 11 जुलाई, 1984) अब तक मास्को और वाशिंगटन के बीच जो टेलिक्स मशीनें इस्तेमाल होती थीं, वे एक मिनट में साठ शब्द एक जगह से दूसरी जगह भेज पाती थीं। नए समझौते के मुताबिक जो सिस्टम लागू किया गया है, उसके तहत तैयार किए गए टेक्स्ट का एक पूरा पन्ना सिर्फ़ एक सेकंड में वाशिंगटन से मास्को या मास्को से वाशिंगटन पहुँच जाएगा यानी पहले के मुक़ाबले सैकड़ों गुना ज़्यादा तेज़। इस तरह रूस और अमेरिका ने ख़तरे से बचाव के इंतज़ाम को ख़तरे के स्तर के बराबर कर लिया।

यह एक ऐसा उदाहरण है, जिससे पता चलता है कि समझदार लोग दुश्मनी की आखिरी हद पर पहुँचकर भी कितने होशियार रहते हैं। दूसरी तरफ़ मूर्ख लोग होते हैं, जिन्हें बस इतना आता है कि थोड़ी-सी बात पर लड़ पड़ें और फिर किसी भी हालत में अपनी बेमतलब की लड़ाई ख़त्म ही न करें।

शिक्षा की अहमियत

शिक्षा सिर्फ़ नौकरी का सर्टिफ़िकेट नहीं है। इसका असली मक़सद देश के लोगों को जागरूक और समझदार बनाना है। लोगों को जागरूक बनाना एक अच्छा समाज (community) बनाने का पहला क़दम है। समाज का सफ़र जब भी शुरू होगा, यहीं से होगा। यह सफ़र कहीं और से शुरू नहीं हो सकता।

जागरूक बनाने का क्या मतलब है? इसका मतलब है कि समाज के लोग अतीत और वर्तमान को आपस में जोड़ सकें। वे ज़िंदगी की परेशानियों को दुनिया की बड़ी तस्वीर में रखकर देख सकें। वे जान सकें कि वे क्या हैं और क्या नहीं हैं। वे इस राज़ से वाक़िफ़ हों कि वे अपनी मर्ज़ी को ईश्वर की मर्ज़ी के साथ मिलाकर ही दुनिया में कामयाब हो सकते हैं। एक जागरूक इंसान ही असल मायनों में इंसान है। जो जागरूक नहीं है, वह इंसान भी नहीं है।

एक जागरूक इंसान खुद के और दूसरों के बारे में सही राय बनाने के क़ाबिल हो जाता है। वह जान जाता है कि कौन-सी राय पक्षपाती है और कौन-सी निष्पक्ष।

जब भी कोई मौक़ा आता है, वह पहचान लेता है कि कौन-सा काम प्रतिक्रिया (reaction) है और कौन-सा सकारात्मक क्रदम। वह बुराई को अच्छाई से अलग करता है और झूठ को छोड़कर सच को पहचानता है। हर इंसान के माथे पर एक आँख होती है। शिक्षा इंसान को एक मानसिक आँख देती है। सामान्य आँख इंसान को बाहरी चीज़ें दिखाती है, लेकिन शिक्षा की आँख इंसान को इस लायक बनाती है कि वह असली और आध्यात्मिक चीज़ों को देख सके।

जैसे एक किसान बीज से पेड़ बनाता है, वैसे ही एक शिक्षण संस्था का काम है कि वह इंसान को बुद्धिमान बनाए, ताकि वह ज़िंदगी के विकास के सफ़र को पूरा कर सके। शिक्षा इंसान को नौकरी देती है, लेकिन यह शिक्षा का छोटा फ़ायदा है। शिक्षा का असली पहलू यह है कि वह इंसान को ज़िंदगी का विज्ञान सिखाए। वह इंसान को असल मायनों में इंसान बना दे।

उसके बावजूद

11 नवंबर, 1986 की सुबह मेरे साथ एक 'हादसा' हुआ। ग़लती से मेरा चश्मा पत्थर के फ़र्श पर गिर गया। उसका शीशा टूट गया। थोड़ी देर के लिए मैं बहुत हैरान और परेशान हो गया। फिर मैंने सोचा, 'इस दुनिया में हमेशा यही होगा— यहाँ पत्थर का फ़र्श भी होगा और नाज़ुक शीशे भी। इसलिए इस दुनिया में 'सुरक्षा' का मतलब यह नहीं है कि चीज़ें कभी न टूटें। इस दुनिया में सुरक्षा यह है कि टूटने के बावजूद हम चीज़ों को सुरक्षित रख सकें। निराशाजनक घटनाएँ होने के बावजूद भी हमें अपने आपको बेइतिहा नुक़सान से बचाना चाहिए।

गुलाब का फूल कितना सुंदर होता है! उसे फूलों का राजा कहा जाता है, मगर जिस डाली पर यह नाज़ुक गुलाब खिलता है, उसी पर तेज़ काँटे भी लगे होते हैं। यह प्रकृति का नियम है। हमारे लिए यह नामुमकिन है कि हम फूल को काँटे से अलग कर सकें। हमें काँटों के बावजूद फूल को स्वीकार करना होगा। इस दुनिया में हम बिना काँटों के फूल को नहीं पा सकते।

यह जीवन का एक सबक़ है, जो प्रकृति की ख़ामोश ज़बान में हमें सिखाया

जा रहा है। यह घटना दिखाती है कि इस दुनिया में 'बावजूद' का सिद्धांत काम कर रहा है। यहाँ ना-खुशगवारी के बावजूद हमें सुखद चीजों को स्वीकार करना पड़ता है। यहाँ 'नहीं' के बावजूद हमें उसे 'हाँ' में बदलना होता है।

यही इस दुनिया का सामान्य नियम है। यहाँ सफलता का मतलब है— नाकामयाबियों के बावजूद सफलता तक पहुँचने का रास्ता निकाला जाए। यहाँ व्यापार का मतलब है— घाटे के बावजूद मुनाफ़ा कमाया जाए। यहाँ आगे बढ़ने का मतलब है— पीछे हटने की घटनाओं के बावजूद आगे का सफ़र जारी रखा जाए। इस दुनिया में खोने के बावजूद पाने को ही असली पाना कहते हैं। यहाँ एकता सिर्फ़ उन्हीं लोगों के बीच क़ायम होती है, जो मतभेदों के बावजूद एक होने का फ़न जानते हों।



अपनी कोशिशों से...



मनोवैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि इंसान अपनी जन्मजात क्षमताओं का सिर्फ़ दस प्रतिशत ही इस्तेमाल करता है। इस रिसर्च का जिक्र करते हुए हार्वर्ड यूनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर विलियम जेम्स ने कहा—

“हमें जो बनना चाहिए, वह उस स्तर से कहीं आगे है, जिसके लिए हम खुद को तैयार करते हैं।”

हम दूसरों से शिकायत करते हैं कि वे हमें हमारा हक़ नहीं देते, लेकिन पहले हमें खुद से शिकायत करनी चाहिए कि जो तरक्की और कामयाबी हमारे भाग्य में लिखी थी, उसके मुक़ाबले हमने एक बहुत ही छोटी ज़िंदगी पर संतोष कर लिया।

हर इंसान के लिए ज़रूरी है कि वह दूसरों की तरफ़ देखने के बजाय खुद अपनी तरफ़ देखे, क्योंकि इंसान खुद अपना दोस्त भी है और खुद अपना दुश्मन भी। बाहर न तो उसका कोई दोस्त है और न ही दुश्मन। इंसान अपनी संभावनाओं का इस्तेमाल करके कामयाबी हासिल करता है और जब वह अपनी संभावनाओं का इस्तेमाल नहीं करता, तो वही नाकामयाबी है।

हालाँकि यह भी जरूरी है कि कोशिशें सही दिशा में हों। गलत दिशा में कोशिश करना अपनी ताकत बरबाद करने के बराबर है।

पुराने ज़माने के लोगों के हिसाब से अमीर बनने का सिर्फ़ एक ही तरीका था— लोहे को सोना बनाना। वे क़ीमती चीज़ के नाम पर सिर्फ़ सोना जानते थे। अनगिनत लोगों ने हज़ारों साल तक लोहे को सोना बनाने की कोशिश की, लेकिन आख़िर में उन्हें अपना वक्रत और पैसा बरबाद करने के अलावा कुछ नहीं मिला और एक दिन अफ़सोस के साथ मर गए, लेकिन ईश्वर की दुनिया में एक दूसरी और भी बड़ी संभावना मौजूद थी और वह थी लोहे को मशीन में बदलना। आधुनिक ज़माने में पश्चिमी देशों ने इस राज़ को जाना और अपनी मेहनत इसी दिशा में लगा दी। उन्होंने लोहे को मशीन में बदल दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि वे सोने-चाँदी से भी ज़्यादा बड़ी मात्रा में दौलत हासिल करने में कामयाब हो गए।



एक के बाद दूसरा

पर्ल हार्बर अमेरिका का एक बंदरगाह है। दूसरे विश्वयुद्ध के ज़माने में यहाँ अमेरिकी नौसेना का एक बहुत बड़ा फ़ौजी अड्डा था। 7 दिसंबर, 1941 को जापान ने अचानक पर्ल हार्बर पर बमबारी करके उसे तबाह कर दिया। अमेरिका का यह क्रसूर था कि वह जापान के दुश्मन देशों को फ़ौजी हथियार बेच रहा था, लेकिन जापान की इस फ़ौजी हरकत ने मसला और पेचीदा कर दिया। अब अमेरिका सीधे युद्ध में कूद पड़ा। इसके बाद अमेरिका, ब्रिटेन और रूस ने मिलकर एक फ़ौजी मोर्चा बनाया, जो इतिहास में ‘एलाइड पावर्स’ (Allied Powers) के नाम से मशहूर है। इस फ़ौजी गठजोड़ का सबसे ज़्यादा नुक़सान जापानियों को उठाना पड़ा। अगस्त, 1945 में अमेरिका ने जापान के दो औद्योगिक शहरों हिरोशिमा और नागासाकी पर इतिहास के पहले परमाणु बम गिराए। जापान के दोनों औद्योगिक केंद्र पूरी तरह तबाह हो गए और उसके साथ ही जापान की फ़ौजी ताकत भी ख़त्म हो गई।

पर्ल हार्बर पर बमबारी करना बेशक जापान की एक बहुत बड़ी फ़ौजी ग़लती

थी। इस क़दम ने बेवजह अमेरिका को जापान का दुश्मन बना दिया और सीधे उसके खिलाफ़ खड़ा कर दिया, लेकिन जापान एक जिंदादिल क्रौम है। उसने एक ग़लती के बाद दूसरी ग़लती नहीं की। उसने नए हालात को मान लिया और उनसे लड़ने के बजाय उनके साथ तालमेल बैठाने का तरीक़ा अपनाया।

जापान की इस समझदारी ने उसके लिए एक नई और बड़ी संभावना खोल दी। युद्ध के मैदान में मौक़े न मिलने पर उसने शिक्षा और उद्योग के क्षेत्र में अपनी जद्दोजहद शुरू कर दी। राजनीतिक और फ़ौजी नज़रिए से उसने अमेरिका की बढ़त मान ली और दूसरे शांतिपूर्ण क्षेत्रों में अपना ध्यान लगाया। इसका नतीजा यह हुआ कि 30 साल में जापान ने पहले से भी ज़्यादा ताक़तवर मुक़ाम हासिल कर लिया। इस घटना का ज़िक्र करते हुए एक पर्यवेक्षक (observer) ने लिखा है—

“यह पर्ल हार्बर घटना का एक बहुत ही अजीब निष्कर्ष है, लेकिन इतिहास में ऐसे उभरने (turn-around) के कई उदाहरण मिलते हैं और शायद पर्ल हार्बर भी उनमें से एक है।”

(हिंदुस्तान टाइम्स; 30 नवंबर, 1981)

हर नाकामयाबी के बाद इंसान के लिए एक नई कामयाबी की संभावना बनी रहती है, बशर्ते कि वह न झुठी अकड़ दिखाए और न ही बेफ़ायदा रोने-पीटने में अपना वक़्त बरबाद करे, बल्कि हालात के मुताबिक़ दोबारा से अपनी जद्दोजहद शुरू कर दे।



मौक़े का इस्तेमाल



अमेरिका में एक बार कुछ बहुत सफल बिज़नेसमैन पर एक स्टडी हुई, जो कामयाबी की सीढ़ी पर बहुत ऊपर पहुँचे। उनकी इस कामयाबी की वजह के बारे में कई बातें कही गईं... जैसे— बहुत ज़्यादा मेहनत, काम का इतना जुनून कि बीवी-बच्चे, छुट्टी, मौज़-मस्ती सब पीछे रह जाएँ वग़ैरह-वग़ैरह। वैसे असल में उनकी कामयाबी की सबसे अहम वजह एक रिसर्चर (Reader's Digest, May 1982) के मुताबिक़ यह है कि ऐसे लोग मौक़ों को पहचानने के उस्ताद

होते हैं। अपने फ़ायदे का कोई भी मौक़ा आते ही वे उसे फ़ौरन इस्तेमाल करते हैं, देर नहीं करते।

सीधी बात यह है कि बड़ी कामयाबी सही वक़्त पर मौक़े का फ़ायदा उठाने का ही दूसरा नाम है। चाहे जान-बूझकर हो या अचानक, इंसान को हमेशा, हर फ़ील्ड में चौकन्ना रहना चाहिए और जैसे ही कोई अच्छा मौक़ा मिले, उसे तुरंत इस्तेमाल करना चाहिए, क्योंकि मौक़ा हमेशा ज़िंदगी में एक ही बार आता है, दोबारा नहीं आता। जिसने एक बार मौक़ा गँवा दिया, समझो उसने उसे हमेशा के लिए खो दिया।

नए मौक़े बिलकुल छिपे हुए नहीं होते, बहुत-से लोगों को उनका अंदाज़ा हो जाता है, लेकिन आगे बढ़कर उन्हें इस्तेमाल करने वाले हमेशा बहुत कम होते हैं। इसकी वजह यह है कि नए मौक़े को इस्तेमाल करने में हमेशा कुछ जोखिम (risk) भी होता है। इसका नतीजा भविष्य में मिलने वाला है, इसलिए इसमें उम्मीद भी होती है और डर भी। जो लोग आलस करते हैं या बस सोचते ही रह जाते हैं, वे पीछे रह जाते हैं। इसके उलट जो लोग चौकन्ने होते हैं और जोखिम उठाकर आगे बढ़ जाते हैं, वही कामयाब होते हैं।

संभावनाओं को पहचानो। जब भी कोई मौक़ा मिले, उसे फ़ौरन इस्तेमाल करो। तुम ज़रूर बड़ी कामयाबी हासिल करोगे।



हार में जीत



दूसरे विश्वयुद्ध (1939-45) में शुरुआत में अमेरिका सीधे शामिल नहीं था, लेकिन हथियारों और सामान की मदद से वह ब्रिटेन और उसके साथियों की ताक़त बना हुआ था, इसीलिए जापान ने अमेरिका के खिलाफ़ एक चोरी-छिपे प्लान बनाया। 7 दिसंबर, 1941 को उसने अचानक अमेरिका के नेवल बेस 'पर्ल हार्बर' पर ज़ोरदार हमला किया और उसे तबाह कर दिया। हालाँकि अमेरिका की एयर पावर बच गई।

उस वक़्त अमेरिका में परमाणु बम (atomic bomb) का पहला बैच बनकर

तैयार हो रहा था, इसलिए जैसे ही वह तैयार हुआ, अमेरिका ने जापान से कहा कि वह बिना किसी शर्त के सरेंडर कर दे, नहीं तो उसे तबाह कर दिया जाएगा। जापान को अमेरिका की इस नई ताकत का अंदाज़ा नहीं था, इसलिए उसने यह बात नहीं मानी। आखिरकार 14 अगस्त, 1945 को अमेरिका ने जापान के दो बड़े औद्योगिक शहरों हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम गिरा दिए। एक पल में जापान की सारी फ़ौजी ताकत बरबाद हो गई। जापान को मजबूर होकर हथियार डालने का ऐलान करना पड़ा।

इसके फ़ौरन बाद जनरल डगलस मैकआर्थर अमेरिकी फ़ौज के साथ जापान में उतर गए। जापान पर पूरी तरह से अमेरिका का क़ब्ज़ा हो गया।

हालाँकि जापान हथियारों से हार चुका था, लेकिन जापानी लोगों के दिलों में जंग का जोश अब भी बाक़ी था। उस वक़्त जापानियों का जंगी जुनून इतना ज़्यादा था कि वे अपने शरीर पर बम बाँधकर दुश्मन के जहाज़ों की चिमनियों में कूद जाया करते थे। अब जनरल मैकआर्थर के सामने सबसे बड़ा सवाल यह था कि इस जुनून को कैसे ख़त्म किया जाए। उन्होंने इसका हल यह निकाला कि जापानियों के जोश को जंग से हटाकर आर्थिक गतिविधियों (economic activities) की तरफ़ मोड़ दिया जाए। एक अमेरिकी विश्लेषक एंथनी लुईस ने लिखा—

“जब जापान ने 40 साल पहले सरेंडर किया, तो जनरल डगलस मैकआर्थर ने सिर्फ़ क़ब्ज़ा करने का ही नहीं, बल्कि देश को दोबारा बनाने का भी ज़िम्मा लिया। अगर उस वक़्त उनसे पूछा जाता कि उनकी सबसे बड़ी ख़्वाहिश क्या है, तो शायद वे कहते— इन आक्रामक लोगों की ताकत को सेना के बजाय आर्थिक महत्वाकांक्षा की तरफ़ लगाना।”

(Times of India; August 26, 1985)

अब जापान के पास एक रास्ता यह था कि वह अपनी पुरानी सोच बनाए रखता। अगर खुलकर लड़ने का मौक़ा नहीं था, तो वह अमेरिका के खिलाफ़ अपनी दुश्मनी चोरी-छिपे जारी रखता, लेकिन जापान ने जीतने वाले (अमेरिका) की बात मानते हुए फ़ौरन अपनी दिशा बदल ली। उसने अमेरिका से सीधी टक्कर लेना पूरी तरह से छोड़ दिया और अपनी सारी ताकत विज्ञान, शिक्षा और तकनीकी विकास (technical development) में लगा दी।

इसका नतीजा यह हुआ कि उसे ज़बरदस्त कामयाबी मिली। जापान ने तेज़ी से आर्थिक तरक्की की। उसने 1971 में अमेरिका को छह अरब डॉलर का सामान बेचा। उसके बाद से अमेरिका में जापानी सामान की लोकप्रियता बढ़ती ही गई, यहाँ तक कि 1985 के अनुमान के मुताबिक अमेरिका का जापान के साथ ट्रेड डेफ़िसिट (व्यापार घाटा) 45 अरब डॉलर तक पहुँच जाने वाला था।

(Times of India; September 14, 1985)

Newsweek (12 अगस्त, 1985) में 'JAPAN: The 40-year Miracle' नाम की एक रिपोर्ट छपी थी। इसमें 1945 की पूरी तबाही के चालीस साल बाद जापान की हैरतअंगेज़ तरक्की के बारे में बताते हुए कहा गया कि जापानी क्रौम 'एक कल्पित चिड़िया' (mythical phoenix) की तरह अपनी ही राख से फिर से उठ खड़ी हुई।

जापान को अपने ही फ़तह करने वाले (अमेरिका) के मुक़ाबले में यह कामयाबी इसलिए मिली, क्योंकि उसने अपनी हार मान ली थी। हकीकत को स्वीकार करना ही दुनिया में कामयाबी का एकमात्र राज़ है, भले ही बहुत-से नादान लोग कामयाबी का राज़ हकीकत से मुँह मोड़ने में ढूँढने लगते हैं।

कामयाबी के लिए



एक बिज़नेसमैन से पूछा गया— “कामयाबी क्या है?” उसने जवाब दिया— “जब तुम सुबह उठो, बिस्तर से कूदकर बाहर आओ और चिल्लाओ— वाह! एक और दिन! तब तुम कामयाब हो।”

असल में, रात के बाद एक नई सुबह का आना सबसे बड़ी चीज़ है, क्योंकि यह हमारे लिए काम करने का एक और दिन देता है। जिस इंसान के अंदर सच में काम का जज़्बा होगा, वह ऐसे दिन को पाकर खुशी से उछल पड़ेगा और जो इंसान काम के दिन को पाकर खुश हो उठे, वही इस दुनिया में कुछ बड़ा कर सकता है।

धरती पर रात और दिन का बारी-बारी से आना पूरी जानी-मानी क्रायनात में एक अनोखी बात है, क्योंकि बड़ी-से-बड़ी क्रायनात में या तो सूरज जैसे तारे हैं, जो आग के बहुत बड़े गोले की तरह हैं और उन पर इंसान जैसी जिंदगी मुमकिन

नहीं है। उसके बाद जो ग्रह या उपग्रह हैं, जैसे मंगल (Mars) या चाँद, उनका घूमना धरती के उलट सिर्फ़ एकतरफ़ा है यानी वे सिर्फ़ अपनी ऑर्बिट में घूमते हैं। इसका नतीजा यह है कि उनके एक हिस्से पर हमेशा रात रहती है और दूसरे हिस्से पर हमेशा दिन।

धरती एक खास ग्रह है, जो अपनी ऑर्बिट के साथ-साथ अपने एक्सिस पर भी घूमती है। इसी वजह से यहाँ रात और दिन बारी-बारी से आते रहते हैं। यह ईश्वर का ग़ज़ब का इंतज़ाम है। इस तरह ईश्वर ने इंसान को यह मौक़ा दिया है कि वह दिन के समय काम करे और रात को अपनी थकान मिटाए।

अगर कोई आदमी इस पूरे सिस्टम पर गौर करे, तो धरती पर रात के बाद दिन का आना उसे इतना अजीब और खास लगेगा कि सुबह होते ही वह सच में बिस्तर से कूदकर खड़ा हो जाएगा और ईश्वर का शुक्रिया अदा करेगा कि उसने उसे काम करने का क्रीमती मौक़ा दिया। जो लोग सुबह को एक क्रीमती नेमत समझते हैं, वही लोग अपनी सुबह को एक नए मौक़े की तरह इस्तेमाल करने में कामयाब हो सकते हैं।



कमी की भरपाई



काइज़र विल्हेम-II (फ़्रेडरिक विल्हेम-II) 1888 से 1918 तक जर्मनी का बादशाह था। उसका बायाँ हाथ जन्म से ही छोटा और कमज़ोर था। कहते हैं कि उसके गुस्सैल मिज़ाज की वजह यही शारीरिक कमी थी।

काइज़र विल्हेम की ही बिना सोची-समझी नीतियों की वजह से पहला विश्वयुद्ध (1914-1918) शुरू हुआ। एक तरफ़ जर्मनी और उसके साथी थे, तो दूसरी तरफ़ ब्रिटेन और उसके साथी। आखिरकार जर्मनी हार गया। इसके साथ ही काइज़र विल्हेम का राज भी ख़त्म हो गया। जेल या मौत से बचने के लिए वह अपना देश छोड़कर नीदरलैंड चला गया। वहाँ वह 'डोर्न' नाम की जगह पर चुपचाप अपने बाक़ी के दिन बिताने लगा। आखिरकार 4 जून, 1941 को 82 साल की उम्र में उसकी मौत हो गई।

पहले विश्वयुद्ध से ठीक पहले की बात है। काइजर विल्हेम एक सरकारी दौरे पर स्विट्ज़रलैंड गया। उसे यह देखकर बहुत ताज्जुब हुआ कि स्विट्ज़रलैंड भले ही छोटा देश है, लेकिन उसकी सेना बहुत अच्छी और संगठित है। मुलाकात के दौरान उसने स्विट्ज़रलैंड के एक सैनिक से मजाक में पूछा, “अगर जर्मनी की ताकतवर सेना, जो तुम्हारी सेना से दोगुनी है, तुम्हारे देश पर हमला कर दे, तो तुम क्या करोगे?”

उस बेहद ट्रेंड सैनिक ने बहुत गंभीरता से जवाब दिया— “सर, हमें बस एक की जगह दो गोलियाँ चलानी पड़ेंगी।”

उस स्विस सैनिक के इस छोटे-से जवाब में एक बहुत बड़ा सच छुपा है... अगर साधन कम हों, तो बेहतर प्रदर्शन और मेहनत से उसकी भरपाई की जा सकती है। अगर तुम्हारी तादाद दुश्मन से आधी है, तो तुम्हें दुगुनी मेहनत करनी होगी।

ज़िंदगी की रेस में कभी कोई आगे निकल जाता है, तो कोई पीछे रह जाता है। कोई जीतता है, तो कोई हारता है; लेकिन इस दुनिया में मौके इतने हैं कि कभी किसी के लिए ‘अंत’ नहीं होता। यहाँ हर पिछड़े हुए इंसान के लिए फिर से आगे बढ़ने का मौका होता है। जरूरत बस इतनी है कि इंसान ज़्यादा-से-ज़्यादा मेहनत करने के लिए तैयार हो जाए।

मेहनत और लगन से कोई भी ज़िंदगी के मैदान में बराबरी कर सकता है।



बरबादी के बाद भी



एक अंग्रेज़ विद्वान मिस्टर इयान निश (Ian Nish) जापान गए। वे वहाँ ग्यारह साल रहे, जापानी भाषा सीखी और जापानी क्रौम को गहराई से समझा। इसके बाद उन्होंने अपनी रिसर्च के नतीजे में 238 पन्नों की एक किताब छापी, जिसका नाम है— द स्टोरी ऑफ़ जापान (The Story of Japan)

लेखक लिखते हैं—

“जापानी लोगों की ज़िंदगी को सबसे ज़्यादा जिस चीज़ ने प्रभावित किया,

वह सियासत नहीं, बल्कि काँटों का भयानक भूकंप था। 1 सितंबर, 1923 को भूकंप के झटकों ने पूर्वी जापान को तबाह कर दिया, जो कि जापान का सबसे ज्यादा आबादी वाला इलाका था। दूसरा 'इंसान का बनाया हुआ भूकंप' 1945 में जापान की हार थी, जब दो परमाणु बमों ने जापान के दो बहुत बड़े शहरों को मलबे का ढेर बना दिया। अगर 'भूकंप' से नवनिर्माण (कुछ नया रचने) की सोच पैदा हो, तो वह नई तरक्की का जरिया बन जाता है। इसके उलट अगर वह सिर्फ ना-उम्मीदी और गुस्सा पैदा करे, तो उससे सियासी चीख-पुकार पैदा होती है, जो नतीजे के लिहाज से बिलकुल बेमानी है— इससे ज्यादा बेकार कुछ नहीं।”

इंसान की जिंदगी में सबसे जरूरी चीज है— एकशन लेने का जज्बा। जब इंसान के अंदर यह जज्बा पैदा हो जाता है, तो उसकी सोई हुई ताकतें जाग जाती हैं। वह बेहतर सोचता है, बेहतर प्लान बनाता है और ज्यादा मेहनत से अपने काम को पूरा करता है। इसके उलट जिस इंसान के अंदर यह जज्बा नहीं होता, वह ऐसे पड़ा रहता है, जैसे कोई मशीन बंद पड़ी हो और तजुर्बा बताता है कि आराम और चैन की हालत आम तौर पर इंसान की ताकतों को सुला देती है— वे जगाती नहीं हैं। इसके उलट जब इंसान की जिंदगी में मुश्किलें और रुकावटें आती हैं, तो उसकी छुपी हुई ताकतों को झटका लगता है। उसकी क्राबिलियत ऐसे जाग जाती है, जैसे कोई आदमी बेखबर सो रहा हो और उस पर एक पत्थर गिर पड़े, लेकिन यह फ़ायदा अपने आप नहीं मिलता। हर मामले में इंसान को खुद ही पहला क़दम उठाना पड़ता है। जब भी इंसान की जिंदगी में कोई 'बरबादी' वाली घटना होती है, तो वह उसे दो रास्तों पर खड़ा कर देती है— वह या तो इससे सबक लेकर फिर से एक्टिव हो जाए और नई शुरुआत करे या फिर ना-उम्मीदी और शिकायतों में डूबकर आहें भरता रहे। शुरुआती दौर में इंसान जिस रवैये को अपनाता है, उसी के हिसाब से उसकी पूरी जिंदगी चलने लगती है। उसी के मुताबिक उसकी अंदरूनी क्राबिलियतें काम करने लगती हैं।

जब भी इंसान की जिंदगी में कोई हादसा हो, तो हादसे को देखने के बजाय उसे खुद को देखना चाहिए। भविष्य का हर नतीजा इसी पर निर्भर करता है कि इंसान हालात के सामने किस तरह की प्रतिक्रिया देता है। अगर नवनिर्माण का जज्बा पैदा हो, तो यह पॉजिटिव रिएक्शन है, जो जरूर कामयाबी तक पहुँचाता है और अगर विरोध व शिकायत का मनोभाव उभरे, तो यह नेगेटिव रिएक्शन है, जिसका आखिरी नतीजा सिर्फ और सिर्फ बरबादी ही होता है।

तुम गरीब नहीं हो, अमीर हो!



एक भिखारी ने आवाज लगाई— “बाबा, पैसे दे दो!” सुनने वाले ने देखा कि वह हाथ-पैर से पूरी तरह ठीक लग रहा था। उसने कहा— “तुम्हें पैसे क्यों दिए जाएँ?” भिखारी बोला— “मैं गरीब हूँ” आदमी ने कहा— “नहीं, तुम गरीब नहीं हो। तुम बहुत अमीर हो।” भिखारी बोला— “बाबू जी, मजाक न करो। मेरे पास दौलत कहाँ? मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। मैं बिलकुल गरीब हूँ।”

आदमी ने कहा— “अच्छा, तुम्हारे पास जो कुछ है, वह मुझे दे दो। मैं उसके बदले तुम्हें पचास हजार रुपये दूँगा।” भिखारी ने अपनी झोली कंधे से उतारी और बोला— “मेरे पास तो बस यही है। आप इसे ले लो।” आदमी ने कहा— “नहीं, तुम्हारे पास इसके अलावा भी बहुत कुछ है। तुम्हारे पास दो पैर हैं। एक पैर तुम मुझे दे दो और मुझसे दस हजार रुपये ले लो।” भिखारी ने देने से मना कर दिया।

फिर आदमी ने कहा— “अच्छा, तुम्हारे पास दो हाथ हैं। एक हाथ मुझे दे दो और बीस हजार रुपये ले लो।” भिखारी ने फिर से देने से मना कर दिया।

आदमी ने कहा— “ठीक है, तुम्हारे पास दो आँखें हैं। एक आँख मुझे दे दो और बीस हजार रुपये ले लो।” भिखारी ने अभी भी देने से मना कर दिया।

आदमी ने कहा— “देखो, तुम्हारे पास दो पैर, दो हाथ और दो आँखें हैं। मैंने सिर्फ़ एक-एक का दाम लगाया, तो पचास हजार रुपये हो गए। अगर दोनों पैर, दोनों हाथ और दोनों आँखों का दाम लगाया जाए, तो उनकी कीमत एक लाख रुपये होगी। इसका मतलब है कि तुम्हारा जिस्म, जिसमें अनगिनत चीजें हैं, सिर्फ़ उसकी तीन चीजों की कीमत भी कम-से-कम एक लाख रुपये है। फिर तुम गरीब कैसे हो? तुम तो बहुत बड़े अमीर हो! तुम भीख माँगना छोड़ दो और अपनी इस कीमती दौलत का इस्तेमाल करो। तुमसे ज्यादा कामयाब दुनिया में कोई नहीं होगा।”

ईश्वर ने इंसान को बड़ी अजीब काबिलियतों के साथ बनाया है। आम हालात में हमें इसका अंदाज़ा नहीं होता, लेकिन जब कोई चीज़ खो जाती है, तब पता चलता है कि वह कितनी कीमती थी।

जेम्स थॉमस दिल्ली का एक मशीन ऑपरेटर है। उसकी उम्र 24 साल

है। बीमारी की वजह से उसकी दोनों किडनी खराब हो गईं। उसे ऑल इंडिया मेडिकल इंस्टीट्यूट में भर्ती कराया गया। डॉक्टरों ने बताया कि उसके जिंदा रहने का एक ही रास्ता है— किसी से किडनी दान में मिले। किडनी एक पूरी तरह प्राकृतिक चीज है— कोई भी इंसानी कारखाना खरबों रुपये खर्च करके भी किडनी नहीं बना सकता। हालाँकि अगर कोई यह क्रीमती किडनी दान में दे दे, तो डॉक्टरों की फ़ीस और सर्जरी के खर्चे के अलावा भी जेम्स थॉमस को 45 हजार रुपये की ज़रूरत थी, ताकि यह किडनी उसके जिस्म में लगाई जा सके।

(टाइम्स ऑफ़ इंडिया; 10 जनवरी, 1980)

असलियत यह है कि इंसान के पास कुछ न भी हो, फिर भी उसके पास बहुत कुछ होता है। यह जिस्म और यह दिमाग़ जो हमें मिला है, यह दुनिया की सभी क्रीमती चीज़ों से ज़्यादा क्रीमती है। अगर इंसान अपने जिस्म और दिमाग़ की क्राबिलियतों का पूरा इस्तेमाल करे, तो वह दुनिया की हर कामयाबी हासिल कर सकता है। उसके लिए कुछ भी नामुमकिन नहीं है।

अगर आपके पास हाथ हैं, जिससे आप पकड़ सकते हैं; पैर हैं, जिससे आप चल सकते हैं; आँखें हैं, जिससे आप देख सकते हैं और ज़बान है, जिससे आप बोल सकते हैं, तो समझो कि आपके पास सब कुछ है; क्योंकि इनके ज़रिए आप दुनिया की हर चीज़ हासिल कर सकते हैं। कोई भी चीज़ इनकी पहुँच से बाहर नहीं है।



कमज़ोरी ही बनी बड़ी नेमत



गांधी जी ने अपनी किताब ‘माय एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ’ (सत्य के साथ मेरे प्रयोग) में लिखा है कि वे पैदाइशी शर्मिले थे। यह आदत उनमें लंबे समय तक रही। जब वे पढ़ाई के लिए लंदन में थे, तो एक शाकाहारी सोसाइटी के मेंबर बन गए। एक बार उन्हें सोसाइटी की मीटिंग में बोलने के लिए कहा गया। वे खड़े तो हो गए, लेकिन कुछ बोल नहीं सके। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि अपने ख़्यालात कैसे बयान करें। आखिर में वे शुक्रिया के कुछ शब्द कहकर बैठ गए।

एक दूसरे मौके पर उन्हें दावत दी गई कि वे शाकाहार के बारे में अपने विचार बताएँ। इस बार उन्होंने अपने ख्यालात का राज पर लिख लिये, मगर जब वे खड़े हुए, तो अपना लिखा हुआ भी नहीं पढ़ सके। उनकी यह हालत देखकर एक शाख्स ने मदद की और उनकी लिखी हुई बात को पढ़कर सुनाया।

गांधी जी ने वकालत की परीक्षा पास करने के बाद बंबई में प्रैक्टिस शुरू की, मगर यहाँ भी उनका शर्मिलापन रुकावट बन गया। पहला केस लेकर जब वे जज के सामने खड़े हुए, तो उनका दिल बैठने लगा और वे कुछ बोल नहीं सके। आखिर में उन्होंने अपने मुक्किल से कहा, “मैं आपका केस नहीं लड़ सकता। आप कोई दूसरा वकील ढूँढ लें।”

ऊपर से देखने पर ये सब कमियाँ लगती हैं, मगर गांधी जी लिखते हैं कि यही कमियाँ बाद में उनके लिए बहुत बड़ी नेमत (फ़ायदा) साबित हुईं। इस बारे में उनके शब्द हैं—

“बोलने में मेरी झिझक, जो कभी मेरे लिए परेशानी की बात थी, अब मेरी खुशी है। इसका सबसे बड़ा फ़ायदा यह हुआ कि इसने मुझे कम शब्दों में बात करना सिखाया। मेरे अंदर खुद-ब-खुद यह आदत बन गई कि मैं अपने विचारों पर कंट्रोल रखूँ और अब मैं खुद को यह सर्टिफ़िकेट दे सकता हूँ कि कोई बेकार (useless) शब्द मेरी ज़बान या कलम से शायद ही कभी निकले।”

गांधी जी इस बात के लिए मशहूर हैं कि वे बहुत सोच-समझकर बोलते थे और सादे व छोटे-छोटे शब्दों में बात करते थे, मगर यह ख़ास बात उन्हें सिर्फ़ एक आम कमी की वजह से मिली— वह यह कि अपने बहुत ज़्यादा शर्मिलेपन की वजह से शुरुआत में वे लोगों के सामने बोल ही नहीं पाते थे।

रोड क्लोज़्ड है



जब कोई सड़क रिपेयर हो रही होती है, तो उसके बीच में एक बोर्ड लगा दिया जाता है, जिस पर लिखा होता है— ‘रोड क्लोज़्ड,’ मगर इसका मतलब कभी

यह नहीं होता कि रास्ता पूरी तरह बंद हो गया है और अब आने-जाने वालों को अपनी गाड़ी रोककर खड़ी कर देनी चाहिए। इसका सिर्फ इतना मतलब होता है कि 'यह सामने वाली सड़क बंद है।' हर किसी को इस तरह के बोर्ड का मतलब पता होता है। इसलिए जब वाहन वहाँ पहुँचते हैं और बोर्ड देखते हैं, तो वे एक पल के लिए भी नहीं रुकते। वे दाएँ-बाएँ मुड़कर अपना रास्ता निकाल लेते हैं और आगे जाकर फिर से सड़क पर आ जाते हैं और अगर किसी वजह से दाएँ-बाएँ रास्ता न भी हो, तो भी यात्रियों के लिए कोई समस्या नहीं होती। वे आस-पास की सड़कों से अपना सफ़र जारी रखते हैं। कुछ दूर आगे जाकर दोबारा उन्हें असली सड़क मिल जाती है और उस पर चलते हुए वे अपनी मंज़िल पर पहुँच जाते हैं। इस तरह कुछ मिनटों की देरी जरूर हो सकती है, मगर ऐसा कभी नहीं होता कि उनका सफ़र रुक जाए या वे मंज़िल पर पहुँचने में नाकाम रहें।

यही हाल ज़िंदगी के सफ़र का भी है। ज़िंदगी की जद्दोज़हद में कभी ऐसा होता है कि इंसान को लगता है कि उसका रास्ता बंद हो गया है, मगर इसका मतलब सिर्फ इतना होता है कि सामने वाला रास्ता बंद है, न कि हर तरफ़ का रास्ता बंद है। जब भी एक रास्ता बंद होता है, तो दूसरे बहुत-से रास्ते खुले हुए होते हैं। समझदार इंसान वह है, जो अपने सामने 'रोड ब्लॉक' का बोर्ड देखकर रुके नहीं, बल्कि दूसरे रास्ते ढूँढ़कर अपना सफ़र जारी रखे।

अगर एक मैदान में मौक़े न हों, तो दूसरे मैदान में अपने लिए मौक़े तलाश कर लीजिए।

अगर मुक़ाबले से सीधा टकराव मुमकिन न हो, तो घेराव का तरीक़ा अपनाइए। अगर आगे की क़तार में आपको जगह न मिल रही हो, तो पीछे की क़तार में अपनी जगह बना लीजिए। अगर टकराव से समस्या का हल नहीं निकल रहा, तो समझौते के ज़रिए हल निकालिए।

अगर दूसरों का साथ न मिल रहा हो, तो अकेले ही अपने काम की शुरुआत कर दीजिए।

अगर छत बनाने का सामान न हो, तो नींव मज़बूत करने में लग जाइए। अगर इंसानों से राब्ता न बन रहा हो, तो ईश्वर से राब्ता बनाने की कोशिश कीजिए...। हर बंद सड़क के पास एक खुली सड़क भी होती है, मगर उसे सिर्फ़ वही लोग देख पाते हैं, जिनकी आँखें खुली हों।

अफ़सोस मत कीजिए

अमेरिका के एक साइकोलॉजिस्ट डॉक्टर ने कहा है कि इंसान सबसे ज्यादा जिस चीज़ में अपना वक्त बरबाद करता है, वह है— अफ़सोस करना। उनका कहना है कि ज्यादातर लोग बीती हुई बुरी यादों में उलझे रहते हैं। वे यह सोच-सोचकर परेशान रहते हैं कि अगर मैंने ऐसा किया होता, तो मेरा काम बिगड़ता नहीं या अगर मैंने यह तरीका अपनाया होता, तो मैं नुक़सान से बच जाता वग़ैरह-वग़ैरह।

इस तरह के एहसासों में जीना अपने वक्त और ताक़त को बरबाद करना है। जो मौक़ा निकल गया, वह दोबारा वापस नहीं आता। फिर उसका अफ़सोस क्यों किया जाए? उस डॉक्टर के मुताबिक़, सबसे अच्छी बात यह है कि हर ऐसे मौक़े पर आप यह कहें— “अगली बार मैं इसे दूसरे तरीक़े से करूँगा/करूँगी।”

जब आप ऐसा कहेंगे, तो आप बीती हुई बात भूल जाएँगे। आपका ध्यान, जो पहले बेफ़ायदा यादों में लगा था, अब भविष्य के बारे में सोचने और प्लानिंग करने में लगेगा।

(रीडर्स डाइजेस्ट; सितंबर, 1981)

इसका सीधा फ़ायदा यह होगा कि आप अफ़सोस और ग़म में अपनी ताक़त बरबाद करने से बच जाएँगे। जो चीज़ पहले आपके लिए सिर्फ़ कड़वी याद या बोझ थी, वह अब आपके लिए एक क़ीमती तजुर्बा बन जाएगी— एक ऐसा तजुर्बा, जिसमें भविष्य के लिए सबक़ है, जिसमें आने वाले क़ल के लिए नई रोशनी है।

अफ़सोस या ग़म ज्यादातर दो चीज़ों के लिए होता है— या तो बीते हुए वक्त के लिए या आने वाले वक्त के लिए। इंसान या तो बीते हुए नुक़सान का अफ़सोस करता रहता है या किसी ऐसी घटना का डर, जो भविष्य में हो सकती है, मगर ये दोनों ही बेकार हैं। जो नुक़सान हो चुका, सो हो चुका— अब वह वापस आने वाला नहीं है। फिर उसका ग़म करने से क्या फ़ायदा? और जिस घटना का डर है, वह भी एक संभावना मात्र है। ऐसा बहुत कम होता है कि जिस ख़तरे के बारे में इंसान सोचता है, वह बिलकुल उसी तरह से हो जाए।

नाकामयाबी ही बनी सीढ़ी



स्पेंसर्स मद्रास शहर की एक बहुत मशहूर दुकान है। एक बार आग लगने से यह दुकान पूरी तबाह हो गई, मगर उसने बहुत जल्द अपना धंधा फिर से शुरू कर लिया। उसने अपनी दुकान के सामने एक बोर्ड लगा दिया, जिस पर लिखा था—

“यक्रीन मानिए, आज हमारी दुकान ही एकमात्र ऐसी दुकान है, जहाँ बिलकुल ताज़ा माल है!”

यह एक ऐसी मिसाल है, जिससे पता चलता है कि अगर इंसान बरबादी का सामना करने के बाद भी अपनी अक्ल न खोए, तो वह न सिर्फ़ दोबारा कामयाबी हासिल कर सकता है, बल्कि अपनी नाकामयाबी को नई कामयाबी की सीढ़ी भी बना सकता है।

मद्रास की उस दुकान में आग लगने से सब कुछ जलकर खाक हो गया था। ऊपर से देखने पर यह एक तबाही जैसी बात थी, मगर दुकानदार ने इस घटना को एक मौक़े के तौर पर इस्तेमाल किया।

दुकान के जल जाने का मतलब यह था कि पुराना सारा सामान अब खत्म हो चुका था। दुकानदार ने तुरंत नया सामान मँगवाकर दुकान में रख दिया और फिर ग्राहकों की उस साइकोलॉजी का फ़ायदा उठाया कि वे हमेशा ताज़ा सामान ही पसंद करते हैं। जब उसने यह ऐलान किया, तो लोगों ने तुरंत इसे सही मान लिया, क्योंकि वे जानते थे कि यह दुकान जल चुकी है। उन्हें यक्रीन हो गया कि यहाँ का सारा सामान बिलकुल नया है और फिर वे ख़रीदारी के लिए टूट पड़े। इस तरह ज़्यादा बिक्री से उसने अपना पुराना नुक़सान भी बहुत जल्द पूरा कर लिया।

इस दुनिया में तब भी एक नया मौक़ा छुपा होता है, जब इंसान की सारी दौलत जलकर राख हो चुकी हो। इंसान को कभी भी निराश नहीं होना चाहिए। बरबादी का सामना करने के बाद तुरंत ही उसे अपनी अक्ल को नया रास्ता ढूँढने में लगा देना चाहिए। उसे पता चलेगा कि जहाँ एक मौक़ा खत्म हुआ, वहीं दूसरा और बेहतर मौक़ा उसका इंतज़ार कर रहा था। जहाँ एक इतिहास खत्म हुआ, वहीं उसके लिए एक नया इतिहास शुरू हो गया।



समझदार कौन है?



डेल कार्नेगी (Dale Carnegie) ने कहा कि जिंदगी में सबसे जरूरी चीज यह नहीं है कि आप अपनी कामयाबियों से फ़ायदा उठाएँ। कोई भी बेवकूफ़ ऐसा कर सकता है। असल में सबसे अहम बात यह है कि आप अपने नुक़सानों से भी फ़ायदा उठाना सीखें। इसके लिए अक्ल की जरूरत होती है और यही चीज़ एक समझदार और एक बेवकूफ़ में फ़र्क़ करती है—

“जिंदगी में सबसे जरूरी चीज़ अपनी जीत का फ़ायदा उठाना नहीं है— कोई भी मूर्ख़ यह कर सकता है। असली महत्वपूर्ण बात यह है कि आप अपने नुक़सानों से भी लाभ कमाएँ। इसके लिए बुद्धिमानी चाहिए और यही बात एक समझदार इंसान और एक बेवकूफ़ में अंतर करती है।”

इस दुनिया में ऐसा बहुत कम होता है कि कोई इंसान सिर्फ़ कामयाबियों से घिरा हो और उसके पास बस यही काम बचा हो कि वह उनसे लगातार फ़ायदा उठाता रहे। ज्यादातर हालात में ऐसा होता है कि इंसान खुद को मुश्किलों और नुक़सानों के बीच पाता है और उसे इन मुश्किलों और नुक़सानों से गुज़रते हुए ही अपनी मंज़िल तक पहुँचना पड़ता है।

इस दुनिया में सिर्फ़ वही लोग कामयाब होते हैं, जो यह साबित करते हैं कि वे बुरे हालात की शिकायत करने के बजाय उन्हें स्वीकार करना जानते हैं। जो मुश्किलों के खिलाफ़ रोने-धोने के बजाय उन्हें हल करने की कोशिश करते हैं।

“नुक़सान से फ़ायदा उठाना”— यही वह एकमात्र खूबी है, जो इस दुनिया में किसी को भी कामयाब बनाती है। चाहे कोई इंसान हो या कोई देश दोनों को इसी एक इम्तिहान से गुज़रना पड़ता है। इस दुनिया में कामयाब वह नहीं है, जिसके सामने कभी मुश्किलें नहीं आतीं। कामयाब वही है, जो मुश्किलों के बावजूद कामयाब हो सके। मंज़िल पर वही पहुँचता है, जो रास्ते की तकलीफ़ों के बावजूद अपना सफ़र जारी रख सके।



इतिहास बनाना



बी. टुकमैन (B. Tuchman) ने कहा था कि इतिहास ग़लत अंदाज़ों का खुलासा है—

इतिहास ग़लतफ़हमियों का सिलसिला है।

इसका मतलब यह है कि लोग मौजूदा हालात के आधार पर इतिहास के बारे में एक राय बना लेते हैं, मगर जब वर्तमान भविष्य बनता है, तो पता चलता है कि लोगों के अंदाज़े बिलकुल ग़लत थे। ज्यादातर मामलों में भविष्य उस तरह से नहीं खुलता, जैसा कि शुरू में समझने वालों ने सोचा था। मिसाल के तौर पर 1945 में जब अमेरिका के जंगी जहाज़ हवा में गरजते हुए जापान पर परमाणु बम गिराने के लिए रवाना हुए, तो अमेरिका का अंदाज़ा यही था कि वह जापान को हमेशा के लिए राख का ढेर बना रहा है, मगर बाद के सालों ने बताया कि इस बाहरी हार में जीत का एक बड़ा भविष्य छुपा हुआ था।

इस घटना के 40 साल बाद लोगों ने देखा कि जापान दुनिया की सबसे बड़ी औद्योगिक ताक़त बनकर उभर आया है।

इससे पता चलता है कि इंसानी इतिहास को बनाने वाला खुद इंसान नहीं है— असल में यह ईश्वर है, जो इंसानी इतिहास को अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ कोई एक या दूसरी शक़ल देता है।

इतिहास की इस समझ में उन लोगों के लिए दिलासा है, जिनके बारे में मान लिया गया है कि वे बुझ चुके हैं या उन्हें मिटा दिया गया है, क्योंकि घटनाएँ बताती हैं कि इस दुनिया में बाहरी तौर पर बुझी हुई राख से चिंगारियाँ निकल आती हैं। यहाँ एक मिटी हुई चीज़ दोबारा ज़िंदा और ताक़तवर बनकर ज़मीन पर खड़ी हो जाती है। यहाँ बाहरी तौर पर एक ख़त्म हुई ताक़त (spent force) दोबारा नई जान पाकर ताक़तवर बन जाती है।

बाहरी हालात से कभी निराश मत होना। यह पूरी तरह मुमकिन है कि इतिहास जब अगला पन्ना पलटे, तो ऐसा नतीजा सामने आए, जो बाहरी हालात से बिलकुल अलग हो।



कोई चीज़ मुश्किल नहीं



गाँव के एक साधारण व्यक्ति के लिए सबसे कठोर वस्तु हीरा थी और संसार के एक असभ्य मनुष्य के लिए भी सबसे कठोर वस्तु वही हीरा थी। इसका कारण यह नहीं था कि हीरा वास्तव में सबसे कठोर है, बल्कि यह था कि उनका अनुभव यहीं तक सीमित था।

वास्तव में 'डी' नाम की कोई वस्तु पेंसिल की नोक की तरह इतनी पतली नहीं हो सकती कि वह स्लेट के आर-पार निकल जाए और यदि कोई वस्तु इतनी कठोर होती, तो वह स्वयं ही टूट जाती। हीरा मिट्टी से बना है, इसलिए यह स्वाभाविक है कि वह किसी भी दूसरी प्राकृतिक या मानव-निर्मित वस्तु से अधिक कठोर नहीं हो सकता।

अन्य सभी पदार्थों से अलग हीरा किसी भी अम्ल (acid) में नहीं घुलता है। अगर उसे किसी नए अम्ल में रखा जाए, तो हीरा जस-का-तस बना रहता है और अम्ल भाप बनकर उड़ जाता है, लेकिन अगर हीरे को ऑक्सीजन की उपस्थिति में तेज़ आँच दी जाए, तो वह एक रंगहीन गैस में बदल जाता है और वही गैस 'जीवन की साँस' कहलाती है।

इसी तरह इंसान का 'दृढ़ संकल्प' (determination) भी होता है। अगर कोई व्यक्ति किसी समस्या का सामना सिर्फ़ एक ही दिशा से करे और उसी दिशा में उसका संकल्प बहुत कठोर हो, तो संभव है कि उसका प्रयास सफल न हो, लेकिन अगर वही समस्या दूसरे एंगल से देखी जाए, तो वही प्रयास सफल सिद्ध हो सकता है।

जब कोई समस्या सामने आती है, तो लोग तुरंत यह पहचान लेते हैं कि सामने वाले की कमजोरी कहाँ है और जैसे ही कमजोरी समझ में आती है, उसी बिंदु पर पूरा दबाव डाला जाता है। एक वस्तु किसी एक पहलू में असफल हो सकती है, लेकिन वही वस्तु किसी दूसरे पहलू में सफलता का माध्यम भी बन सकती है।

कोई व्यक्ति मधुर वाणी से मित्र को अपना नहीं बना सकता, लेकिन सत्य वाणी से उसे अपना बना सकता है। वह तीखी तलवार से अपने शत्रु को न हरा

पाए, लेकिन नैतिकता की तलवार से उसे पराजित कर सकता है। कोई राष्ट्र माँग और विरोध के बल पर अपना स्थान प्राप्त नहीं कर सकता, लेकिन मेहनत और योग्यता के बल पर वह स्थान प्राप्त कर सकता है।

हीरा जितना कठोर है, उतना ही आग के समान कोमल भी है। हर वस्तु मनुष्य की दृष्टि के अनुसार अपना रूप बदल लेती है। अगर कोई व्यक्ति एक दृष्टि से कठोर दिखाई देता है, तो उसे सिर्फ उसी एंगल से मृत्यु जितना कठोर नहीं समझ लेना चाहिए। अगर वह एक एंगल से कठोर है, तो दूसरे एंगल से कोमल भी हो सकता है। एक व्यक्ति किसी मामले में बहुत जटिल दिखाई दे सकता है और वही व्यक्ति किसी दूसरे मामले में बहुत सरल और स्पष्ट हो सकता है।

यही सापेक्षता का सिद्धांत (theory of relativity) है और इसी को समझ लेने में जीवन की सभी सफलताओं का गुप्त रहस्य छिपा है।



अक्ल का इस्तेमाल



एक शास्त्र प्रिंटिंग प्रेस का काम करता था। उसने दिल्ली के एक दूतावास को अपने काम से इतना खुश कर दिया कि लंबे समय तक उस दूतावास ने अपना प्रिंटिंग का काम किसी और प्रेस को नहीं दिया।

जब कोई शास्त्र प्रेस में छपने के लिए किताब देता है, तो असल किताब छपने से पहले प्रेस उसे उसका प्रूफ (Proof) दिखाता है। प्रूफ आम तौर पर साधारण कागज़ पर बड़े-बड़े पन्नों की शकल में निकाले जाते हैं और बिखरे हुए पन्नों की तरह ग्राहक को दे दिए जाते हैं। इस तरह ये प्रूफ असल छपी हुई किताब का बहुत ही घटिया नमूना होते हैं। इनसे छपाई का सही-गलत तो पता चल जाता है, मगर यह अंदाज़ा नहीं होता कि किताब छपने के बाद कैसी दिखेगी।

उस प्रेस के मालिक को पहली बार दूतावास से एक किताब छापने का ऑर्डर मिला, तो उन्होंने प्रूफ पेश करने का एक नया तरीका अपनाया। उन्होंने सारे पन्ने प्रेस में अच्छी तरह छापे, आम तरीके के उलट दोनों तरफ़ छपाई की और फिर पूरी किताब के हर फ़ॉर्म को अच्छे कागज़ पर छापकर, उसे किताब की तरह मोड़कर

और जिल्द बनवाकर, किताब का एक पूरा नमूना तैयार कर दिया। उन्होंने प्रूफ की जगह यह किताब दूतावास के सामने पेश की। दूतावास के अधिकारी इस व्यवस्थित तरीके को देखकर बहुत खुश हुए और अपना सारा प्रिंटिंग का काम उन्हें सौंप दिया।

कुछ साल बाद ऐसा हुआ कि किसी दूसरे प्रेस ने दूतावास वालों से कहा— “जिस प्रेस से आप छपवाते हैं, वह आपसे ज़्यादा पैसे लेता है। आप हमें अपना ऑर्डर दीजिए, हम कम दाम पर वैसी ही किताब छापकर देंगे।” दूतावास वाले उसकी बात में आ गए और टेस्ट के तौर पर एक किताब की छपाई का काम उसे सौंप दिया।

कुछ दिनों बाद जब प्रेस की तरफ़ से किताब के प्रूफ़ आए, तो वे आम नियम के मुताबिक़ साधारण काग़ज़ के एक गड्डे की शक़ल में थे, साथ ही ज़्यादा मेहनत न करने की वजह से छपाई भी वैसी नहीं थी, जैसी असल किताब की होती है। ये प्रूफ़ जब दूतावास के अधिकारी के सामने आए, तो वह उन्हें देखकर बिफर गया। उसने सोचा कि किताब की छपाई का स्तर भी ऐसा ही होगा। उसने उस प्रेस को नाक्राबिल समझकर उसका ऑर्डर कैंसल कर दिया और दोबारा पहले वाले प्रेस से ऑर्डर दे दिया।

सीख : अगर आपमें कोई खास गुण या क्राबिलियत है, तो उसकी कीमत आपको ज़रूर मिलेगी।



लचीलापन भी ज़रूरी है



एक आदमी एक दुकानदार के पास आया। उसे कपड़ा ख़रीदना था। उसे कपड़ा पसंद आ गया, मगर दाम को लेकर लगभग आधे घंटे तक झगड़ा होता रहा। न दुकानदार कम करने पर राज़ी हो रहा था, न ख़रीदार बढ़ाने पर। आख़िर में दुकानदार ने उसी कीमत पर कपड़ा दे दिया, जिस पर ग्राहक ज़ोर दे रहा था।

उस वक़्त दुकान में एक बुज़ुर्ग़ बैठे हुए थे। जब ग्राहक चला गया, तो उन्होंने कहा— “जब तुम्हें ग्राहक की बताई कीमत पर कपड़ा देना ही था, तो पहले ही दे दिया होता। आख़िर इतनी देर तक उसका और अपना वक़्त क्यों बरबाद किया?”

दुकानदार ने कहा— “हुज़ूर, आप समझे नहीं। मैं उसे पक्का कर रहा था। अगर मैं उसकी बताई क्रीमत पर फ़ौरन सामान दे देता, तो वह शक में पड़ जाता और बिना ख़रीदे वापस चला जाता। इसके अलावा मैं यह अंदाज़ा लगा रहा था कि वह कहाँ तक जा सकता है। जब मैंने देखा कि वह इससे आगे नहीं बढ़ने वाला, तो मैंने उसे कपड़ा दे दिया।”

जब दो पक्षों के बीच मोल-भाव होता है, तो ज़रूर ऐसा होता है कि हर पक्ष अपनी-अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ मामला तय कराना चाहता है। ऐसे मौक़े पर बेशक अक्लमंदी का तक्राज़ा है कि अपनी माँग पर ज़ोर दिया जाए, मगर इसी के साथ अक्लमंदी का दूसरा ज़रूरी तक्राज़ा यह भी है कि आदमी अपनी हदें जाने और इसके लिए तैयार रहे कि आख़िरकार कहाँ पहुँचकर उसे राज़ी हो जाना है।

इस सिद्धांत को एक शब्द में ‘एडजस्टमेंट’ (adjustment) कह सकते हैं। यह एडजस्टमेंट ज़िंदगी का एक राज़ है। यह आज की दुनिया में कामयाबी का सबसे अहम सिद्धांत है। इस सिद्धांत की अहमियत निजी मामलों के लिए भी है और राष्ट्रीय मामलों के लिए भी।

इस सिद्धांत का निचोड़ यह है कि आदमी खुद को जानने के साथ-साथ दूसरों को भी जाने। आज की दुनिया में वही शख्स कामयाब होता है, जो दोतरफ़ा ज़रूरतों का ख़्याल रख सके। जो शख्स एकतरफ़ा सिर्फ़ अपनी ख्वाहिशों के पीछे भागे, उसके लिए आज की दुनिया में नाकामयाबी और बरबादी के सिवा कुछ नहीं है।

गुस्से में मत आओ



बर्ट्रेड रसेल एक बहुत ही आज़ाद-ख़्याल इंसान थे। वे अकसर ऐसी ग़ैर-पारंपरिक बातें करते थे, जिससे रूढ़िवादी लोग नाराज़ हो जाते थे। अपने एक लेक्चर के दौरान हुई एक घटना को वे इस तरह बताते हैं—

“एक आदमी गुस्से में उठ खड़ा हुआ और बोला कि मैं एक बंदर जैसा

दिखता हूँ मैंने उसे जवाब दिया— तो फिर आपको खुश होना चाहिए कि आप अपने पूर्वजों की आवाज़ सुन रहे हैं।”

(आत्मकथा, पेज 565)

बर्ट्रेड रसेल का यह जवाब ‘इवोल्यूशन के सिद्धांत’ (Theory of Evolution) के पीछे की सोच पर आधारित है। इस सिद्धांत के मुताबिक, इंसान बंदरों की नस्ल से आया है। हालाँकि हमें यहाँ इस सिद्धांत की सच्चाई पर बहस नहीं करनी। हमने यह घटना इसलिए बताई है, क्योंकि यह बिना गुस्सा किए जवाब देने की एक बढ़िया मिसाल है।

जब कोई आपके खिलाफ़ कोई कड़ा जुमला कहे या आप पर तेज़ आलोचना करे, तो एक तरीका यह है कि आप सुनकर बिफर जाएँ और उसकी सख्त बात का जवाब भी उतनी ही सख्ती और गुस्से से दें। यह जवाब देने का बेवकूफ़ाना तरीका है।

दूसरा तरीका यह है कि आप भड़काऊ बात सुनकर गुस्से में न आएँ। कोई चाहे जितनी भी सख्त बात बोले, आप अपना संतुलन बनाए रखें। आपका जवाब रिएक्शन वाला न हो, बल्कि सोच-समझकर दिया गया पॉजिटिव जवाब हो।

जवाब देने का पहला तरीका सिर्फ़ गुस्से को और बढ़ाता है, जबकि दूसरा तरीका गुस्से को ठंडा करने वाला होता है। यह ऐसा ही है, जैसे आग पर पानी डाल देना।

इसके अलावा जवाब देने का दूसरा तरीका आलोचक को चुप कराने की सबसे अच्छी चाल है। ऊपर बताई गई घटना में बर्ट्रेड रसेल का जवाब जितना कारगर साबित हुआ, वह कभी भी उतना कारगर नहीं होता, अगर उन्होंने गुस्से में आकर जवाब दिया होता।



सुरक्षित सफ़र



जुलाई, 1969 में अमेरिका ने इंसानों को ले जाने वाला एक रॉकेट चाँद की ओर भेजा था। इस रॉकेट के बारे में खबरों में बताया गया कि जब इसके पहले चरण का

इंजन चालू किया गया, तो एक बेहद डरावनी आवाज़ पैदा हुई। यह आवाज़ इतनी तेज़ थी कि इसने सौ मील के इलाके को हिला दिया, मगर जो अंतरिक्ष यात्री इस रॉकेट में सफ़र कर रहे थे, उन्हें सिर्फ़ दस सेकंड बाद ही यह आवाज़ सुनाई देना बंद हो गई। वे कान फाड़ देने वाली इस आवाज़ से सुरक्षित होकर अपने सफ़र पर आगे बढ़ गए।

ऐसा क्यों हुआ? इसकी वजह थी— इंसानों वाले रॉकेट की तेज़ रफ़्तार। आवाज़ आम तौर पर हवा के ज़रिए फैलती है, इसलिए इसकी रफ़्तार सात सौ मील प्रति घंटा होती है। जबकि रॉकेट की रफ़्तार 25 हज़ार मील प्रति घंटा से भी ज्यादा थी। रफ़्तार के इस फ़र्क की वजह से ऐसा हुआ कि सिर्फ़ दस सेकंड बाद रॉकेट उस डरावनी आवाज़ की पहुँच से बाहर निकल चुका था। आवाज़ सात सौ मील प्रति घंटा की रफ़्तार से चल रही थी और रॉकेट 25 हज़ार मील प्रति घंटा की रफ़्तार से भाग रहा था। इस फ़र्क का यह नतीजा हुआ कि शुरुआती पलों के बाद रॉकेट के फटने की आवाज़ अंतरिक्ष यात्रियों के कंट्रोल रूम तक पहुँचना बंद हो गई। अंतरिक्ष यात्री भयानक आवाज़ पैदा करने वाली सवारी में सफ़र कर रहे थे, मगर इसके बावजूद उसकी भयानक आवाज़ से उनके कान सुरक्षित थे।

इसी तरह हर इंसान और हर क्रौम की ज़िंदगी में ऐसा वक़्त आता है, जब नाख़ुश हालात उसका पीछा करते हैं। अब अगर वह अपनी जद्दोज़हद की रफ़्तार इतनी तेज़ कर ले कि नाख़ुश हालात के मुक़ाबले में उसकी रफ़्तार बढ़ जाए, तो वह उनकी पहुँच से निकल जाएगा। वह उनसे ठीक उसी तरह सुरक्षित हो जाएगा, जिस तरह अंतरिक्ष यात्री अपने रॉकेट के फटने की तूफ़ानी आवाज़ से सुरक्षित हो गए।

ज़िंदगी का मामला भी यही है। एक इंसान या क्रौम के लिए यहाँ भी मुमकिन है कि वह ऐसा सफ़र कर सके, जिसमें वह दूसरों की पहुँच से सुरक्षित रहे। अगर दूसरे जल्दबाज़ी की रफ़्तार से चल रहे हों और आप सब्र की रफ़्तार से चलने लगें। दूसरे नेगेटिव कार्रवाइयों की बुनियाद पर उठे हों और आप पॉज़िटिव एक्शन का तरीक़ा अपनाएँ। दूसरे माद्दी ताक़त के सहारे बढ़ें और आप अख़्लाकी ताक़त के ज़ोर पर खड़े हों। दूसरे बाहरी इंसान से टकरा रहे हों और आप अंदरूनी इंसान को अपना निशाना बनाएँ, तो यक़ीनन आप लोगों की पहुँच से ठीक उसी तरह बाहर होंगे, जिस तरह रॉकेट में सवार यात्री अपने रॉकेट की भयानक आवाज़ से बाहर निकल गए।



उलटी छलाँग



एक वाक्या अंग्रेजी अखबार में इन शब्दों में आया—

“ऑस्ट्रेलिया की सिडनी जेल से एक कैदी ने जेल से भागने के लिए एक बहादुराना क़दम उठाया। वह किसी तरह एक ट्रक के अंदर घुस गया और उसके अंदर छिपकर बैठ गया। ट्रक रवाना होकर अगले मुक़ाम पर रुका। वह मुश्किल से ट्रक से बाहर आया। उसने पाया कि वह दोबारा एक जेल में है। यह दूसरी जेल उसकी पहली जेल से तक़रीबन छह किलोमीटर दूर थी।”

जेल का वह कैदी जेल की ज़िंदगी से परेशान था। उसके दिमाग़ पर सिर्फ़ एक चीज़ सवार थी कि वह किसी तरह जेल की बंद दुनिया से बाहर पहुँच जाए। इस दिमागी हालत के साथ जब उसे एक ट्रक नज़र आया, तो उसने यक़ीन कर लिया कि यह ज़रूर जेल के बाहर कहीं जा रहा है, मगर वह ट्रक एक जेल से दूसरी जेल में जा रहा था। आदमी उस ट्रक में सवार होकर अपनी जेल से निकला, मगर उसके बाद सिर्फ़ यह हुआ कि वह एक और जेल में पहुँच गया।

यह एक दिलचस्प मिसाल है, जिससे अंदाज़ा होता है कि कभी-कभी क़दम उठाना सिर्फ़ उलटी छलाँग के बराबर होता है। इसका मतलब सिर्फ़ यह होता है कि आदमी नाकाम होकर दोबारा अपने पहले वाले मुक़ाम पर वापस आ जाए।

ज़िंदगी का सफ़र दो चीज़ों के मिलने से तय होता है— एक ‘मुसाफ़िर’ और दूसरा ‘गाड़ी’। किसी मुसाफ़िर के लिए यह मुमकिन नहीं है कि वह सिर्फ़ अपनी निजी छलाँग के ज़रिए एक जगह से दूसरी जगह पहुँच जाए। उसे ज़रूर अपने से बाहर एक सवारी की ज़रूरत होती है। अगर आदमी सिर्फ़ अपने निजी जोश के तहत कूदकर एक सवारी में घुस जाए और यह पता न करे कि वह सवारी कहाँ जा रही है, तो बिलकुल मुमकिन है कि उसका अंजाम वही हो, जो ऊपर बताई गई मिसाल में ऑस्ट्रेलिया के कैदी का हुआ यानी वह एक ‘कैदख़ाने’ से निकलकर दूसरे ‘कैदख़ाने’ में पहुँच जाए।



सबसे खतरनाक



शेर के डरावने चेहरे को देखकर यह मानना मुश्किल लगता है कि इंसान का कोई दुश्मन इससे ज्यादा खतरनाक हो सकता है, मगर हकीकत यह है कि इंसान का सबसे बड़ा दुश्मन न तो शेर है और न भेड़िया। इंसान के असली दुश्मन वे बेकरार करने वाले कीड़े हैं, जिन्हें हम नंगी आँख से देख भी नहीं सकते यानी बैक्टीरिया।

ये बैक्टीरिया इतनी तेजी से बढ़ते हैं कि अगर माहौल सही हो, तो सिर्फ दस घंटे में एक बैक्टीरिया से दस हजार बैक्टीरिया पैदा हो जाते हैं। शेर या भेड़िया कहीं-न-कहीं सिर्फ एक आदमी पर हमला करता है, मगर बैक्टीरिया हर वक़्त हर इंसान को नुक़सान पहुँचाने की ताक़त रखते हैं।

बैक्टीरिया की हज़ारों किस्में हैं। अच्छी बात यह है कि उनमें से 99 फ़ीसद या तो बेनुक़सान वाले हैं या फिर इंसान के काम आते हैं, मगर जो 1 फ़ीसद नुक़सानदेह हैं, वही इतने खतरनाक हैं कि इंसान की जान भी ले सकते हैं। तिब्बी (मेडिकल) इल्म के मुताबिक़, जितनी भी जानलेवा बीमारियाँ होती हैं, सब इन्हीं बैक्टीरिया की वजह से होती हैं। ये इतने छोटे होते हैं कि आसानी से इंसानी जिस्म में दाख़िल हो जाते हैं और इंसान चाहे तो भी उन्हें रोक नहीं सकता।

आम तौर पर लोग बड़ी तबाहियों को ही अपना दुश्मन समझते हैं और सोचते हैं कि वही उन्हें बरबाद करती हैं, लेकिन असलियत यह है कि छोटे दुश्मन हमें बड़े दुश्मनों से कहीं ज्यादा नुक़सान पहुँचाते हैं और हमारे सबसे खतरनाक दुश्मन हमारी अपनी छोटी-छोटी कमज़ोरियाँ होती हैं, जिन पर हमारा ध्यान ही नहीं जाता, मगर वही हमें अंदर से बरबाद कर देती हैं।

मिसाल के तौर पर, हर इंसान रोज़ाना अपना थोड़ा-बहुत वक़्त बेकार की चीज़ों में गँवा देता है। हर कोई रोज़ कुछ-न-कुछ पैसे फ़िज़ूल चीज़ों पर खर्च कर देता है। यह वक़्त और पैसा रोज़ाना बहुत छोटा लगता है— कुछ घंटे या कुछ रुपये, लेकिन अगर सालभर या पूरी ज़िंदगी का हिसाब लगाया जाए, तो साफ़ पता चलता है कि इंसान अपनी आधी ज़िंदगी और आधी कमाई बेकार के कामों में बरबाद कर देता है और अगर यही बरबादी पूरे मुल्क की हो, तो नुक़सान इतना बड़ा हो जाता है कि उसका अंदाज़ा भी लगाना मुश्किल है।



बेमानी उछल-कूद



उत्तर प्रदेश की एक औरत विधवा हो गई। उनकी तीन छोटी बेटियाँ थीं और एक बेटा था, जो नौवीं क्लास में पढ़ता था, जब उसके पिता का देहांत हुआ। उस औरत ने ठान लिया कि वह अपने बेटे को इंजीनियर बनाएगी। उसने अपने पति की प्रोविडेंट फंड की रकम खर्च करके और खुद रोज़ बारह-बारह घंटे सिलाई का काम करके अपने बेटे को पढ़ाना शुरू किया।

घर की हालत ने लड़के के अंदर मेहनत का जज़्बा पैदा किया। हाई स्कूल में उसे 71 फ़ीसद नंबर मिले। इंटरमीडिएट में लड़के ने 76 फ़ीसद नंबर हासिल किए। इसके बाद उस औरत ने हिम्मत जुटाकर अपने बेटे का दाखिला अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के इंजीनियरिंग कोर्स में करा दिया। यहाँ भी लड़का बेहद मेहनत से पढ़ता रहा। इंजीनियरिंग के पहले साल से लेकर चौथे साल तक वह हर साल 80 फ़ीसद से ज्यादा नंबरों से पास होता रहा।

लड़के को ऊँची तालीम दिलाने की इस औरत की योजना बहुत महँगी साबित हुई। इस दौरान घर की सारी जमा-पूँजी खत्म हो गई और घर को गिरवी रखना पड़ा। दिन-रात सिलाई करते-करते औरत की आँखों की रोशनी कमजोर हो गई।

1981 का साल उस लड़के का आखिरी साल था। अगर समय पर एग्जाम हो जाते, तो लड़का इंजीनियर बन जाता। उसकी माँ ने उसी दिन की उम्मीद में बेहद मुश्किल दस साल गुज़ार दिए थे। वह इस उम्मीद में जी रही थी कि उसका बेटा इंजीनियर बनेगा, फिर कमाकर घर का खर्च चलाएगा, ऋज चुकाएगा, बहनों की शादी करवाएगा और उसके बुढ़ापे का सहारा बनेगा, मगर उस साल यूनिवर्सिटी के नेताओं ने ऐसे हंगामे शुरू कर दिए कि एग्जाम ही नहीं हो सके। औरत की दुनिया, जो बनने ही वाली थी, आखिरी मोड़ पर आकर बिखर गई।

(अहमद रशीद शेरवानी; अल-जमीयत; 23 जून, 1981)

इस मिसाल से अंदाज़ा होता है कि सामूहिक जिंदगी के मसले कितने नाज़ुक होते हैं। यहाँ अनगिनत मसले एक-दूसरे से इस तरह जुड़े होते हैं कि एक को छेड़ने से दूसरा प्रभावित होता है, इसलिए सामूहिक मामलों में कूदना सिर्फ़ उन्हीं लोगों के लिए ठीक है, जिनमें मामलों को दूरदर्शी नज़र से देखने की क्वाबिलियत हो, जो

दूसरों के दर्द को अपने दिल में महसूस कर सकें। जिन लोगों में ये दोनों खूबियाँ नहीं हैं, अगर वे सामाजिक सुधार के मैदान में कूदते हैं, तो वे सिर्फ एक पाप करते हैं। ऐसे लोगों के लिए एक ही सही रवैया है कि वे चुप रहें, न कि बेवकूफ़ाना हरकतें करके मसलों को और बढ़ाने का कारण बनें।

खुद ही जानना पड़ता है

जब आप टेलर मास्टर को कोट सिलने के लिए कपड़ा देते हैं, तो वह आपके जिस्म का नाप लेता है। नाप लेने का मक़सद आपके जिस्म की बनावट का अंदाज़ा लगाना है, ताकि कोट आपके बदन पर एकदम फ़िट आए और उसमें कहीं भी सिकुड़न या ढीलापन न रहे, मगर टेलर मास्टर जिस्म के जिन कुछ हिस्सों का नाप लेता है, वह इतना इल्म एक कामयाब कोट बनाने के लिए काफ़ी नहीं होता। एक सही कोट बनाने के लिए टेलर मास्टर को बहुत-सी बातें खुद ही जाननी पड़ती हैं। इसकी वजह यह है कि जिस्म के उभार-गड्ढे इतने ज़्यादा हैं कि हर हिस्से का पूरा नाप लेना मुमकिन नहीं। अगर टेलर की जानकारी सिर्फ़ उन्हीं नापों तक सीमित रहे, तो वह कभी भी एक अच्छा कोट नहीं बना सकता।

यही बात जिंदगी के दूसरे मामलों के लिए भी सही है। चाहे घर चलाने का मामला हो या समाज का— हर काम तभी कामयाब हो सकता है, जब उसे ऐसे लोग मिल जाएँ, जो बताए बिना ही बातों को समझ जाएँ, जो बिना ज़्यादा जानकारी के हर मौक़े पर संतोषजनक जवाब ढूँढ लें।

जो लोग सिर्फ़ किताबों में लिखी बातों को जानते हैं और जहाँ किताब ख़त्म होती है, वहाँ अपना काम भी ख़त्म समझ लेते हैं— ऐसे लोग कभी कोई बड़ा काम नहीं कर सकते। इसी तरह जब कोई मिशन चलाया जाता है, तो बार-बार ऐसी बातें सामने आती हैं, जिनके बारे में पहले से अंदाज़ा नहीं था या लोगों को पहले से आगाह नहीं किया जा सका था। ऐसे मौक़ों पर ज़रूरत होती है कि लोग बिना बताए ही बातों को समझ जाएँ। अगर उनकी समझ इतनी विकसित नहीं है, तो उन्हें मार्गदर्शकों पर भरोसा करते हुए स्थिति को स्वीकार कर लेना चाहिए

और खुद को उसके मुताबिक्र ढाल लेना चाहिए। जिस मिशन के लोगों में यह क्राबिलियत नहीं होती, वे बार-बार खुद-ब-खुद शिकायतें लेकर बैठ जाएँगे, मामलों की हक्रीकृत जाने बिना अपनी मनमानी राय बना लेंगे और फिर नाराज़ होकर अलग हो जाएँगे।

किसी भी मिशन को कामयाबी तक पहुँचाने के लिए बहुत गहरी समझ और बहुत बड़ा दिल चाहिए। जिन लोगों में यह खूबी नहीं होती, वे सिर्फ़ तारीख़ के कूड़ेदान में जगह पाएँगे, चाहे वे दीवारों के पोस्टरों पर अपने आपको तारीख़ बनाने वाला क्यों न लिखते रहें।



नई पीढ़ी



मिस्टर जॉर्ज मेनेज़स ने अपना क्रिस्सा ‘टाइम्स ऑफ़ इंडिया’ (21 मई, 1985) में छापा था। उन्हें एक कॉलेज के समर कैम्प का उद्घाटन करना था। जब मिस्टर जी.बी. खेर बंबई के शिक्षामंत्री थे, तो उनके पिता शिक्षा मंत्रालय में अंडर-सेक्रेटरी थे। जब मैट्रिक का रिज़ल्ट आया, तो लेखक का भाई गणित में कुछ नंबरों से फ़ेल हो गया। एक मास्टर साहब ने ख़ैर-ख़्वाही से उस छात्र के पिता (शिक्षा मंत्रालय के अंडर-सेक्रेटरी) से मिलकर कहा— “आप मॉडरेटर को एक फ़ोन कर दें और सब कुछ ठीक हो जाएगा।” लेखक बताते हैं कि उनके पिता ने जवाब में कहा— “अगर मेरा बेटा फ़ेल होने का हक़दार है, तो उसे फ़ेल होने दीजिए। यह उसे एक क्रीमती सबक़ सिखाएगा।”

लेखक कहते हैं कि जब मैंने उस समर कैम्प के उद्घाटन पर यह क्रिस्सा सुनाया, तो छात्रों ने इसे ऐसे सुना, जैसे यह बिलकुल मामूली बात हो। यहाँ तक कि एक नौजवान खड़ा हुआ और बोला— “आपके पिता ज़रूर कोई बेवक़ूफ़ आदमी होंगे। अगर उन्होंने मेरे साथ ऐसा किया होता, तो मैं उन्हें मार डालता।”

आजकल के नौजवानों में यह रवैया आम है। इस रवैये को पैदा करने की असली ज़िम्मेदारी नेताओं पर है। नेताओं ने अपनी विरोधी सरकारों को उखाड़ फेंकने के लिए नौजवानों को भड़काया। वे उनकी तबाही-भरी हरकतों को सही

ठहराते रहे। इसका नतीजा यह हुआ कि पुरानी सारी रिवायतें टूट गईं। इंसान के सामने उसकी ख्वाहिशों और फ़ायदों के सिवा कोई चीज़ नहीं बची, जिसका वह लिहाज़ करे।

अगर एक बार बेअदबी की रिवायत पैदा हो जाए, तो वह किसी हद पर नहीं रुकती। दूसरों की बेइज़्जती करने वाले आख़िरकार अपनों की भी बेइज़्जती करने लगते हैं।



बिना जाँच-पड़ताल के



31 अक्टूबर, 1984 को श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या कर दी गई। जब लोगों को पता चला कि यह हत्या प्रधानमंत्री की सुरक्षा टीम के दो सिख सुरक्षाकर्मियों ने की है, तो सिख समुदाय के खिलाफ़ हिंसा भड़क उठी।

1 नवंबर और 2 नवंबर की दरम्यानी रात को लेखक अपने दिल्ली (निज़ामुद्दीन) के घर में सो रहे थे कि रात 11 बजे फ़ोन की घंटी बजी। एक शाख्स ने बताया कि दिल्ली के पानी में ज़हर मिला दिया गया है, इसलिए नल का पानी इस्तेमाल न किया जाए। कुछ मिनट बाद फिर फ़ोन बजा। एक और व्यक्ति ने यही ख़बर सुनाई। थोड़ी देर बाद दरवाज़े की घंटी बजी। बाहर निकले तो सड़क पर कई नौजवान यही ख़बर बताने के लिए खड़े थे। कुछ देर बाद एक और समूह ने दरवाज़ा बजाकर यही सूचना दोहराई। जल्द ही निज़ामुद्दीन इलाक़े की मस्जिदों के लाउड स्पीकरों से घोषणा की जाने लगी—“ख़बर मिली है कि पानी में ज़हर मिला दिया गया है। लोग नल के पानी का बिलकुल इस्तेमाल न करें।”

लगभग दो घंटे तक इन ख़बरों और घोषणाओं ने लोगों की नींद उड़ा दी। ख़बर सुनते ही हमने तुरंत रेडियो चालू किया और रात 12 बजे और 1 बजे दिल्ली रेडियो पर प्रसारित कार्यक्रम सुने। दोनों ही बार रेडियो ने साफ़ शब्दों में कहा कि पानी में ज़हर मिलाए जाने की अफ़वाह पूरी तरह झूठी है। पानी का आधिकारिक तौर पर टेस्ट किया गया था और इसे पूरी तरह सुरक्षित पाया गया। इसके बाद हमने दिल्ली पुलिस को 100 नंबर पर फ़ोन किया। उन्होंने भी कहा कि

पानी में ज़हर मिलाने की अफ़वाह पूरी तरह बेबुनियाद है। पानी बिलकुल ठीक है और जाँच के बाद इसमें कोई गंदगी नहीं पाई गई।

2 नवंबर की सुबह जब हमने अख़बार देखे, तो पहले पन्ने पर दिल्ली नगर निगम आयुक्त श्री पी.पी. श्रीवास्तव का बयान छपा था कि दिल्ली का नल का पानी पूरी तरह सुरक्षित है। इसे बार-बार टेस्ट किया गया और कोई ज़हरीला पदार्थ नहीं पाया गया। उन्होंने यह भी बताया कि 31 अक्टूबर से ही सभी वाटर फिल्ट्रेशन प्लांट पर सख़्त सुरक्षा तैनात कर दी गई थी।

सामाजिक जीवन में अकसर गड़बड़ियाँ सिर्फ़ इसलिए पैदा होती हैं, क्योंकि लोग कोई ख़बर सुनते हैं और बिना जाँच-पड़ताल के उस पर विश्वास कर लेते हैं। अगर लोग ख़बरों की पुष्टि करना शुरू कर दें, तो ज़्यादातर झगड़े और दंगे पैदा होने से पहले ही रुक सकते हैं।



जाँच-पड़ताल करिए



एक हिंदुस्तानी अरब गया। एक दिन मदीना में उसकी मुलाक़ात एक अरबी से हुई। ऊपर से देखने में वह एक देहाती (bedouin) लग रहा था और उसका एक हाथ कटा हुआ था। चूँकि वहाँ चोरों का हाथ काट दिया जाता है, इसलिए हिंदुस्तानी ने सोचा कि यह कोई चोर है— इसने चोरी की थी, इसलिए इसका हाथ काटा गया। पहले तो हिंदुस्तानी को उससे मिलने में थोड़ी हिचकिचाहट हुई। फिर खुद को ज़बरदस्ती समझाकर वह उस अरबी के पास गया, उससे हाथ मिलाया और गले लगा।

बातचीत शुरू हुई, तो अरबी शाख़्स ने बताया कि वह मदीना के पास 'युत्मह' नाम के एक गाँव का रहने वाला है। उसके पास काफ़ी ज़मीन है, जहाँ 23 मशीनें (ट्यूबवेल) लगी हुई हैं। उसके खेतों की पैदावार रोज़ाना बड़ी मात्रा में मदीना के बाज़ारों में आती है।

जब उसके कटे हाथ का ज़िक्र आया, तो उसने समझाया कि 1948 में फ़िलिस्तीन को लेकर अरबों और यहूदियों के बीच जो लड़ाई हुई थी, उसमें वह

शामिल हुआ था। उसके बाजू में छह गोलियाँ लगी थीं। इसके बाद वह लंबे वक्रत तक अस्पताल में रहा। वहाँ डॉक्टरों ने ज़रूरी समझकर उसका एक हाथ काट दिया, ताकि बाक़ी बाजू को और नुक़सान से बचाया जा सके।

यह एक ऐसी मिसाल है, जो दिखाती है कि अधूरी जानकारी किस तरह किसी की सोच को पूरी तरह बिगाड़ सकती है। जानकारी की कमी की वजह से हिंदुस्तानी ने अरबी आदमी को चोर समझ लिया, जबकि असल में वह एक बहादुर फ़ौजी और एक व्यापारी भी था। वह लेने वाला नहीं, बल्कि देने वाला था— समाज का एक उपयोगी सदस्य, बोझ नहीं।

हर इंसान का फ़र्ज है कि वह कभी भी किसी दूसरे के बारे में राय बनाने में जल्दबाज़ी न करे। जब भी उसके सामने कोई जानकारी आए, तो उसकी पूरी तरह से जाँच-पड़ताल करनी चाहिए। बिना ठीक से रिसर्च किए उसके बारे में बोलना नहीं चाहिए।

अगर किसी के पास जाँच-पड़ताल करने का वक्रत या साधन नहीं है, तो दूसरा रास्ता यह है कि वह उस मामले पर चुप रहे— अधूरी जानकारी के आधार पर बोलना नहीं चाहिए। इस दुनिया में चुप रहना भी उतना ही ज़रूरी है, जितना बोलना।



कामयाबी का सादा सिद्धांत



एक शख्स ने तालों की मार्केट में एक दुकान खोली। वह रोज़ देखता था कि सड़क पर बहुत सारे लोग आ-जा रहे हैं, मगर ज़्यादातर लोग उसकी दुकान को देखकर भी आगे निकल जाते थे। एक दिन उसके साथ एक वाक़या हुआ, जिसने उसे दुकानदारी का राज़ बता दिया। वह कपड़ा ख़रीदने के लिए कपड़े की मार्केट में गया। वहाँ एक के बाद एक बहुत-सी दुकानें थीं। वह एक के बाद एक दुकान के आगे से गुज़र रहा था, मगर उसे समझ नहीं आ रहा था कि किस दुकान में अंदर जाए। तभी एक दुकानदार ने उसे अपनी दुकान के सामने देखकर कहा— “आइए साहब, अंदर आकर देखिए!” यह सुनकर वह तुरंत दुकान के अंदर चला गया।

इस तजुर्बे से उसे समझ आया कि मार्केट में आने वाले ज्यादातर ग्राहक या तो नए होते हैं या किसी खास दुकान से बँधे नहीं होते। ऐसे लोग दुकानों के सामने से गुजरते वक़्त अकसर कन्फ़्यूज़न में रहते हैं। वे फ़ैसला नहीं कर पाते कि किस दुकान में जाएँ। ऐसे वक़्त में अगर कोई दोस्ताना अंदाज़ में उनसे कह दे, “अंदर आइए न,” तो यह उनकी झिझक दूर कर देता है। उन्हें फ़ैसला करने में मदद मिलती है। ज्यादातर मामलों में ऐसा इंसान चलते हुए शख्स को अपनी दुकान में बुलाने में कामयाब हो जाता है। ज्यादातर लोगों के दिमाग़ में पहले से कुछ तय नहीं होता। अगर आप इस राज़ को समझ जाएँ, तो थोड़ी-सी समझदारी से बहुत-से लोगों को अपना बना सकते हैं।

उसने यह सिद्धांत अपनी दुकान में इस्तेमाल करना शुरू किया। वह अपनी दुकान के बाहरी हिस्से में बैठता और हर आने-जाने वाले के चेहरे को पढ़ता। धीरे-धीरे उसकी नज़र इतनी तेज़ हो गई कि वह किसी को देखते ही तुरंत पहचान लेता कि यह ताला खरीदने वाला ग्राहक है या बस यँ ही गुज़र रहा है। जब भी उसे लगता कि कोई शख्स ताला खरीदना चाहता है, वह तुरंत उसे आवाज़ देकर अपनी दुकान में बुलाता। इस तरह उसका धंधा अचानक बहुत बढ़ गया और वह मार्केट का सबसे ज्यादा बिक्री करने वाला दुकानदार बन गया।

तरक्की का राज़ हमेशा साधारण सिद्धांतों में छुपा होता है, मगर इंसान अकसर सोचता है कि कामयाबी बहुत बड़ी चीज़ों से मिलती है। आप कुछ मीठे बोल, अपने हाथ-पैर की मेहनत, अपने सीमित साधनों का सही इस्तेमाल और एक काम को लगातार करते रहने से कामयाबी की बुलंदियों तक पहुँच सकते हैं। इनमें से कोई भी चीज़ ऐसी नहीं है, जो एक आम इंसान के बस की न हो।



तलवार से ज्यादा



मिस्र (Egypt) के पूर्व राष्ट्रपति अनवर सादात (1918-1981) की हत्या के बाद ‘टाइम’ मैगज़ीन (19 अक्टूबर, 1981) ने इस घटना पर एक खास रिपोर्ट छपी। इस लेख की शुरुआत नेपोलियन के एक कथन से की गई। अपने आखिरी दिनों

में नेपोलियन ने पूछा— “क्या तुम जानते हो दुनिया की सबसे हैरान करने वाली बात क्या है?” फिर खुद ही जवाब दिया कि ताक़त की यह बेबसी है कि उससे कुछ हासिल नहीं किया जा सकता। आखिरकार दिमाग हमेशा तलवार पर जीत हासिल कर लेता है— “आखिर में, तलवार हमेशा दिमाग से हार जाती है।”

अनवर सादात ने मिस्र में हर तरह की ताक़त हासिल कर ली थी, लेकिन 6 अक्तूबर, 1981 को उनकी हत्या कर दी गई— ठीक उस वक़्त, जब वे काहिरा (Cairo) में स्वेज़ नहर (1973) की जीत का जश्न अपनी पूरी सेना के साथ मना रहे थे। अनवर सादात के भव्य कार्यक्रम स्थल में आने वाले हर शख्स की मेटल डिटेक्टर से जाँच की जा रही थी। यहाँ तक कि परेड में शामिल सभी सैनिकों की राइफ़लों से कारतूस निकाल दिए गए थे। फिर भी सादात की अपनी सेना के एक आदमी ने परेड से अलग होकर तेज़ी से मंच की ओर दौड़ लगाई और सुरक्षाकर्मियों के रोक पाने से पहले ही उसने सादात को गोली मार दी।

यह घटना दिमाग की तलवार पर जीत का सबूत थी। अनवर सादात के कुछ विरोधियों ने यह अफ़वाह फैलाई कि वे इस्लाम से फिर गए हैं (मुरतद हो गए हैं) और वहाँ के क़ानून के मुताबिक़ मुरतद को मार देना चाहिए। यह बात सेना तक पहुँची। लेफ़्टिनेंट ख़ालिद इस्तंबोली इससे गहराई से प्रभावित हुआ। उसने कुछ साथियों की मदद से चुपके से एक योजना बनाई और जीत की परेड वाले दिन उस योजना के मुताबिक़ सादात को गोली मारकर हत्या कर दी।

यह एक सच्चाई है कि दिमाग तलवार से ज़्यादा ताक़तवर है। इतिहास में इसके अनगिनत उदाहरण हैं, मगर इतिहास यह भी बताता है कि इंसान ने इस दिमाग का इस्तेमाल ज़्यादातर नेगेटिव मक़सद के लिए किया है। पॉज़िटिव मक़सद के लिए दिमाग इस्तेमाल करने के उदाहरण इतिहास में बहुत कम मिलते हैं, इसीलिए ज़्यादातर काम करने वालों ने इंसानियत को सिर्फ़ तबाही का तोहफ़ा दिया है। ऐसे लोग बहुत कम हैं, जिनके कामों से इंसानियत को तरक़्की का तोहफ़ा मिला हो।



इज़्जत की जगह



दूसरों के बीच जगह बनाने का सिर्फ़ एक ही राज़ है— आप उनकी ज़रूरत बन जाएँ। अगर आप दूसरों को यक्रीन दिला दें कि आप उनके लिए ज़रूरी हैं, तो उनके लिए आपको नज़र-अंदाज़ करना नामुमकिन हो जाएगा।

एक पढ़े-लिखे नौजवान की शादी हुई। जब उसकी बीवी आई, तो वह रूप-रंग के मामले में घरवालों के मापदंड पर खरी नहीं उतरी। इस वजह से नौजवान की बहनों ने उसे नापसंद कर दिया। हर कोई उसे घृणा की नज़र से देखने लगा। सबके लिए वह एक अनचाही चीज़ की तरह बन गई, जो बेमतलब घर में आ गई थी।

चूँकि औरत दिखने में ज़्यादा सुंदर नहीं थी, मगर वह समझदार और अक्लमंद थी। उसने लोगों के बरताव का बुरा नहीं माना। वह जानती थी कि रूप-रंग तो वक्रत के साथ फीके पड़ जाते हैं, लेकिन इंसान के काम हमेशा याद रहते हैं। उसने ठान लिया कि अगर वह रूप से घरवालों की प्यारी नहीं बन सकती, तो अपने कामों से उनकी दिलदार बनेगी।

चुपचाप उसने घर के सारे काम सँभाल लिये। घर की देखभाल, मेहमानों की खिदमत, रसोई का इंतज़ाम और बिना कहे ही सबकी ज़रूरतें पूरी करना— यह उसका रोज़ का रूटीन बन गया। उसने हर घरेलू काम को अपना फ़र्ज़ समझ लिया, चाहे उसे करने को कहा गया हो या नहीं।

औरत ने मुँह से कुछ नहीं कहा और न ही किसी की बात का जवाब दिया। उसने अपना सारा ध्यान सिर्फ़ अपने काम पर लगा दिया। नतीजा यह हुआ कि घर का माहौल बहुत जल्द बदलने लगा। हालत यहाँ तक पहुँची कि जिस घर में वह एक अनचाही शख़्सियत थी, वहाँ वह सबकी सबसे चाहती हुई और प्यारी इंसान बन गई।

यही ज़िंदगी का राज़ है। चाहे घर का मामला हो, समाज का या पूरे देश का— इज़्जत की जगह पाने का एकमात्र पक्का तरीक़ा यह है कि आप साबित कर दें कि आप लोगों के काम के हैं और लोग न सिर्फ़ आपको इज़्जत देंगे, बल्कि आपके मुरीद बन जाएँगे।



सबसे बड़ी गारंटी



लॉर्ड विलियम बेंटिक उन्नीसवीं सदी की दूसरी चौथाई (1828-1835) में भारत के गवर्नर-जनरल थे। एक बार उन्होंने ताजमहल को गिराने का आदेश दे दिया था, लेकिन आखिर में वे इसमें कामयाब नहीं हो सके। इस बात का खुलासा तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड कर्जन ने 7 फ़रवरी, 1900 को किया था। लॉर्ड कर्जन ने कलकत्ता की एक सभा में कहा कि उन दिनों ईस्ट इंडिया कंपनी की आर्थिक हालत खराब हो गई थी। कंपनी को आर्थिक संकट से बचाने के लिए पूर्व ब्रिटिश गवर्नर-जनरल (लॉर्ड बेंटिक) ने ताजमहल के संग-ए-मरमर को बेचने की योजना बनाई। उन्हें उस वक़्त इससे एक लाख रुपये कमाने की उम्मीद थी। जब यह खबर फैली, तो लोगों ने इसका विरोध किया। लॉर्ड बेंटिक गुस्से में आ गए और उन्होंने ताजमहल को गिराकर ज़मीन में मिलाने का आदेश दे दिया। उनके आदेश के बाद जनता का विरोध और बढ़ गया। हिंदुओं और मुसलमानों दोनों ने मिलकर जोरदार विरोध किया। यहाँ तक कि यह डर पैदा हो गया कि अगर ताजमहल गिराया गया, तो जनता बगावत कर देगी। लॉर्ड बेंटिक के सलाहकारों ने उन्हें हालात की नाज़ुकता समझाई, इसलिए उन्होंने आदेश वापस ले लिया।

(नवभारत टाइम्स; 18 जून, 1969)

“ताजमहल को जनता ने नहीं बचाया,” एक शाख्स ने यह ख़बर पढ़ने के बाद कहा, “बल्कि ताजमहल को उसकी अपनी ख़ूबसूरती ने बचाया। अगर ताज इतना ख़ूबसूरत नहीं होता, तो उसे ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ़ हिंदुओं और मुसलमानों का इतना बड़ा समर्थन नहीं मिल सकता था।”

यही हालत उसके बनाने वालों की भी होनी थी, मगर अफ़सोस कि वे अपने अंदर वह ‘ख़ूबसूरती’ पैदा नहीं कर सके, जो उन्होंने पत्थरों के इस ख़ामोश ढेर में अपनी महारत से भर दी थी।

अगर किसी इंसान में कोई ख़ूबी हो, तो वह ख़ूबी ही उसकी ज़िंदगी की सबसे बड़ी गारंटी होती है। उसे दुश्मनों में भी दोस्त मिल जाते हैं और अजनबियों में भी उसके प्रशंसक होते हैं। यह नामुमकिन है कि किसी में कोई असली ख़ूबी हो

और दुनिया उसे माने नहीं, मगर साथ ही यह भी ज़रूरी है कि इंसान की यह खूबी साँप जैसी न हो। साँप चाहे जितना खूबसूरत क्यों न हो, इंसान उससे प्यार नहीं कर सकता। ठीक उसी तरह अगर किसी इंसान में एक खूबी तो हो, मगर उसकी ज़बान में 'डंक' भी हो, वह लोगों के सियासी और आर्थिक फ़ायदों को चुनौती देने लगे, रिश्तों में बार-बार आक्रामक हो जाए और अपनी ज़हरीली हरकतों से लोगों को अपना दुश्मन बना ले, तो ऐसा इंसान चाहे कितना ही गुणवान क्यों न हो, लोगों का चहेता नहीं बन सकता।

ताजमहल तभी लोगों का प्यारा बनता है, जब वह ख़ामोश खूबसूरती का नमूना हो। अगर वह ज़बरदस्ती की खूबसूरती वाला होता, तो कोई भी उसे माफ़ नहीं करता।



ज़िंदगी की सड़क



सड़कों पर चौराहे होते हैं यानी ऐसी जगहें, जहाँ पूरब से पश्चिम जा रहे लोगों को उत्तर से दक्षिण या दक्षिण से उत्तर जाने वालों के लिए रास्ता देना पड़ता है।

ट्रैफ़िक के नियम के मुताबिक, यह तय किया गया है कि थोड़ी-थोड़ी देर बाद एक तरफ़ की सड़क बंद कर दी जाती है और दूसरी तरफ़ की सड़क खोल दी जाती है। इसके लिए हरे और लाल सिग्नल का इस्तेमाल होता है। एक गाड़ी चलते-चलते चौराहे पर पहुँचती है और देखती है कि आगे लाल बत्ती जल रही है, तो वह वहीं रुक जाती है, ताकि दूसरी सड़क से आने वाली गाड़ियों को निकलने का मौक़ा मिले। जब दूसरी सड़क की गाड़ियाँ निकल जाती हैं, तो लाल बत्ती की जगह हरी बत्ती जल जाती है। अब आपकी गाड़ी के पास मौक़ा होता है कि वह चौराहा पार करके आगे बढ़े और अपना सफ़र जारी रखे।

चौराहे का यह नियम ज़िंदगी का भी नियम है। ज़िंदगी की सड़क कोई ख़ाली सड़क नहीं है, जहाँ आप अपनी मर्ज़ी से सिर्फ़ अपनी गाड़ी दौड़ाते रहें। यहाँ बहुत-से और लोग भी हैं और वे भी अपना सफ़र पूरा करना चाहते हैं। ज़रूरी है कि हर कोई अपने अंदर इतनी समझ और लचीलापन पैदा करे कि वह खुद रास्ता लेने

के साथ-साथ दूसरों को भी रास्ता दे सके। जो लोग अपने अंदर यह समझ पैदा नहीं करते, उनका अंजाम वही होगा, जो एक ऐसे चौराहे का होता है, जहाँ कोई भी गाड़ी रुकती नहीं— हर कोई बस अंधाधुंध दौड़ाता रहता है।

याद रखिए कि आप ज़िंदगी की सड़क पर अकेले नहीं हैं। यहाँ बहुत-से और सफ़र करने वाले भी हैं। अगर आप ज़िंदगी की सड़क पर आगे बढ़ना चाहते हैं, तो आपको दूसरों को भी गुजरने का मौक़ा देना होगा। अगर सड़क के एक हिस्से पर आपको अपनी गाड़ी दौड़ाने का मौक़ा मिल रहा है, तो सड़क के दूसरे हिस्से पर आपको अपनी गाड़ी रोकनी भी पड़ेगी, ताकि दूसरी गाड़ियाँ बिना टकराए निकल सकें।

अपना हक़ लेने के लिए दूसरों का हक़ देना पड़ता है। अगर आप चाहते हैं कि दूसरों को उनका हक़ दिए बिना आप अपना हक़ पा लें, तो आज की दुनिया में ऐसा होना मुमकिन नहीं है।



एक कामयाब तरीक़ा



एक पश्चिमी (Western) कंपनी ने कार का टायर बनाया। उसने इशतिहार दिया कि जो भी उनके टायर में कोई ख़राबी बताएगा, उसे पचास हजार डॉलर इनाम दिया जाएगा। जब कंपनी का टायर मार्केट में आया, तो लोग टूट पड़े ख़रीदने के लिए। उनकी सोच थी कि अगर ख़राबी निकाल ली, तो पचास हजार डॉलर मिलेंगे, वरना टायर तो उनके पास रहेगा ही।

कंपनी को बेहिसाब शिकायतों के ख़त मिले। छानबीन के बाद पता चला कि इन ख़तों में से 20 फ़ीसद क़ाबिले-ग़ौर थे। फिर कंपनी ने हर इलाक़े से चुने गए शिकायत करने वालों को दावत भेजी। उनका सफ़र और होटलों में ठहरने का पूरा इंतज़ाम कंपनी ने किया। इन लोगों ने कंपनी की तरफ़ से रखे गए सेमिनार में शिरकत की। हर किसी ने अपनी आलोचनात्मक राय पेश की। गुप्तगू के बाद सबकी सहमति से एक प्रस्ताव स्वीकार किया गया और इनाम बाँट गए।

इसके बाद कंपनी ने नया टायर बनाया। इस टायर की क़ीमत पहले वाले से

दुगनी रखी। जब इसका इशितहार हुआ, तो दूसरा टायर पहले से भी ज्यादा बिका। पहला टायर कंपनी की अपनी राय पर बना था, लेकिन दूसरा टायर लोगों की राय शामिल करके बनाया गया था। लोगों को यकीन हो गया कि यह टायर इस्तेमाल करने वालों के मशवरे से बना है, इसलिए यह सिर्फ कंपनी की राय पर बने टायर से बेहतर होगा।

आज की दुनिया में हर शख्स दूसरों से जुड़ा हुआ है। हर कोई दूसरों को साथ लेकर ही कामयाब होता है, इसलिए इस दौर में कामयाबी का मतलब है कि आप दूसरों का भी ख्याल रखें। आप अपनी कामयाबी तभी हासिल कर सकते हैं, जब आप सचमुच दूसरों की कामयाबी में हिस्सा डालें।

इस दुनिया में कामयाबी पाने के लिए दूसरों के लिए फ़ायदेमंद (beneficial) बनना ज़रूरी है। जिनसे आप ले रहे हैं, उन्हें यह यकीन दिलाना ज़रूरी है कि आप उन्हें भी कुछ दे रहे हैं। यह दुनिया आपसी लेन-देन का बाज़ार है— जो दूसरों को देगा, वही दूसरों से पाएगा। जिसके पास दूसरों को देने के लिए कुछ नहीं है, उसे शिकायत नहीं करनी चाहिए कि लोग उसे कुछ क्यों नहीं देते।



काम है, मगर काम करने वाले नहीं



महाराष्ट्र का एक नौजवान रमेश धोबी (22 साल) बेरोज़गारी से बहुत परेशान था। ना-उम्मीदी ने उसकी ज़िंदगी को उसकी नज़रों में बेकार बना दिया था। आखिरकार एक दिन वह मोहाड़ी स्टेशन पहुँचा। उसके दिमाग में बस एक ही ख्याल था— “इन हाथों का क्या फ़ायदा, अगर दुनिया में इनके लिए कोई काम ही नहीं है?” तभी उसे एक ट्रेन आती दिखाई दी। वह रेलवे ट्रैक के किनारे खड़ा हो गया और जैसे ही ट्रेन पास आई, उसने अपने दोनों हाथ पहियों और पटरी के बीच में डाल दिए। नतीजा साफ़ था— उसके दोनों हाथ उसके जिस्म से अलग हो गए।

जब यात्रियों ने उसकी हालत देखी, तो उसे तुरंत अस्पताल ले गए और डॉक्टरों के हवाले कर दिया। रमेश धोबी से पूछा गया कि उसने ऐसा क्यों किया?

उसका जवाब, जो अंग्रेज़ी अख़बार (टाइम्स ऑफ़ इंडिया; 14 अगस्त, 1981) में छपा था—

“मेरे हाथ बेकार हैं, क्योंकि मुझे कोई काम नहीं मिलता और बिना काम के ज़िंदगी जीना शर्मिंदगी की बात है।”

मैंने यह ख़बर अख़बार में पढ़ी ही थी कि तभी एक साहब कमरे में आए। उन्होंने अपनी स्थिति बताते हुए कहा— “मेरे पास काफ़ी ज़मीन है और एक नहर होने की वजह से सिंचाई का अच्छा इंतज़ाम है। अगर मेहनत और ज़िम्मेदारी से काम किया जाए, तो आसानी से सालाना एक लाख रुपये कमाए जा सकते हैं। अब तक मैं खुद ही करता था, लेकिन अब मेरे पास वक़्त नहीं है। कोई ऐसा भरोसेमंद इंसान नहीं मिल रहा, जिसे मैं अपना काम सौंप सकूँ। इसलिए मैंने तय किया है कि मैं अपनी ज़मीन बेच दूँगा।”

आज की दुनिया में जहाँ बहुत-से लोग बेरोज़गारी से परेशान हैं, वहीं यह भी सच है कि बहुत-से लोग इस समस्या से जूझ रहे हैं कि उनके पास काम है, मगर ऐसे लोग नहीं मिल रहे, जो काम को ठीक से सँभाल सकें।

अगर इन दोनों घटनाओं को एक साथ देखें, तो पता चलता है कि दुनिया में काम की कमी नहीं है, बल्कि काम करने वालों की कमी है। जो लोग बेरोज़गार हैं, अगर वे अपने अंदर सिर्फ़ दो ख़ूबियाँ पैदा कर लें, तो रोज़गार खुद उन्हें ढूँढेगा, न कि उन्हें रोज़गार की तलाश में इधर-उधर भटकना पड़े। वे दो ख़ूबियाँ हैं— मेहनत और ईमानदारी।

जितना दोगे, उतना पाओगे



मिस्टर सुरजीत सिंह लांबा (जन्म : 1931) के पास फ़ोटोग्राफ़िक मेमोरी है। अगर वह किसी चीज़ को कुछ बार पढ़ लें, तो उसे याद कर लेते हैं। 12 जून, 1983 को जब वे हमारे दफ़्तर आए, तो उन्होंने ‘अल-रिसाला’ के कई आर्टिकल्स लफ़्ज़-ब-लफ़्ज़ सुना दिए।

मिस्टर लांबा लॉ मंत्रालय में काम करते हैं और करोल बाग (दिल्ली) में रहते हैं। वे इक्रबाल के बड़े प्रशंसक हैं और इक्रबाल स्टडीज़ में गहरी दिलचस्पी रखते हैं। उन्होंने इक्रबाल के हजारों शेर याद किए हुए हैं, साथ ही उनकी जिंदगी के तमाम पहलुओं की भी जानकारी रखते हैं।

मई, 1983 में मिस्टर सुरजीत सिंह लांबा पाकिस्तान गए। वहाँ उनका स्वागत इक्रबाल स्टडीज़ के माहिर के तौर पर किया गया। इस दौरान पर उनकी मुलाकात लाहौर के मिस्टर अमीर हुसैन से हुई, जिनकी याददाश्त भी इक्रबाल की शायरी में काफ़ी अच्छी थी। मिस्टर हुसैन ने उन्हें चुनौती दी और कहा— “अगर आप साबित कर दें कि आपको मुझसे ज़्यादा इक्रबाल के शेर याद हैं, तो मैं हार मान लूँगा और आपको पाँच हजार रुपये इनाम दूँगा।”

मिस्टर लांबा ने जवाब दिया— “मैं पिछले दस साल से इक्रबाल की शमा के चारों तरफ़ परवाने की तरह घूम रहा हूँ। आप तभी मुझसे ज़्यादा इक्रबाल का कलाम सुना सकते हैं, अगर आपने इस शमा के चारों तरफ़ मुझसे ज़्यादा परवाज़ की हो।”

नतीजा यह हुआ कि मिस्टर सुरजीत सिंह लांबा मुक्राबले में जीत गए। जब भी मिस्टर अमीर हुसैन इक्रबाल का कोई मिसरा सुनाते, मिस्टर लांबा आगे के शेर लगातार सुना देते, लेकिन जब मिस्टर लांबा कोई मिसरा सुनाते, तो मिस्टर हुसैन कुछ शेर से आगे नहीं बढ़ पाते।

इस तरह इक्रबाल के इस मुक्राबले में सुरजीत सिंह लांबा की जीत हुई और लाहौर के अमीर हुसैन हार गए।

किसी भी मैदान में कामयाबी की सबसे अहम शर्त यह है कि इंसान पूरी तरह से उसमें डूब जाए। जिंदगी का हर पहलू एक शमा की तरह है और सबसे आगे वही बढ़ता है, जिसने उस शमा के चारों तरफ़ सबसे ज़्यादा शौक्र से ‘नाचा’ हो।

जिंदगी असल में देने और लेने का सौदा है। यहाँ वही पाता है, जो देता है और जो जितना देता है, वह उसी के अनुपात में पाता है। बिना दिए पाना नामुमकिन है और जो कम देगा, वह ज़्यादा पाने की उम्मीद कभी नहीं कर सकता।



देने वाले बनो



बाटा शू कंपनी का नाम बाटा फ़ैमिली के नाम पर रखा गया है। यह फ़ैमिली पहले चेकोस्लोवाकिया में रहती थी। सन् 1620 में उन्होंने जूते बनाना शुरू किया। टॉमस बाटा सीनियर (जो कि मौजूदा बाटा के पिता थे) ने 1925 में पहली फ़ैक्ट्री लगाई।

टॉमस बाटा सीनियर अपने प्राइवेट विमान में उड़ान भर रहे थे कि घने कोहरे में फँसकर विमान क्रैश हो गया। उसी वक़्त आग में जलकर उनकी मौत हो गई। उस दिन के बाद से टॉमस बाटा जूनियर बाटा लिमिटेड के प्रेज़िडेंट हैं। अब वे 68 साल के हैं।

बाटा कंपनी का कारोबार अब 114 देशों में फैला हुआ है। पिछले साल कंपनी ने दुनियाभर में 31 करोड़ 50 लाख जोड़ी जूते बेचे। कंपनी का सबसे बड़ा कारोबार कनाडा में है और भारत दूसरे नंबर पर है। बाटा कंपनी इस वक़्त दुनिया की सबसे बड़ी जूता बनाने वाली संस्था है। इसके सीधे तौर पर काम करने वाले कर्मचारियों की कुल तादाद लगभग 90,000 है। इसके अलावा भी बहुत सारे लोग अप्रत्यक्ष रूप से काम करते हैं।

मिस्टर टॉमस बाटा जूनियर 1983 में चालीसवीं बार भारत आए। एक मीटिंग में एक प्रेस वाले ने उनसे पूछा— “आपकी सफलता का सबसे बड़ा कारण क्या है, जिसने आपको इस मुक़ाम तक पहुँचाया?” मिस्टर बाटा ने जवाब दिया— “हम हर तरह के जूते बनाते हैं, सस्ते भी और बहुत महँगे भी, लेकिन हम हर ग्राहक की ज़रूरत को पूरी तरह पूरा करते हैं। असल बात यह है कि हम अपने ग्राहकों का ख़्याल किसी और से कहीं ज़्यादा रखते हैं।”

“हम सच में अपने ग्राहकों का ख़्याल वैसा रखते हैं, जैसा कोई और नहीं रखता।”

बाटा शू कंपनी की इस बड़ी सफलता से यह सीख मिलती है— अगर आप अपने लिए कुछ पाना चाहते हैं, तो दूसरों को देने की कोशिश करो, क्योंकि दूसरों को देकर ही आप इस दुनिया में अपने लिए कुछ सुरक्षित कर सकते हैं।



क्रददानी



चार्ल्स डार्विन (1809-1882) अपने स्कूल के दिनों में अच्छे स्टूडेंट नहीं थे। उनके पिता ने एक बार उन्हें डाँटते हुए कहा था, “तुम बस शिकार खेलते हो और कुत्तों के साथ चूहे पकड़ते हो।” स्कूल की पढ़ाई के बाद उनके पिता ने उन्हें मेडिकल की पढ़ाई के लिए दाखिल करवाया, लेकिन वे इसे पूरा नहीं कर सके। इसके बाद उन्होंने पादरी बनने का फैसला किया और केंब्रिज यूनिवर्सिटी में धर्मशास्त्र (Theology) पढ़ने लगे, लेकिन वहाँ भी वे नाकाम रहे।

केंब्रिज में रहते हुए डार्विन को प्राकृतिक इतिहास (Natural History) के विषय में दिलचस्पी हो गई। हालाँकि यह विषय उनकी डिग्री के कोर्स में शामिल नहीं था, फिर भी उन्होंने अपने शौक के लिए इसे पढ़ना जारी रखा। प्राकृतिक इतिहास और भू-विज्ञान (Geology) में इस दिलचस्पी ने ही डार्विन को प्रोफेसर हेंसलो (J.S. Henslow) तक पहुँचाया। प्रोफेसर हेंसलो बहुत पढ़े-लिखे और खुले विचारों वाले इंसान थे। हेंसलो से जुड़ाव ही डार्विन के लिए पहली सीढ़ी बना, जिसने उन्हें विज्ञान की दुनिया में सबसे ऊँचे मुकाम पर पहुँचा दिया।

उस वक़्त ब्रिटिश सरकार ने अपने एक खास नौसेना के जहाज़ ‘बीगल’ (Beagle) को एक सर्वेक्षण अभियान पर भेजा था। यह जहाज़ पाँच साल (1831-36) तक प्रशांत और अटलांटिक महासागर के तटीय देशों का सर्वे करता रहा। प्रोफेसर हेंसलो ने अपने निजी रसूख का इस्तेमाल करके डार्विन को इस जहाज़ में एक जगह दिलवा दी। डार्विन को जहाज़ पर ‘प्रकृतिविद’ (Naturalist) के तौर पर नियुक्त कर दिया गया। इस तरह उन्हें दुनिया के अलग-अलग हिस्सों का प्रैक्टिकल अध्ययन करने का मौक़ा मिल गया। डार्विन खुद अपनी हैसियत से उस वक़्त ‘बीगल’ में जगह नहीं पा सकते थे। सिर्फ़ प्रोफेसर हेंसलो ही थे, जिन्होंने जवान डार्विन की क्राबिलियत को पहचाना और उन्हें इस ऐतिहासिक जहाज़ पर सफ़र करने का मौक़ा दिया।

इन पाँच सालों में डार्विन ने कई देश देखे और तटीय जंगलों व पहाड़ों की यात्राएँ कीं। कहीं पैदल और कहीं घोड़े पर चलकर वे मीलों अंदर तक गए और हज़ारों तरह के पौधों व जानवरों का अध्ययन किया और उनके नमूने जमा किए,

साथ ही उन्होंने चट्टानों में संरक्षित जीवों के जीवाश्म (fossils) का भी एक बड़ा संग्रह इकट्ठा किया।

इस सफर के अवलोकन से उन्होंने कई सिद्धांत बनाए, जैसे— अलग-अलग तरह के जानवर, एक-दूसरे से अलग होने के बावजूद, कई मामलों में एक जैसे होते हैं। इसी तरह कोई जीव जिस माहौल में रहता है, उसके हिसाब से खुद को ढाल लेता है वगैरह। असल में यही वह अवलोकन थे, जो आगे की पढ़ाई के बाद डार्विन के 'विकासवाद के सिद्धांत' (Theory of Evolution) में बदल गए।

लेखक की निजी राय है कि डार्विन का विकासवाद का सिद्धांत पूरी तरह से गलत है और हकीकत से इसका कोई लेना-देना नहीं है। हालाँकि डार्विन की जिंदगी से यह सबक मिलता है कि 'बड़े' लोगों की कद्रदानी कैसे 'छोटों' को आगे बढ़ाती है और उनकी प्रतिभा को निखारने का मौक़ा देती है। जिस समाज में बड़े लोग लोगों की क़ाबिलियत के आधार पर उनकी क़द्र करते हैं, वहाँ लोग तरक्की करते हैं। जबकि जहाँ ऐसा हो कि वक्त के बड़े लोग सिर्फ़ अपने चापलूसों और खुशामदियों की ही क़द्र करना जानते हैं, वहाँ लोगों की प्रतिभाएँ मुरझाकर रह जाती हैं। ऐसा समाज कभी भी ऊँची तरक्की नहीं कर सकता।

डार्विन की जिंदगी का एक और किस्सा बहुत सिखाने वाला है। डार्विन के साथ एक अजीब समानता हुई। डार्विन ने 1852 तक 'प्राकृतिक चयन' (natural selection) के बारे में अपने विचार लिख दिए थे, लेकिन अभी तक वे छपे नहीं थे। जून, 1858 में उन्हें अल्फ़्रेड वालेस (Alfred Wallace) का एक ख़त मिला। इस ख़त में वालेस ने अपने एक अप्रकाशित निबंध का ज़िक्र किया था। इस निबंध में उन्होंने वही बात लिखी थी, जो डार्विन ने अपने पेपर में लिख रखी थी। डार्विन चाहते तो क्रेडिट लेने के लिए तुरंत अपना पेपर छपवा सकते थे, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्होंने यह योजना बनाई कि वे अपने और वालेस के विचारों को एक साझा पेपर (joint paper) के रूप में लंदन की 'लिनियन सोसाइटी' के सामने पेश करें, ताकि इस नए सिद्धांत को लोगों के सामने ज़्यादा ताक़त और अहमियत के साथ रखा जा सके। आख़िरकार 1 जुलाई, 1858 को 'विकासवाद का सिद्धांत' लंदन के विद्वानों की एक सभा में एक साझा पेपर के रूप में पेश किया गया और तुरंत ही यह एक अहम विषय बन गया।

सामूहिक कार्रवाई हमेशा ज्यादा ताक़तवर होती है, बशर्ते कि लोग अपनी निजी इच्छाओं को दबा सकें और सामूहिक तरीके से काम करने की हिम्मत दिखा सकें।



बनाने की जीत



सुबह जब वह आदमी सोकर उठा, तो कमरे में एक चिड़िया का अंडा टूटा पड़ा था। यह गौरैया चिड़िया का अंडा था। उस चिड़िया ने छत की लकड़ी में एक कोना ढूँढ़कर वहाँ अपना घोंसला बना रखा था। इसी घोंसले की वजह से कमरे में हमेशा चिड़ियों का शोर रहता और तिनके गिरते रहते।

आदमी ने फ़र्श पर टूटा अंडा देखा, तो उसने घोंसला उजाड़कर फेंक दिया।

अगले दिन फिर वही 'चूँ-चूँ' का शोर शुरू हो गया। चिड़ियाँ फिर से छत की लकड़ी में तिनके जमा कर रही थीं। शायद उजड़े हुए घोंसले को दोबारा बना देखने की चाहत ने उनके अंदर हिम्मत बढ़ा दी थी। इस हिम्मत पर आदमी को गुस्सा आया और उसने दोबारा उनका घोंसला उजाड़ दिया। वह समझता था कि उसने चिड़ियों पर आखिरी जीत पा ली है, मगर अगले दिन फिर घोंसले का मसला उसके सिर पर मँडरा रहा था।

चिड़ियों ने जब देखा कि उनका बनाया घोंसला उजाड़ दिया गया है और अंडे तोड़ दिए गए हैं, तो उन्होंने रोने-धोने या शिकायत करने में वक़्त बरबाद नहीं किया। उन्होंने यह भी नहीं किया कि बाहर जाकर दूसरी चिड़ियों को ढूँढ़ें और मिलकर हमला करें। इसके उलट वे चुपचाप बाहर निकलीं और एक-एक तिनका लाकर फिर से घोंसला बनाना शुरू कर दिया।

अब यह रोज़ का क्रिस्सा बन गया। चिड़ियाँ रोज़ घोंसला बनाना शुरू करतीं और आदमी रोज़ उसे उजाड़ देता। इस तरह पूरा एक महीना बीत गया। इस दौरान कितनी ही बार चिड़ियों की मेहनत बरबाद हुई। उनके चुने हुए तिनके बेकार हो गए, मगर चिड़ियाँ इन बातों की परवाह किए बिना अपना काम करती रहीं। आदमी की नफ़रत का जवाब चिड़ियों के पास सिर्फ़ चुपचाप काम करना था।

आदमी की तबाही का मुक्काबला वे हर बार नई बनावट से करती थीं। चिड़ियों का दुश्मन ताकतवर था, मगर ताकतवर दुश्मन का जवाब उन्होंने अपनी लगातार कोशिश में ढूँढ लिया था।

आखिरकार चुपचाप काम करने वालों की जीत हुई। चिड़ियों की लगातार बनावट ने आदमी की लगातार तबाही पर जीत पा ली। एक महीने की नाकाम कोशिशों के बाद आदमी थक चुका था। उसने चिड़ियों का घोंसला उजाड़ना बंद कर दिया।

अब गौरैया ने अपना घोंसला पूरा करके फिर से उसमें अंडे दे दिए हैं। वह उन्हें सेने में लगी हुई है, ताकि अपनी अगली पीढ़ी पैदा कर सके और फिर अपना काम पूरा करके उड़ जाए। जब ये चिड़ियाँ अपने घोंसले में जमा होती हैं, तो उनकी 'चूँ-चूँ' की आवाज़ आज भी कमरे में गूँजती है, मगर अब आदमी को यह आवाज़ बुरी नहीं लगती, क्योंकि 'चूँ-चूँ' की आवाज़ में उसे एक क्रीमती संदेश सुनाई देता है—

“अपने दुश्मन से नफ़रत मत करो। हर हाल में अपना बनाने का काम जारी रखो। तुम ज़रूर कामयाब होगे।”



मेहनत का ज़रिया



जोसेफ़ कॉनरैड का जन्म 1857 में पोलैंड के एक शहर बर्डिचेव में हुआ था। वह बचपन में ही अनाथ हो गया था। अपनी जिंदगी की शुरुआत में उसे समुद्री जहाज़ों पर काम करके अपनी गुज़र-बसर करनी पड़ी। उसकी ठीक-ठाक स्कूली पढ़ाई भी नहीं हो पाई। कई देशों में घूमता हुआ आखिरकार वह इंग्लैंड पहुँचा और 1886 में उसने ब्रिटिश नागरिकता ले ली।

इंग्लैंड में रहने के दौरान उसने अंग्रेज़ी सीखने के लिए बहुत ज़्यादा मेहनत की। इतनी कि वह अंग्रेज़ी भाषा का एक मशहूर लेखक बन गया। कहते हैं कि उसके ज़माने में इंग्लैंड के जीवित लेखकों में उसकी शोहरत थॉमस हार्डी के बाद दूसरे नंबर पर थी।

उसकी किताब 'लॉर्ड जिम' में उसके बारे में यह वाक्य लिखा है— “उसने अंग्रेज़ी में एक बेहतरीन शैलीकार के तौर पर नाम कमाया, हालाँकि उन्नीस साल की उम्र तक वह इस भाषा का एक शब्द भी नहीं बोल पाता था।”

जोसेफ़ कॉनरैड की दो दर्ज़न से ज़्यादा किताबें हैं— ज़्यादातर उपन्यास या कहानियों के रूप में। अंग्रेज़ी उसकी मातृभाषा नहीं थी, फिर भी उसकी अंग्रेज़ी किताबें यूनिवर्सिटीयों के पाठ्यक्रम में शामिल हैं। उसकी मौत 1924 में इंग्लैंड में हुई।

इंग्लैंड के एक व्यक्ति ने मुझे बताया कि कॉलेज में उनके अंग्रेज़ी के टीचर ने एक बार उनसे कहा था— “जोसेफ़ कॉनरैड को पढ़ो। वह बहुत ख़ूबसूरत अंग्रेज़ी लिखता है।”

यह एक ऐसा उदाहरण है, जिससे पता चलता है कि मेहनत हर चीज़ का विकल्प है। आप गरीब घर में पैदा होकर भी ऊँची तालीम पा सकते हैं। आप किसी ज़बान के मूल बोलने वाले न होते हुए भी उस ज़बान के बड़े लेखक जैसे बन सकते हैं। लोग आपको महत्वहीन समझते हों, फिर भी आप ऐसी चीज़ लिख सकते हैं, जिसे पूरी दुनिया के लोग पढ़ने पर मजबूर हो जाएँ।



काम का शौक़



एक पढ़े-लिखे आदमी की एक व्यस्त संस्था में फुल टाइम नौकरी थी, साथ ही वे एक अंग्रेज़ी अखबार में सब-एडिटर भी थे। वे अपनी नौकरी की ज़िम्मेदारियाँ पूरी तरह निभाते थे और अखबार की एडिटोरियल ड्यूटी भी। किसी ने उनसे पूछा, “आप इतना ज़्यादा काम करते हैं, आपको वक़्त कैसे मिलता है?” उन्होंने जवाब दिया, “वक़्त कोई चीज़ नहीं है। यह सिर्फ़ दिलचस्पियों का नतीजा है।”

यह सच है कि किसी काम को पूरा करने के लिए असल अहमियत वक़्त की नहीं, बल्कि दिलचस्पी की होती है। इंसान की दिलचस्पी ही उससे काम करवा लेती है। अगर सच्ची लगन और शौक़ हो, तो कम वक़्त में भी इंसान बहुत सारा काम कर लेता है और अगर शौक़ व लगन न हो, तो ज़्यादा वक़्त भी कम पड़ जाता है।

एक शख्स के पास विदेश से एक ऑफ़र आया। वक्रत सिर्फ़ तीन हफ़्ते का था और उसके पास पासपोर्ट भी नहीं था। आजकल विदेश जाने के लिए बहुत सारी क़ानूनी फ़ॉर्मैलिटीज़ पूरी करनी पड़ती हैं। ऊपर से देखने में वक्रत पर जाना बहुत मुश्किल लग रहा था, मगर उसने रात-दिन एक करके सारा काम पूरा किया और ठीक तारीख को वह हवाई जहाज़ में बैठकर मंज़िल की तरफ़ उड़ चुका था।

दूसरी तरफ़ एक दूसरे शख्स के साथ भी ऐसा ही मौक़ा आया। वह शहर से दूर गाँव में था। उसने शहर में रहने वाले अपने एक रिश्तेदार को चिट्ठी लिखी— “मेरे लिए शहर आना मुश्किल है, आप मेरा यह काम कर दीजिए, जो भी खर्च आएगा, वह मैं दे दूँगा।” रिश्तेदार ने जवाब दिया, “अच्छा, मैं कोशिश करूँगा।” वह शख्स उनकी बात पर भरोसा करके चैन से बैठ गया। उसके पास पूरे दो महीने का वक्रत था, मगर उसका कोई काम नहीं हुआ और वह विदेश नहीं जा सका। आखिर में रिश्तेदार का संदेश आया— “फ़लाँ वजह से मैं आपका काम नहीं कर सका।” यह जवाब तब मिला, जब वक्रत निकल चुका था।

पहले शख्स ने अपने काम में दिलचस्पी ली, तो कम वक्रत में भी काम पूरा कर लिया। दूसरे शख्स ने अपने काम में वैसी दिलचस्पी नहीं ली, इसलिए छोटी-छोटी बातें बहाना बन गईं और ज़्यादा वक्रत होने के बावजूद वह काम पूरा नहीं कर सका।

जब इंसान को काम का शौक़ होता है, तो उसकी अक़ल के दरवाज़े खुल जाते हैं। मक़सद को पाने की तड़प उसकी काम करने की ताक़त बढ़ा देती है। वह उसके लिए हर कुर्बानी देने को तैयार हो जाता है। नतीजा यह होता है कि वह दिनों में वह काम कर लेता है, जो दूसरा शख्स हफ़्तों या महीनों में भी नहीं कर पाता।

एक एहसास

20 जनवरी, 1986 को मैं इंडियन एयरलाइंस की फ़्लाइट नंबर 439 से दिल्ली से हैदराबाद गया। जहाज़ के अंदर हमेशा की तरह ऐलान शुरू हुए, तो अनाउंसर ने दूसरी बातों के साथ यह भी कहा— “कैप्टन मुस्तफ़ा जहाज़ चला रहे हैं।”

मैंने इंडियन एयरलाइंस में बहुत सफ़र किए हैं, मगर 'कैप्टन मुस्ताफ़ा' जैसा नाम पहली बार सुना। यह इस बात की निशानी है कि मुसलमान अब दूसरी ऊँची नौकरियों के साथ-साथ इस देश की हवाई सेवाओं में भी दाखिल होने लगे हैं। वे अपने पिछड़ेपन को खत्म करते हुए तेज़ी से आगे बढ़ रहे हैं।

मैं मानता हूँ कि इस देश में अगर ऐसे वाक्ये हैं, जहाँ एक 'मुस्ताफ़ा' को नौकरी में लिया गया है, तो ऐसा मामला भी मौजूद है, जहाँ किसी 'मुस्ताफ़ा' को नौकरी में नहीं लिया गया; मगर मैं जिस बात से इत्तिफ़ाक़ नहीं रखता, वह यह है कि इसे पक्षपात या भेदभाव बताया जाए। असल में यह जिंदगी की एक हकीक़त है, न कि पक्षपात।

असल बात यह है कि यह दुनिया कंपटीशन की दुनिया है। यहाँ जरूर ऐसा होगा कि लोगों और क्रौमों के बीच दौड़ लगी रहेगी और फिर कोई आगे निकल जाएगा, तो कोई पीछे रह जाएगा। चिड़ियाघर में जो जानवर होते हैं, वे कुछ दिन बाद सुस्त पड़ जाते हैं। इसलिए उनके बाड़े में कुछ वक़्त के लिए उनके शिकारी जानवर डाल दिए जाते हैं, ताकि उनके लिए दौड़ने-भागने का माहौल बने। यह कुदरत का नियम है और मुक़्ाबले व होड़ के इसी नियम में जिंदगी का राज़ छुपा है।

अगर आप किसी वाक्ये को 'भेदभाव' कहेंगे, तो सिर्फ़ शिकायत करने का मन बनेगा। उसी वाक्ये को अगर आप 'कंपटीशन' कहेंगे, तो कुछ करने का ज़रबा जागेगा।



यह भी एक विरासत है



करीम बख़्श एक सीधे-सादे और धार्मिक इंसान थे। वे गाँव की मामूली आमदनी पर अपना गुज़ारा चलाते थे। जब वे 65 साल की उम्र में इस दुनिया से गए, तो अपने पीछे चार बच्चे छोड़ गए, लेकिन कोई ज़मीन-जायदाद नहीं छोड़ी। उनकी मौत के बाद उनके बड़े बेटे रहीम बख़्श रोज़ी-रोटी की तलाश में शहर आ गए। शहर में उन्होंने थोड़ी-सी पूँजी से एक छोटा-सा कारोबार शुरू किया।

रहीम बख्श को उनके पिता ने कोई धन-दौलत की विरासत नहीं दी थी, मगर उन्होंने एक ऐसी विरासत छोड़ी थी जिसमें संतोष, सादगी और बिना झगड़े काम करने की आदत थी। यह विरासत रहीम बख्श के लिए बहुत फ़ायदेमंद साबित हुई। उनकी सादगी और संतोष की वजह से कम आमदनी के बावजूद उनकी तरक्की धीरे-धीरे होती रही। झगड़ों से दूर रहने की आदत ने भी उनकी मदद की। सब उनसे खुश रहते थे और उन्हें सभी का सहयोग मिलता था। उनकी प्रगति धीमी ज़रूर थी, मगर लगातार जारी रही।

रहीम बख्श का कारोबार छोटा था, मगर उनकी ईमानदारी, निःस्वार्थ भावना और सच्चाई ने उन्हें समाज में इतनी इज़्जत दिलाई, जैसे वे बहुत बड़े आदमी हों। उनके पास पूँजी बहुत कम थी, मगर लेन-देन में पारदर्शिता और वादे पूरे करने की उनकी विश्वसनीयता की वजह से बाज़ार के बड़े थोक व्यापारी भी कहते, “भाई, जितना माल चाहिए, ले जाओ। पैसे की चिंता मत करो। पैसे बाद में आ जाएँगे।” कभी-कभी ऐसे हालात बनते कि जब झगड़ा होना तय लगता, तो वे खुद को रोक लेते। वे परेशान करने वाले इंसान से बदला नहीं लेते, बल्कि चुपचाप अपने काम में लगे रहते और उसके लिए अच्छा सोचते। जब शैतान उन्हें ग़लत भावनाओं में उकसाता, तो उनके सामने उनके पिता का मासूम चेहरा आ जाता। उन्हें लगता कि अगर उन्होंने ग़लत काम किया या झगड़ा किया, तो क्रम में उनके पिता की आत्मा तड़पेगी। यह सोचते ही उनकी भावनाएँ शांत हो जातीं और वे फिर से उसी रास्ते पर चल पड़ते, जो उनके पिता ने दिखाया था।

जैसे-जैसे कारोबार बढ़ा, उन्हें और मदद की ज़रूरत महसूस हुई। उन्होंने अपने भाइयों को बुलाना शुरू किया और आखिरकार चारों भाई शहर आ गए। धीरे-धीरे कारोबार चार अलग-अलग हिस्सों में बँट गया और हर हिस्से की ज़िम्मेदारी एक भाई ने सँभाल ली। चारों भाई साथ रहते और साथ खाना खाते, मगर हर कोई अपने हिस्से का काम खुद करता।

कुछ समय बाद रहीम बख्श को महसूस हुआ कि बाकी तीनों भाई, बड़े भाई और कारोबार के मालिक होने के नाते, उसी जोश से काम नहीं कर रहे हैं, जैसे कोई अपना काम करता है। अब उनके सामने दो रास्ते थे— या तो पूरे कारोबार पर क़ब्ज़ा कर लें और तीनों भाइयों से रिश्ते तोड़ लें या फिर चुपचाप सब कुछ चलने दें, जिसका नतीजा आम तौर पर यही होता है कि साझेदारी में कलह होती है और बँटवारा कड़वाहट के साथ होता है।

रहीम बख्श ने कुछ दिन सोच-विचार किया और फिर सभी भाइयों को इकट्ठा किया। उन्होंने खुलकर बात रखी और कहा, “ईश्वर की बड़ी कृपा है कि अभी तक कुछ बिगड़ा नहीं है। सबसे अच्छा यही है कि हम चारों अलग-अलग हो जाएँ और हर कोई अपना अलग कारोबार सँभाल ले। इससे हमारे पिता की आत्मा को सुकून मिलेगा और मेरा यक़ीन है कि हर एक के लिए यह ज़्यादा बरकत वाला रास्ता होगा।” तीनों भाइयों ने जवाब दिया, “हम आपके हमेशा आभारी हैं। आप जो ठीक समझें, हम मानते हैं।” थोड़ी बहस के बाद फ़ैसला हुआ कि चिट्ठियाँ डालकर बँटवारा कर लिया जाए। फ़ौरन चिट्ठी डाली गई और हर भाई के हिस्से में एक-एक कारोबार आ गया।

आज चारों भाई अपने-अपने कारोबार में लगे हैं। हर कोई सुबह से शाम तक मेहनत करके अपने बच्चों का पेट पाल रहा है। उनके रिश्ते पहले से भी ज़्यादा मज़बूत हैं। वे हमेशा एक-दूसरे की मदद के लिए तैयार रहते हैं। हर कोई अपना अलग घर बना चुका है, मगर रहीम बख्श आज भी उसी तरह ‘बड़े भाई’ हैं। किसी भी भाई की बात को नज़र-अंदाज़ नहीं किया जाता। अगर किसी के घर में कोई ज़रूरत पड़ती है, तो चारों घरों की औरतें और बच्चे अपना काम समझकर इकट्ठे हो जाते हैं।

बहुत-से पिता यही समझते हैं कि बच्चों के लिए सबसे बड़ी विरासत धन-दौलत और जायदाद होती है, मगर असलियत यह है कि सबसे खुशानसीब बच्चे वे होते हैं, जिनके पिता उन्हें सही जिंदगी जीने की विरासत देते हैं— जो उन्हें सिखाते हैं कि अपनी मेहनत पर भरोसा करो, झगड़ों से बचो, अपने हक़ में संतोष रखो, छोटे-मोटे फ़ायदों के बजाय आगे की संभावनाओं पर ध्यान दो और सपनों की दुनिया में न रहकर हक़ीक़त को स्वीकार करो। एक नैतिक विरासत धन की विरासत से कहीं बड़ी होती है, मगर बहुत कम पिता इस सच्चाई को पहचान पाते हैं।



उसे स्कूल से निकाल दिया



प्रोफ़ेसर अल्बर्ट आइंस्टाइन (1879-1955) ने बीसवीं सदी की विज्ञान की दुनिया में एक बहुत बड़ी क्रांति ला दी, मगर उनकी जिंदगी की शुरुआत बिलकुल

साधारण तरीके से हुई। तीन साल की उम्र तक वे बोल भी नहीं पाते थे। बाहर से देखने पर वे एक औसत पिता के औसत बच्चे लगते थे। नौ साल की उम्र तक वे पूरी तरह से सामान्य दिखाई देते थे। स्कूल के दिनों में उन्हें एक बार स्कूल से निकाल दिया गया था, क्योंकि उनके टीचर्स का मानना था कि पढ़ाई में उनकी अयोग्यता की वजह से दूसरे बच्चों पर बुरा असर पड़ रहा है। ज्यूरिक पॉलिटेक्निक में भी पहले तो उन्हें दाखिला नहीं मिला, क्योंकि एंट्रेंस एग्जाम में उनके नंबर बहुत कम थे। इसलिए उन्होंने और तैयारी की और अगले साल दाखिला ले लिया। उनके एक टीचर ने उनके बारे में कहा था—

“अल्बर्ट एक आलसी बच्चा था।”

बीस साल की उम्र तक अल्बर्ट आइंस्टाइन में किसी भी तरह की असाधारण प्रतिभा के लक्षण नहीं दिखे, लेकिन उसके बाद जब उन्होंने मेहनत करना शुरू किया, तो वे ऊँचाइयों पर पहुँच गए, जहाँ आधुनिक समय के बहुत कम वैज्ञानिक पहुँच पाए। इस आधार पर उनके एक जीवनीकार ने लिखा—

“हमारा दिल यह कहता है कि आइंस्टाइन बनने के लिए अच्छा स्टूडेंट होना ज़रूरी नहीं है।”

हमें यह समझना चाहिए कि आइंस्टाइन बनने के लिए पढ़ाई के दिनों में होशियार स्टूडेंट रहना ज़रूरी नहीं है। आइंस्टाइन ने अपनी पहली साइंटिफ़िक किताब 26 साल की उम्र में छपवाई। उसके बाद से उनकी शोहरत बढ़ती ही गई। आइंस्टाइन का जीवन बहुत सादा था। वे साधारण खाना खाते थे और अकसर आधी रात तक काम करते रहते थे। उन्हें इज़राइल का प्रेज़िडेंट बनने का ऑफ़र मिला, लेकिन उन्होंने मना कर दिया, यह कहते हुए कि राजनीति इंसानियत का कैँसर है। 1933 में वे हिटलर के जर्मनी से निकल आए। हिटलर की सरकार ने 20,000 मार्क का इनाम उस व्यक्ति के लिए घोषित किया, जो आइंस्टाइन का सिर लेकर आएगा। उस समय यह एक बहुत बड़ी रकम थी, लेकिन आइंस्टाइन की महानता लोगों के दिलों में इतनी गहरी बैठी हुई थी कि किसी ने भी इनाम लेने की हिम्मत नहीं की।

इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है, जिनसे पता चलता है कि एक महान व्यक्ति बनने के लिए महान बच्चे के रूप में पैदा होना ज़रूरी नहीं है। छोटी-मोटी शुरुआत से एक इंसान बहुत बड़ी कामयाबियाँ हासिल कर सकता है, बशर्ते

वह संघर्ष की शर्तों को पूरा करे। असल में जो लोग मुश्किल हालात का सामना करते हैं, वे ज्यादा खुशकिस्मत होते हैं, क्योंकि चुनौतियाँ ही काम करने के लिए प्रेरित करती हैं। वे इंसान के अंदर छुपी हुई क्षमता को जगा देती हैं। इसके अलावा ज़िंदगी की सबसे अच्छी सीख अकसर मुश्किल हालात में ही मिलती है। महान व्यक्ति आराम से नहीं, बल्कि मुसीबतों में ही बनते हैं।

सच तो यह है कि ईश्वर की इस दुनिया में संभावनाओं की कोई सीमा नहीं है। अगर किसी की शुरुआत छोटे साधनों से होती है, तो उसे हिम्मत नहीं हारनी चाहिए। मामूली हालात ही ज़िंदगी की सबसे मज़बूत सीढ़ियाँ होते हैं। इतिहास की ज्यादातर बड़ी उपलब्धियाँ साधारण हालात से ही निकली हैं।



बीस साल बाद



1950 और 1970 के बीच लगभग 20 साल तक जापान की हालत यह थी कि वह औद्योगिक टेक्नोलॉजी की उन्नत क्रिस्मों को पश्चिमी देशों से हासिल करता था— कभी उधार लेकर, कभी माँगकर और कभी खरीदकर, लेकिन आज जापान की अर्थव्यवस्था अपनी ज़मीन पर खड़ी है। जापान इस क्राबिल हो गया है कि वह दूसरे देशों में सिर्फ अपना माल ही नहीं, बल्कि अपनी औद्योगिक विशेषज्ञता (expertise) भी भेज सके।

अपनी उन्नत तकनीकी क्राबिलियत की बदौलत उसे यह मौक़ा मिल रहा है कि वह दूसरे देशों की मदद करके उनकी दोस्ती हासिल कर सके। वह अलग-अलग देशों की बड़ी-बड़ी योजनाओं का ठेका ले रहा है और उनके साथ व्यापार कर रहा है। जापानी विशेषज्ञ आज थाईलैंड में आधुनिक सिंचाई की परियोजनाएँ लागू कर रहे हैं। वे सिंगापुर में कंप्यूटर प्रोग्रामिंग पढ़ा रहे हैं। वे दक्षिण कोरिया और चीन में स्टील के कारख़ाने बना रहे हैं। वे मध्य-पूर्व में पेट्रोकेमिकल उद्योग लगा रहे हैं वगैरह-वगैरह।

शुरू-शुरू में जापानियों ने अमेरिकियों से स्टील बनाना सीखा था। अब उन्होंने इस हुनर को और निखारकर ऐसी हालत बना ली है कि वे उसे अमेरिका

को ही निर्यात करने लायक हो गए हैं। जापान, जो कभी अमेरिका का शागिर्द (student) था, उसने अब कई चीजों में, खास तौर पर कम्प्युनिकेशन और इलेक्ट्रॉनिक्स में, इतनी तरक्की कर ली है कि अमेरिका खुद अपने सैन्य महत्व के क्षेत्रों में जापान की तकनीकी मदद लेने के लिए जापान से करार (agreement) कर रहा है। शागिर्द इतना क्राबिल हो गया है कि अब उस्ताद (teacher) को ही सिखा सकता है।

जापान के इस तजुर्बे पर राय देते हुए एक अखबार के लेखक (हिंदुस्तान टाइम्स; 11 जून, 1981) ने लिखा है— टेक्नोलॉजी का बहाव पहले जापान के अंदर की ओर था, अब उसका बहाव जापान के बाहर की ओर है : अब बहाव अंदर आने का नहीं, बल्कि बाहर जाने का है।

जापान ने 20 साल तक औद्योगिक रूप से पिछड़े रहने (subordination) को स्वीकार किया। इसका नतीजा यह हुआ कि आज उसे औद्योगिक बढ़त (dominance) हासिल हो गई है। अगर वह पहले दिन से ही बढ़त हासिल करने पर अड़ा रहता, तो उसके हिस्से में सिर्फ यह आता कि उसका पिछड़ापन कभी खत्म नहीं होता। कुछ पाने के लिए कुछ खोना पड़ता है। हर ऊँचाई हासिल करने के लिए कुछ निचले स्तर को स्वीकार करना पड़ता है। यही दुनिया का कानून है। जो लोग दुनिया के इस कानून के साथ तालमेल बैठते (adapt) हैं, वही इस दुनिया में कामयाब होते हैं और जो लोग इस कानून के साथ तालमेल बैठाने को तैयार नहीं होते, उनके हिस्से में सिर्फ नाकामी आती है और उसके बाद वे बेकार में दूसरों पर अपनी बरबादी का झूठा इल्जाम लगाते रह जाते हैं।

बेरोज़गारी

यह बताया जाता है कि हज़रत मुहम्मद के साथी उमर कहा करते थे— “मैं एक आदमी को देखता हूँ, जो मुझे अच्छा लगता है, लेकिन जब मुझे बताया जाता है कि उसका कोई पेशा नहीं है, तो वह मेरी नज़रों से गिर जाता है।”

इसी तरह उनके एक और साथी मुहम्मद बिन आसिम ने कहा— “मुझ तक

यह बात पहुँची कि उमर बिन अल-खत्ताब जब किसी नौजवान को देखते और वह उन्हें पसंद आता, तो पूछते कि क्या उसके पास कोई हुनर है? अगर कहा जाता कि 'नहीं', तो वह उनकी नज़रों से गिर जाता।”

असलियत यह है कि बेरोज़गारी बहुत ही बुरी चीज़ है। यह इंसान की सारी अच्छी क्वाबिलियतों को खा जाती है। एक बेरोज़गार आदमी ऊपर से देखने में ज़िंदा लग सकता है, लेकिन हकीकत में वह एक मुर्दा इंसान होता है। उसके अंदर से वे सारी नाज़ुक भावनाएँ खत्म हो जाती हैं, जो किसी इंसान को असल मायनों में इंसान बनाती हैं।

बेरोज़गारी की एक शकल तो वह है, जब आदमी मेहनत-मशक्कत वाले कामों से घबराता है और उसमें यह क्वाबिलियत ही नहीं होती कि कोई बिना मेहनत वाला काम ढूँढ सके। इस वजह से वह अपने मनपसंद काम का इंतज़ार करते-करते बेकार पड़ा रहता है। दूसरी शकल यह है कि आदमी को विरासत में या किसी और संयोग से ऐसे ज़रिए मिल जाएँ, जिनके लिए उसने खुद कोई कोशिश नहीं की थी, जैसे— बैंक में जमा पैसा या जायदाद, जिसकी आमदनी या किराया उसे हर महीने अपने आप मिलता रहे। इस क्रिस्म का हर हाल बेरोज़गारी ही है और यह आदमी के लिए जानलेवा है, भले ही ऊपर से वह अच्छे कपड़े पहने हो और चलता-फिरता नज़र आता हो।

हर इंसान को चाहिए कि वह अपने लिए कोई जायज़ काम चुने और सुबह-शाम खुद को उसी में लगाए रखे। जिसके पास काम की व्यस्तता नहीं, उसके पास ज़िंदगी भी नहीं है। आप कभी भी एक बेकार आदमी को एक बेहतरीन इंसान नहीं पाएँगे।



बड़ी कामयाबी



अकसर कहा जाता है कि जो व्यक्ति अपने काम में पूरी तरह डूबा होता है, उसे अपने आस-पास की दुनिया का होश ही नहीं रहता। जब समय स्वयं चुपचाप बीत जाता है और उसका एहसास तक नहीं होता, तभी हकीकत में इंसान एकाग्र

(focused) होता है, लेकिन सिर्फ़ कड़ी मेहनत ही काफ़ी नहीं— यह समझना भी उतना ही ज़रूरी है कि उस मेहनत की दिशा क्या है। कुछ लोग दिन-रात मेहनत करते हैं, फिर भी उन्हें बहुत कम सफलता मिलती है और कुछ लोग सीमित प्रयास में असाधारण उपलब्धियाँ हासिल कर लेते हैं। इस अंतर का कारण मेहनत नहीं, समझ होती है।

प्राचीन समय से लेकर आधुनिक युग तक अनगिनत कहानियाँ इसकी गवाह हैं। कई लोगों ने अपना पूरा जीवन ऐसे प्रयासों में लगा दिया, जिनका कोई फल नहीं मिला।

वहीं कुछ लोगों को एक ही सही दिशा में किए गए प्रयास से पहचान और संतोष दोनों मिल गए। इससे पता चलता है कि सफलता केवल निरंतरता से नहीं, बल्कि सूझ-बूझ से भी मिलती है— कब, कहाँ और कैसे आगे बढ़ना है, यह जानना ज़रूरी है।

बहुत-से लोग पूरा जीवन तैयारी, योजना और सोच में ही बिता देते हैं, लेकिन वे निर्णायक क़दम उठाने का साहस नहीं कर पाते। उनकी तैयारी कभी समाप्त नहीं होती और उपलब्धि उनसे दूर ही रह जाती है। इसके विपरीत कुछ लोग कम जानकारी के साथ शुरुआत करते हैं, लेकिन अनुभव, आत्मचिंतन और साहस के सहारे धीरे-धीरे आगे बढ़ते जाते हैं। वे ठोकरें खाते हैं, लेकिन रुकते नहीं और इसी गति में उनका विकास होता है।

जीवन सभी के सामने चुनौतियाँ रखता है। लोगों को अलग करने वाली बात चुनौतियों का होना या न होना नहीं, बल्कि उनसे निपटने का तरीका है। कुछ लोग बाधाओं को रास्ता रोकने वाली दीवार समझते हैं, तो कुछ लोग उन्हें खुलने वाले दरवाज़े के रूप में देखते हैं। जो इस अंतर को समझ लेता है, वह असफलता को सीख में और कठिनाई को अवसर में बदल देता है।

सच्ची सफलता न तो अचानक मिलती है और न ही केवल संयोग का परिणाम होती है। वह मेहनत और सजगता के संतुलन से जन्म लेती है। जो लोग अपने आस-पास के माहौल को ध्यान से देखते हैं और गहराई से सोचते हैं, वे अवसर आने पर उन्हें पहचानने में कामयाब होते हैं। सफलता केवल मेहनती का नहीं, जागरूक व्यक्ति का भी साथ देती है।

अकसर लोग दूसरों से अपनी तुलना कर मायूस हो जाते हैं। वे भूल जाते हैं

कि हर व्यक्ति की यात्रा अलग होती है— उसकी परिस्थितियाँ अलग होती हैं, उसकी आंतरिक शक्ति अलग होती है। महत्व इस बात का नहीं कि कोई कितनी जल्दी मंज़िल तक पहुँचा, बल्कि इस बात का है कि वह स्पष्ट उद्देश्य के साथ आगे बढ़ता रहा या नहीं।

जीवन में ऐसे पल भी आते हैं, जब धैर्य की आवश्यकता होती है और ऐसे समय भी, जब निर्णायक क़दम उठाना ज़रूरी होता है। इन दोनों में अंतर समझना ही सच्ची बुद्धिमत्ता है। जो जल्दबाज़ी करता है, वह गिर सकता है और जो बहुत देर करता है, वह अवसर खो सकता है। संतुलन ही सफलता की कुंजी है।

आखिरकार सफलता केवल लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं, न ही धन या प्रतिष्ठा का संचय (collection) मात्र है। सफलता वह शांत संतोष है, जो यह जानकर मिलता है कि मनुष्य ने जीवन को उद्देश्य के साथ जिया, अपनी क्षमताओं का सही उपयोग किया और जीवन की माँगों का ईमानदारी से उत्तर दिया। ऐसी सफलता भले ही दुनिया को दिखाई न दे, लेकिन मन में गहरा और स्थायी संतोष छोड़ जाती है। यही समझ कि सफलता मेहनत के साथ-साथ जागरूकता से जन्म लेती है।

25 पैसे से

शाम का वक़्त था। एक बारह साल का लड़का अपने घर में घुसा, वह बहुत भूखा था। वह इसी उम्मीद में तेज़-तेज़ चलकर आ रहा था कि घर पहुँचकर खाना खाऊँगा और पेट की आग बुझाऊँगा, लेकिन जब उसने अपनी माँ से खाना माँगा, तो जवाब मिला— “अभी घर में खाने के लिए कुछ नहीं है।”

लड़के के पिता एक गरीब आदमी थे। वे मेहनत करके थोड़ी-बहुत कमाई करते थे। रोज़ कमाना और रोज़ दुकान से सामान लाकर पेट भरना— यही उनकी जिंदगी थी, मगर ऐसा भी होता कि किसी दिन कोई कमाई नहीं होती और पिता खाली हाथ घर वापस आते। उनके लिए वह भूखा रहने का दिन होता। इस परिवार की आर्थिक हालत का निचोड़ एक लफ़्ज़ में यह था— “काम मिल गया, तो रोज़ी; काम नहीं मिला, तो रोज़ा (उपवास)।”

माँ का जवाब सुनकर लड़के को बहुत सदमा लगा। “मुझे भूख लग रही है और मेरे घर में खाने को कुछ नहीं है।” वह चुप हो गया और देर तक सोचता रहा। उसके बाद बोला, “क्या तुम्हारे पास 25 पैसे भी नहीं हैं?” माँ ने बताया कि उसके पास 25 पैसे हैं। “अच्छा, तो लाओ वे 25 पैसे मुझे दे दो,” लड़के ने कहा।

उसने अपनी माँ से 25 पैसे ले लिये। फिर एक बाल्टी में पानी भरा, दो गिलास लिये, 25 पैसे की बर्फ लेकर बाल्टी में डाली और सीधा सिनेमा हाउस पहुँच गया। यह गर्मी का मौसम था, जब हर आदमी पानी पीने के लिए बेताब रहता है। वहाँ उसने आवाज़ लगाकर ‘ठंडा पानी’ बेचना शुरू किया। उसका पानी तेजी से बिकने लगा। कई लोगों ने लड़का समझकर ज्यादा पैसे दे दिए। आखिर में जब वह खाली बाल्टी और गिलास लेकर घर वापस पहुँचा, तो उसके पास पंद्रह रुपये हो चुके थे।

अब लड़का रोज़ाना ऐसा ही करने लगा। दिन में वह स्कूल में मेहनत से पढ़ता और शाम को पानी या कोई और चीज़ बेचकर कमाई करता। इसी तरह वह दस साल तक करता रहा। एक तरफ़ वह घर का ज़रूरी काम चलाता रहा, दूसरी तरफ़ अपनी पढ़ाई पूरी करता रहा। आज हालत यह है कि उस लड़के ने पढ़ाई पूरी करके नौकरी कर ली है। उसे तनख्वाह में साढ़े सात सौ रुपये महीना मिल जाते हैं। इसके साथ-साथ ‘शाम का कारोबार’ भी वह लगातार जारी रखे हुए है। अपने छोटे-से परिवार के साथ उसकी ज़िंदगी बड़े आराम से गुज़र रही है। उसकी मेहनत की कमाई में ईश्वर ने इतनी बरकत दी कि उसने अपना पुराना टूटा-फूटा मकान फिर से बनवा लिया। पूरे मुहल्ले वाले उसकी इज़्जत करते हैं। उसे हर वक़्त माँ-बाप की दुआएँ मिल रही हैं।

मुश्किल हालात इंसान के लिए तरक्की की सीढ़ी बन सकते हैं, बशर्ते कि वे मुश्किल हालात उसे हिम्मत हारने न दें, बल्कि उसके अंदर नया जोश पैदा करने का ज़रिया बन जाएँ। ज़िंदगी में असली अहमियत हमेशा सही शुरुआत की होती है। अगर इंसान इतना पीछे से सफ़र शुरू करने को राज़ी हो जाए, जहाँ से हर क़दम उठाना आगे बढ़ना हो, तो कोई भी चीज़ उसे कामयाबी तक पहुँचने से रोक नहीं सकती। ‘25 पैसे’ से अपना सफ़र शुरू कीजिए, क्योंकि ‘25 पैसे’ से सफ़र शुरू करना हर किसी के लिए मुमकिन है और जो सफ़र ‘25 पैसे’ से शुरू किया जाए, वह हमेशा कामयाब रहता है।



हर किसी को अपनी भूमिका निभानी पड़ती है



एक लतीफ़ा है कि एक आदमी इस बात में यक़ीन नहीं रखता था कि ईश्वर ही रोज़ी देने वाला और पालनहार है। उसके साथियों ने उसे समझाने की कोशिश की, लेकिन वह मानने को तैयार नहीं था। आख़िरकार उसने कहा, “मैं इसकी परख करूँगा।”

एक दिन वह बहुत सुबह-सुबह अपने घर से निकला, एक जंगल में चला गया और एक पेड़ पर चढ़कर बैठ गया। उसने कहा, “अगर ईश्वर सचमुच रोज़ी देने वाला है, तो वह यक़ीनन मेरा राशन यहाँ भी भेजेगा।”

वह दिनभर पेड़ पर बैठा रहा, लेकिन उसका खाना ईश्वर की तरफ़ से नहीं आया। नाश्ते का वक़्त निकल गया। फिर दोपहर के खाने का वक़्त निकल गया। उसके बाद शाम हो गई और रात के खाने का वक़्त भी निकल गया, फिर भी उसका खाना नहीं पहुँचा। अब उसे यक़ीन हो गया कि ईश्वर रोज़ी देता है, यह बात ग़लत है।

तभी उसने कुछ आदमियों को आते देखा। वे मुसाफ़िर थे, जो एक पेड़ की तलाश में थे, जिसके नीचे वे रात बिता सकें। चारों तरफ़ देखने के बाद उन्होंने उसी पेड़ को चुना, जिस पर वह आदमी बैठा था।

पेड़ पर बैठा आदमी पूरी तरह चुप रहा, यह देखने के इंतज़ार में कि आगे क्या होता है। मुसाफ़िरों ने डेरा डालने के बाद लकड़ियाँ इकट्ठी कीं। फिर उन्होंने अपना-अपना बोरिया खोला, उसमें से चावल और दाल निकाली और खिचड़ी पकाने लगे। जब खिचड़ी तैयार हो गई, तो उन्होंने उसमें तड़का लगाने का सोचा। उन्होंने तेल गरम किया और उसमें मिर्च डाली। इससे जो धुआँ उठा, वह पेड़ पर बैठे आदमी तक पहुँचा। इससे उसे ज़ोर की छींक और खाँसी आ गई।

उसकी खाँसी की आवाज़ सुनकर मुसाफ़िरों को एहसास हुआ कि कोई पेड़ पर बैठा है। उन्होंने उसे आवाज़ दी, नीचे बुलाया और अपने खाने में शामिल कर लिया।

अगली सुबह वह आदमी खुशी-खुशी अपने घर लौटा। उसने अपने साथियों से कहा, “तुमने जो कहा था, वह सही था, लेकिन तुमने मुझे उसका सिर्फ़ आधा

हिस्सा बताया था। यह सच है कि ईश्वर रोजी देता है, लेकिन वह तुम्हें खाँसने के बाद ही देता है!”

यह कहानी, एक किस्से के जरिए, यह दिखाती है कि इंसान जो कुछ भी पाता है, वह ईश्वर की कृपा से पाता है, लेकिन इसके साथ-साथ उसे अपनी भूमिका भी निभानी पड़ती है। ईश्वर उन्हीं को देता है, जो उसकी योजना में हिस्सा लेते हैं। हालाँकि इंसान की भागीदारी पूरे मामले का बहुत छोटा-सा हिस्सा होती है, फिर भी वह जरूरी होती है। इस दुनिया में इंसान अपनी कोशिश का सबूत दिए बिना कुछ हासिल नहीं कर सकता। यह कुछ भी पाने की परीक्षा है। पाने का हक इसी शर्त पर बनता है, तो फिर अपनी तरफ़ से दिए बिना कोई ईश्वर की दी हुई चीज़ों की सूची में कैसे शामिल हो सकता है?



देरी नहीं



एक मेडिकल कॉलेज के प्रोफ़ेसर मौखिक परीक्षा ले रहे थे। उन्होंने एक छात्र से पूछा, “तुम इनमें से कितनी गोलियाँ एक ऐसे इंसान को दोगे, जिसे दिल का दौरा पड़ा हो?” छात्र ने जवाब दिया, “चार।” एक मिनट बाद छात्र फिर बोला, “प्रोफ़ेसर, क्या मैं अपना जवाब बदल सकता हूँ?” प्रोफ़ेसर ने कहा, “हाँ, ज़रूर।” फिर प्रोफ़ेसर ने अपनी घड़ी देखते हुए कहा, “लेकिन माफ़ कीजिए, आपका मरीज़ 40 सेकंड पहले ही मर चुका है।”

जिस इंसान को दिल का दौरा पड़ा हो, वह बहुत नाज़ुक हालत में होता है। उसे तुरंत पूरी ख़ुराक में दवा देना बेहद ज़रूरी होता है। अगर उसे तुरंत पूरी दवा न मिले, तो अगले पल सिर्फ़ यही बचता है कि उस आदमी को डॉक्टर की जगह गोरकन (grave digger) के हवाले कर दिया जाए।

यही बात इंसानी ज़िंदगी पर भी लागू होती है। कुछ मामले इतने नाज़ुक होते हैं कि उनमें बिना देरी किए सही कार्रवाई की ज़रूरत होती है। ऐसे मौकों पर इंसान को तुरंत ठोस फ़ैसला लेना पड़ता है। अगर इंसान तुरंत फ़ैसला नहीं ले पाया, तो वह पक्के तौर पर फ़ेल हो जाएगा। अगला पल सिर्फ़ उसकी नाकामयाबी का ऐलान ही करेगा, कामयाबी का नहीं।

जिंदगी के सफ़र की मिसाल ट्रेन के सफ़र जैसी है। ट्रेन हमेशा तय वक़्त पर स्टेशन पर आती है, कुछ मिनट रुकती है और फिर आगे चल देती है। ऐसे में सिर्फ़ वही शख्स ट्रेन में अपनी सीट पा सकता है, जो ज़रूरी तैयारी के साथ ठीक वक़्त पर प्लेटफ़ॉर्म पर मौजूद हो, वरना ट्रेन आएगी और उसे लिये बिना ही चली जाएगी।

ठीक इसी तरह मौक़े भी हमेशा अपने तय वक़्त पर आते हैं, लेकिन मौक़े किसी के लिए तरक्की की सीढ़ी बन जाते हैं और किसी के लिए नाकामयाबी का ऐलान।

नामुवाफ़िक़ हालात तरक्की की सीढ़ी बन गए

दिल्ली की एक मस्जिद में एक 'मुल्ला जी' इमाम थे। नमाज़ पढ़ाने के अलावा उनकी एक और ज़िम्मेदारी थी— रोज़ कुरआन का एक पाठ पढ़ाना। इन सभी सेवाओं की सलाह सिर्फ़ इतनी थी— 25 रुपये महीना वेतन, मस्जिद में एक कमरा और दिन में दो वक़्त का खाना।

ये नौजवान मुल्ला जी इस थोड़े-से वेतन पर ही खुश रहने को तैयार थे। उनका ख्याल था कि यह मस्जिद मेरे लिए कम-से-कम एक ठिकाना तो है। यहाँ रहकर मैं अपने बच्चे की पढ़ाई पूरी कर लूँगा। अगर मैं नहीं, तो मेरा बच्चा आगे चलकर एक बेहतर जिंदगी जी पाएगा, लेकिन मस्जिद के लोगों का उनके साथ बरताव अच्छा नहीं था। हर नमाज़ी उन्हें अपना नौकर समझता था। छोटी-छोटी बात पर हर कोई उन पर चिल्ला पड़ता और उनकी बेइज़्जती करता। कोई ज़मीन के फ़र्श के लिए, कोई झाड़ू के लिए, कोई लोटे के लिए, कोई किसी और चीज़ के लिए उन्हें डाँटता रहता। वे पैसे की तंगी तो बरदाश्त कर सकते थे, लेकिन बेइज़्जती उनके बस से बाहर थी।

आख़िरकार उन्होंने एक नया फ़ैसला किया। उन्होंने ठान लिया, “मुझे अपनी जिंदगी हमेशा के लिए मस्जिद से नहीं जोड़नी है, बल्कि अपने लिए कोई दूसरा काम ढूँढ़ना है।” हालाँकि मस्जिद को तुरंत छोड़ना भी ठीक नहीं था, क्योंकि

इमामत छोड़ते ही मस्जिद का कमरा भी छिन जाता और शहर में दूसरी जगह ढूँढना उनके लिए मुमकिन नहीं था।

उन्होंने मस्जिद की इमामत करते हुए ही शहर के तिब्बिया कॉलेज (यूनानी मेडिसीन कॉलेज) में दाखिला ले लिया और चुपचाप दवाई की पढ़ाई शुरू कर दी। उन्हें मेडिकल की पढ़ाई पूरी करने में पाँच साल लग गए। इस दौरान उन्होंने मस्जिद वालों के बुरे बरताव को पहले से भी ज़्यादा समझदारी के साथ बरदाश्त किया। अपने नए फ़ैसले में कामयाब होने के लिए सब्र करना ज़रूरी था। बेइज़्जती भरी ज़िंदगी से छुटकारा पाने के लिए ही उन्हें इस बेइज़्जती भरी ज़िंदगी को कुछ और साल झेलना था।

आखिर वह वक़्त आ ही गया, जब उन्होंने कॉलेज से डॉक्टरी की डिग्री हासिल कर ली। अब उन्होंने मस्जिद वालों का शुक्रिया अदा करते हुए इमामत की नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया और शहर के एक इलाक़े में एक जगह किराए पर लेकर अपनी दवाई की दुकान (क्लीनिक) खोल ली। उनके जीवन के कड़वे तजुर्बों और भविष्य की उनकी लंबी मेहनत ने उन्हें बहुत कुछ सिखा दिया था। उन्होंने बहुत मेहनत और होशियारी से अपना क्लीनिक चलाया। सिर्फ़ छह महीने के अंदर ही उनकी कमाई इतनी बढ़ गई कि उन्होंने एक मकान किराए पर ले लिया और अपने बच्चों के साथ आराम से रहने लगे। एक साल बाद उन्हें स्थानीय मेडिकल कॉलेज में लेक्चरर की नौकरी भी मिल गई। इस तरह उनकी आर्थिक ज़िंदगी और भी मज़बूत हो गई।

कल के मुल्ला जी आज 'डॉक्टर साहब' बनकर जीवन बिता रहे हैं। उन्हें अब इज़्जत भी मिलती है और पैसे की कोई तंगी भी नहीं है।

ज़िंदगी के नामुवाफ़िक़ हालात नई सीढ़ियाँ होते हैं, जिनका इस्तेमाल कर इंसान आगे बढ़ सकता है... बशर्ते कि वह उन बुरे हालात से नफ़रत और शिकायत का सबक़ न सीखे, बल्कि एक सकारात्मक सोच के साथ अपने लिए एक नया भविष्य बनाने में जुट जाए।



बेहतर योजना से



एडमिरल एस.एन. कोहली (भारतीय नौसेना के पूर्व प्रमुख) ने नई दिल्ली में एक भाषण में कहा कि सफलता पूरी तरह से दिमागी बात है। अगर आपके अंदर दृढ़ संकल्प है, तो आपको अपने लक्ष्य तक पहुँचने के रास्ते मिल जाएँगे और अगर संकल्प नहीं है, तो आप यह कहकर बैठ जाएँगे कि यह नहीं हो सकता।

उन्होंने एक उदाहरण देते हुए कहा कि भारत-पाक युद्ध (दिसंबर, 1971) के दौरान भारतीय नौसेना के पास जो युद्धपोत थे, वे मुख्य रूप से बचाव के लिए बनाए गए थे, लेकिन हमने उन्हीं जहाजों को हमलावर भूमिका में इस्तेमाल किया। हमने कराची बंदरगाह पर हमला किया और इतनी शानदार सफलता हासिल की कि दुश्मन हैरान रह गया।

इस सफलता की वजह यह नहीं थी कि हमारे पास बेहतर संसाधन थे। इसकी सिर्फ एक वजह थी— हमने मौजूदा उपकरणों को बुद्धिमानी से इस्तेमाल किया।

एडमिरल कोहली ने जो सिद्धांत बताया, वही सिद्धांत एक व्यक्ति के लिए भी है और वही पूरी क्रौम के लिए भी है। सफलता का राज हमेशा यही होता है कि इंसान के अंदर अपना लक्ष्य पाने का पक्का इरादा हो और उसके बाद वह यह करे कि अपने पास मौजूद संसाधनों को पूरी सावधानी और होशियारी से अपने मकसद को पूरा करने में लगा दे।

इंसान की नाकामयाबी का राज ज्यादातर मामलों में यह नहीं होता कि उसके पास संसाधन नहीं थे, बल्कि यह होता है कि वह अपने मौजूदा संसाधनों का सही इस्तेमाल नहीं कर पाया।

एक गाँव में एक शास्त्र ने पक्का मकान बनाने का फ़ैसला किया। उसके पास सीमित संसाधन थे, मगर उसने अपनी निर्माण-योजना में इस बात का ख्याल नहीं रखा। उसने पूरे मकान की बहुत गहरी नींव खुदवाई। इतनी गहरी, जैसे कि वह कोई क़िला बनाने जा रहा हो।

एक व्यक्ति ने देखकर कहा, “मुझे उम्मीद नहीं है कि उसका मकान पूरा हो पाएगा।” और ऐसा ही हुआ। उसकी ज्यादातर ईंटें और सीमेंट नींव में ही खप गए और ऊपर की मंज़िल बनाने के लिए बहुत कम सामान बचा। मुश्किल से दीवारें

ही खड़ी हो सकीं और छत नहीं डाली जा सकी। उसने बस एक कमरे पर किसी तरह छत डालकर अपने रहने का इंतजाम किया।

अनावश्यक रूप से गहरी नींव में अगर वह ईंट और सीमेंट बरबाद नहीं करता, तो उसके पास इतना सामान था कि मकान पूरी तरह से बन सकता था, लेकिन ग़लत योजना की वजह से उसका मकान ज़मीन के नीचे तो पूरा बन गया, मगर ज़मीन के ऊपर सिर्फ़ एक अधूरा ढाँचा खड़ा रह गया।

नाकामयाबी का कारण

लॉस एंजिल्स में हुए ओलंपिक खेलों (जुलाई-अगस्त, 1984) में भारत की जो टीम गई थी, उसमें कुल 62 लोग थे। जब ये लोग खेल ख़त्म होने के बाद 16 अगस्त, 1984 को नई दिल्ली पहुँचे, तो हवाई अड्डे पर उनका ज़्यादा उत्साह के साथ स्वागत नहीं हुआ। इसकी वजह यह थी कि वे ओलंपिक में कोई मेडल नहीं जीत सके— न सोना, न चाँदी, न काँसा।

इस नाकामयाबी की क्या वजह थी? ‘टाइम्स ऑफ़ इंडिया’ की एक रिपोर्ट (17 अगस्त, 1984) के मुताबिक, लौटने वाले खिलाड़ियों में से एक ने कहा कि वैज्ञानिक और सुव्यवस्थित ट्रेनिंग की कमी भारत के खराब प्रदर्शन की मुख्य वजह थी।

“हमने अपनी पूरी कोशिश की, लेकिन बदकिस्मती से वह काफ़ी नहीं थी। भारतीय टीमों की ट्रेनिंग किसी इवेंट से काफ़ी पहले शुरू होनी चाहिए, सिर्फ़ तीन महीने पहले नहीं।”

उस व्यक्ति ने ओलंपिक खेलों के बारे में जो बात कही, वही बात ज़िंदगी के हर ‘खेल’ के लिए भी सही है। मुकाबले की इस दुनिया में कामयाबी के लिए यह बिलकुल ज़रूरी है कि आप मैदान में उतरें, तो पूरी तैयारी करके उतरें। अगर आप कम तैयारी के साथ ज़िंदगी के मैदान में उतर गए, तो आपके लिए नाकामयाबी के सिवा कुछ नहीं है।

आपकी तैयारी दो नज़रिए से होनी चाहिए। पहला यह कि वह नियमित

(regular) हो और दूसरा यह कि वह ज़माने की माँग के मुताबिक़ हो। अगर आपकी ट्रेनिंग नियमित और सिस्टमेटिक नहीं है, तो आप ज़िंदगी के मंच पर सिर्फ़ एक शायर और वक्ता (speaker) बनकर रह जाएँगे और अगर आपकी ट्रेनिंग वक्त्र की ज़रूरतों के मुताबिक़ नहीं है, तो आपको सिर्फ़ इतिहास के संग्रहालय (museum) में ही जगह मिलेगी। आप चाहे कुछ भी बन जाएँ, लेकिन आप इस वक्त्र की जीवित तस्वीरों में अपने लिए जगह नहीं बना सकते।



जड़ का काम



जॉर्ज बर्नार्ड शॉ, जो अंग्रेज़ी के मशहूर लेखक और विचारक हैं, ने शेक्सपियर से अपनी तुलना करते हुए कहा था— “वह मुझसे कहीं ज़्यादा लंबा आदमी था, लेकिन मैं उसके कंधों पर खड़ा हूँ।”

बर्नार्ड शॉ का जन्म 1856 में हुआ था यानी शेक्सपियर की मौत (1564-1616) के लगभग ढाई सौ साल बाद। शेक्सपियर ने अपने ज़माने में अंग्रेज़ी भाषा को जहाँ पाया था, वहाँ से अपनी मेहनत से उसे और आगे बढ़ाया, यहाँ तक कि विकास के एक नए मुक़ाम पर पहुँचा दिया। शेक्सपियर के बाद सैकड़ों लेखक आए, जिन्होंने इस भाषा को और आगे बढ़ाया। आखिरकार भाषा उस ऊँचे विकसित मुक़ाम पर पहुँच गई, जहाँ से बर्नार्ड शॉ को मौक़ा मिला कि वह अपनी लेखनी की शुरुआत कर सके। अगर उसके पहले के लोगों ने उसके लिए यह ‘कंधा’ मुहैया नहीं कराया होता, तो बर्नार्ड शॉ के लिए यह नामुमकिन था कि वह साहित्यिक विकास के उस ऊँचे मुक़ाम तक पहुँच पाता, जहाँ वह अपनी कोशिशों से पहुँचा।

यही नियम ज़िंदगी के हर मामले में लागू होता है। तभी मुमकिन हो पाता है, जब पहले वाले लोग शुरुआती मंज़िलें पार कर चुके हों, तब बाद में आने वाले लोग आगे की मंज़िलों की तरफ़ अपना सफ़र जारी कर पाते हैं। अगर पहले के लोगों ने अपने हिस्से का काम नहीं किया, तो बाद में आने वालों को आगे से नहीं, बल्कि पीछे से ही अपना सफ़र शुरू करना पड़ेगा, क्योंकि सफ़र हमेशा वहाँ

से शुरू होता है, जहाँ आप खड़े होते हैं, न कि वहाँ से जहाँ आप पहुँचना चाहते हैं। अगर किसी मकान की नीचे की दीवारें अभी बनी ही नहीं हैं, तो उस मकान की ऊपर की मंजिलें किस चीज़ पर टिकेंगी?

एक ऐसी क्रौम, जिसे एक ऐसा अतीत विरासत में मिला हो, जिसने आने वाली पीढ़ियों को सिर्फ़ रोमांटिक कविताएँ और जोशीले भाषण ही दिए हों... जो ठोस काम न करने के नतीजे में बार-बार बरबादी का सामना करती रही हो... जो भावनात्मक भ्रम की 'खुराक' खाते-खाते हकीकत को देखने का स्वभाव ही खो बैठी हो... जिसने मजबूत बुनियाद डाले बिना ही सियासत के खेल में पड़कर अपने मौकों को गँवा दिया हो... जो अपनी उठा-पटक की वजह से तालीम, उद्योग, व्यापार और ज़माने की समझ में दूसरी सभी क्रौमों से पीछे रह गई हो... जिसने माँगों के अभियान और विरोध की सियासत में यह भुला दिया हो कि माँगने से पहले अपनी माँग मनवाने की ताक़त पैदा करना ज़रूरी है... ऐसी पिछड़ी हुई क्रौम की अगली पीढ़ियाँ आगे की मंजिल से अपना सफ़र शुरू नहीं कर सकतीं। उन्हें मजबूरन वहाँ से चलना पड़ेगा, जहाँ से उनके बाप-दादाओं ने अपना रास्ता छोड़ा था।

अगर ऐसे लोग फिर से उन्हीं शब्दों की 'बहादुरी' में लग जाते हैं, जिसमें उनके पूर्ववर्ती लगे हुए थे, तो इसका मतलब सिर्फ़ उस वक़्त को और बरबाद करना होगा, जिसे उनके बाप-दादा पहले ही बड़ी मात्रा में बरबाद कर चुके हैं। असली नतीजे सिर्फ़ ठोस कामों के ज़रिए ही हासिल किए जा सकते हैं। सिर्फ़ शब्दों की बुआई से कामयाबी की फ़सल नहीं काटी जा सकती।

अगर प्रकृति को एक पेड़ उगाना होता है, तो वह बीज से अपना काम शुरू करती है। यह प्रकृति की तरफ़ से इंसान के लिए एक चुपचाप दिया गया सबक़ है— कोई भी शरूब 'बीज' से शुरुआत करके 'पेड़' तक पहुँच सकता है, लेकिन अगर कोई 'पेड़' से शुरुआत करके 'पेड़' तक पहुँचना चाहे, तो ऐसा कभी नहीं होगा।



उलटा पिरामिड



दिल्ली की सबसे ऊँची इमारत विकास मीनार है। जब यह इमारत बनकर तैयार हुई और अखबार में इसकी खबर छपी, तो खबर का पहला शब्द यह था— “शहर की 21 मंज़िला इमारत तैयार हो गई।” ज़ाहिर है कि इमारत इस तरह से नहीं बनी कि उसकी 21वीं मंज़िल सबसे पहले बनकर खड़ी हो गई हो। इमारत का निर्माण-कार्य उसकी नींव से शुरू हुआ। फिर कई सालों में काम बढ़ते-बढ़ते ऊपर की मंज़िल तक पहुँचा, लेकिन खबर की सजावट में ‘21 मंज़िल’ वाला शब्द सबसे पहले आया।

अखबारों में खबर लिखने का यही तरीका चलन में है। इस तरीके को पत्रकारिता की भाषा में ‘इनवर्टेड पिरामिड’ यानी ‘उलटा पिरामिड’ कहते हैं यानी खबर को उसके असली क्रम के साथ बयान करने के बजाय उलटे क्रम के साथ बयान करना। कोई भी घटना जो हमारी ज़िंदगी में घटती है, वह एक स्वाभाविक क्रम से घटती है। उसकी एक शुरुआत होती है। फिर बीच के हिस्से सामने आते हैं। उसके बाद उसका आखिरी और सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। यह घटना का स्वाभाविक क्रम है, लेकिन एक अखबारी रिपोर्टर को मामले के इस असली क्रम से मतलब नहीं होता। उसके सामने सिर्फ़ यह होता है कि तुरंत कोई बड़ी बात कहकर पाठकों का ध्यान अपनी ओर खींच ले।

इसीलिए जब वह खबर को लिखता है, तो वह उसके क्रम को उलट देता है। असली घटना का जो हिस्सा बिलकुल आखिर में आया था, उसे वह शुरुआत में रख देता है और उसके बाद पूरी खबर बयान करता है यानी ‘पिरामिड’ के बनने का क्रम खबर का रूप लेते समय उलट जाता है। अखबारी रिपोर्टर ऐसा इसलिए करता है, ताकि वह पहले ही चरण में पाठकों का ध्यान खींच सके।

‘उलटा पिरामिड’ अखबार के पन्नों पर तो बन सकता है, लेकिन ज़मीन पर नहीं बन सकता। ठीक इसी तरह कम्युनिटी (समुदाय) के भविष्य का क़िला भी उलटी दिशा से सिर्फ़ शब्दों की दुनिया में खड़ा किया जा सकता है, हकीकत की दुनिया में वह मौजूद नहीं हो सकता। अगर आपको मिल्लत की सिर्फ़ ज़ुबानी मुहिम चलानी है, तो वह एक ‘युग-निर्माण’ वाले ऐलान या एक ‘इतिहास रचने’

वाली बैठक के ज़रिए आखिरी मंज़िल से भी शुरू हो सकती है, लेकिन कोई असली निर्माण उसके बिना मुमकिन नहीं है कि पहले चरण से अपने काम की शुरुआत की जाए।

शब्द बोलने वाला व्यक्ति अपने पहले ही वाक्य में आखिरी मंज़िल पर छलाँग लगाकर यह कह सकता है, “शहर की बीस मंज़िला इमारत तैयार हो गई!” बोलने वाले के लिए यह मौक़ा है कि वह अपने ‘काम’ को आखिरी चरण से शुरू करे, लेकिन जो व्यक्ति एक असली घटना को जन्म देना चाहता हो, उसके लिए ज़रूरी है कि वह अपना काम शुरुआत से शुरू करे; वह आखिरी मंज़िल से अपनी यात्रा का आरंभ नहीं कर सकता।

शुरुआत नीचे से

एक आदमी, जिसकी दाढ़ी सफ़ेद हो चुकी थी, एक भर्ती कार्यालय में गया। उसने कहा, “मुझे एक सिपाही के तौर पर भर्ती कर लीजिए।”

“लेकिन तुम्हारी उम्र क्या है?” सार्जेंट ने पूछा।

“बासठ साल।”

“तुम अच्छी तरह जानते हो कि सिपाही बनने के लिए बासठ साल की उम्र बहुत ज़्यादा है।”

“सिपाही के लिए यह उम्र ज़्यादा हो सकती है,” आदमी ने कहा, “लेकिन क्या आपको किसी जनरल की ज़रूरत नहीं है?”

यह क्रिस्सा एक अंग्रेज़ी मैगज़ीन (मई, 1982) में छपा था और इसका टाइटल मज़ाक़िया अंदाज़ में यह रखा गया था— ऊपर से शुरुआत (Starting at the top)।

अगर कोई आदमी अपनी फ़ौजी जिंदगी की शुरुआत जनरल के पद से करना चाहे, तो वह ऐसा कभी नहीं कर सकता। आम जिंदगी का भी यही हाल है। यहाँ कोई छलाँग नहीं लगा सकता। जिस तरह एक पेड़ की शुरुआत बीज से

होती है, उसी तरह जिंदगी की तामीर भी शुरूआती बिंदु से होती है। आप अपनी जिंदगी की शुरूआत आखिरी मंज़िल से नहीं कर सकते।

व्यापार पैसा लगाने से शुरू होता है, मुनाफ़ा कमाने से नहीं। डॉक्टरी की पढ़ाई मेहनत से शुरू होती है, बाज़ार में शानदार बोर्ड लगाने से नहीं। मकान की तामीर नींव से शुरू होती है, छत डालने से नहीं। खाने की शुरूआत फ़सल बोने से होती है, डिनर टेबल लगाने से नहीं। फ़ैक्टरी मशीनें लाने से शुरू होती हैं, तैयार माल बेचने से नहीं वगैरह।

ठीक इसी तरह सामूहिक मामलों में शुरूआत यहाँ से होती है कि लोगों के अंदर एक मक़सद की समझ पैदा की जाए। उन्हें मेहनती और ईमानदार बनाया जाए, उनमें सन्न और एकता की क्राबिलियत पैदा की जाए।

अगर राष्ट्र के लोगों में 'काफ़ी हद तक' इन क्राबिलियतों को विकसित किए बिना ही ठोस क़दम उठाना शुरू कर दिया जाए, तो इसका नतीजा सिर्फ़ नाकामयाबी ही होगा। इस तरह के राष्ट्र-निर्माण की मिसाल बिलकुल ऐसी ही होगी, जैसे दीवार बनाए बिना ही छत बनाने की कोशिश करना। ऐसी छत हमेशा उसे उठाने वाले के सिर पर ही गिरती है। ठीक इसी तरह लोगों को तैयार किए बिना ही राष्ट्रीय क़दम उठाना सिर्फ़ नाकामयाबी और बरबादी का कारण बनता है।



बड़ी छलाँग कब?



जुलाई, 1969 में अमेरिकी अंतरिक्ष यात्री नील आर्मस्ट्रॉंग ने पहली बार चाँद पर क़दम रखा था। जब वह अपने अंतरिक्ष यान के साथ चाँद पर उतरा, तो अमेरिका के मिशन कंट्रोल को उसके ये शब्द मिले— “यह एक इंसान के लिए एक छोटा क़दम है, लेकिन इंसानियत के लिए एक बहुत बड़ी छलाँग है।”

आर्मस्ट्रॉंग और उसके दो साथी अमेरिका के 30 सबसे बेहतरीन अंतरिक्ष यात्रियों में से चुने गए थे। उनमें वे ख़ास बातें बहुत ज़्यादा मात्रा में मौजूद थीं, जो उस मुश्किल ऐतिहासिक मिशन के लिए ज़रूरी थीं... जैसे उड़ान में असाधारण कुशलता, दिमागी ताक़त, जानकारी निकालने की क्षमता और बर्फ़ जितना ठंडा दिमाग़ रखते हुए भी चुनौती को बिना डर के स्वीकार करना।

इसके अलावा उन्हें बहुत कठिन ट्रेनिंग के कोर्स से गुजरना पड़ा। मिसाल के तौर पर, वे लंबे समय तक गहरे पानी में रहे, ताकि वे बिना वजन वाली हालत के आदी हो सकें। उन्होंने तरह-तरह की संभावित इमरजेंसी का अभ्यास किया। उन्होंने खगोल विज्ञान, अंतरिक्ष विज्ञान और रॉकेट उड़ान के कोर्स को पढ़ा। उन्होंने अंतरिक्ष कंप्यूटर और चाँद की भौतिकी का अध्ययन किया।

उनका 3100 टन का अपोलो-11 एक विशालकाय दैत्य जैसा लगता था। यह 36 मंजिला इमारत जितना ऊँचा था। इसके अंदर 80 लाख पुर्जे थे और 91 इंजन लगे हुए थे। सबसे ऊपर वह छोटा-सा यान कोलंबिया था, जिसके अंदर अंतरिक्ष यात्रियों को बैठकर अपनी यात्रा पूरी करनी थी।

अंतरिक्ष यान ऊपर उठा और ढाई घंटे तक धरती का चक्कर लगाया। उसके बाद उसकी रफ्तार 403 मील प्रति मिनट हो गई। 3000 मील की ऊँचाई पर पहुँचकर कोलंबिया अलग हो गया। यह यान नीचे से ऊपर तक पुर्जों से भरा हुआ था। अंतरिक्ष यात्रियों के बैठने के लिए मुश्किल से इतनी जगह थी, जितनी एक टैक्सी में होती है।

आखिरकार अंतरिक्ष यात्री चाँद पर उतर गए। उन्होंने वहाँ से 46 पाउंड मिट्टी इकट्ठी की। उन्होंने चाँद की सतह पर पाँच लाख पाउंड वजन के उपकरण छोड़े। दूसरी चीजों के साथ-साथ उन्होंने चाँद की सतह पर अपने पैरों के निशान भी छोड़े, जो वहाँ लगभग पाँच लाख साल तक बने रहेंगे।

इतनी ज़्यादा तैयारियों के बाद ही वह छोटा-सा कदम उठाया जा सका, जिसका नतीजा एक बहुत बड़ी छलाँग था।



शुरुआती तैयारी



टेक्सटाइल इंडस्ट्री में एक शब्द इस्तेमाल होता है, जिसे 'प्री-ट्रीटमेंट' कहते हैं। इसका मतलब है कपड़े को ज़रूरी प्रक्रियाओं से गुज़ारकर इस लायक बनाना कि वह अगले चरण के काम को झेल सके।

अगर कपड़े को रँगना है, तो ज़रूरी है कि पहले उसे अच्छी तरह साफ़ किया जाए। उसे ऐसा बनाया जाए कि वह रंग को पूरी तरह सोख सके। अगर वह पूरी

तरह साफ़ नहीं है या उसमें रंग सोखने की क्षमता पैदा नहीं की गई है, तो उस पर रंग अच्छी तरह नहीं चढ़ेगा। अनुमान लगाया गया है कि रंगे हुए कपड़ों में 70 फ़ीसद खामियाँ सिर्फ़ इसलिए होती हैं, क्योंकि उन पर प्री-ट्रीटमेंट ठीक से नहीं किया गया था।

शुरुआती तैयारी का यह सिद्धांत इंसानी मामलों के लिए भी उतना ही ज़रूरी है, जितना कपड़े के मामले के लिए। अगर हम अपने क्रदम का अच्छा नतीजा देखना चाहते हैं, तो ज़रूरी है कि क्रदम उठाने से पहले हम संबंधित तैयारियाँ भी पूरी कर लें। बिना ज़रूरी शुरुआती तैयारी के जो क्रदम उठाया जाएगा, उसका अंत उस कपड़े जैसा होगा, जिसे बिना प्री-ट्रीटमेंट के रंगाई के चरण में डाल दिया जाए, बल्कि शायद उससे भी बुरा।

अगर आप उच्च स्तरीय पत्रकारिता कायम करना चाहते हैं, तो ज़रूरी है कि आपके पास उद्योग हो, क्योंकि उद्योग ही अखबारों को खुराक देता है। जिस क्रौम के पास उद्योग नहीं, उसके पास पत्रकारिता भी नहीं।

अगर आप चुनाव के मौक़े पर अपने वोटों की ताक़त इस्तेमाल करना चाहते हैं, तो ज़रूरी है कि इससे पहले आपके बीच एकता कायम हो चुकी हो। अगर आपकी क्रतारों में एकता नहीं है, तो आपके वोट बिखर जाएँगे; वे कोई राजनीतिक ताक़त नहीं बना पाएँगे।

अगर आप कोई सामूहिक पहल करना चाहते हैं, तो ज़रूरी है कि आपके बीच सामूहिक नेतृत्व हो यानी एक ऐसा सरदार, जिसकी बात सब लोग मानते हों। सामूहिक नेतृत्व बनाए बिना सामूहिक पहल करना सिर्फ़ नाक़ामयाबी के गड्ढे में कूदना है।



क्रौम का पेड़ उगाने के लिए



अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति जॉन एफ. कैनेडी ने एक बार ल्याउटे का हवाला देते हुए एक क्रिस्सा सुनाया था। उनके शब्द थे—

“मैंने एक बार अपने माली से एक पेड़ लगाने को कहा। माली ने आपत्ति करते हुए कहा कि यह पेड़ धीरे-धीरे बढ़ता है और इसे पूरा

बनने में सौ साल लग जाएँगे। मैंने जवाब दिया— ऐसे में तो हमें एक पल भी नहीं गँवाना चाहिए; इसे आज दोपहर बाद ही लगा दो...।”

—चार्टर्ड अकाउंटेंट (सप्लीमेंट); नई दिल्ली; जून, 1979

क्रौम की तामीर और तरक़्की एक लंबी अवधि वाली योजना है। व्यक्तिगत और सामूहिक, दोनों स्तरों पर अनगिनत कारण मुहैया कराने के बाद वह वक्रत आता है, जब क्रौम अपनी पूरी शान के साथ जी उठती है और ज़मीन पर एक ताक़तवर क्रौम के तौर पर अपनी जगह बना लेती है, लेकिन जब इस तरह की कोई योजना पेश की जाती है, तो लोग तुरंत कह देते हैं— “यह तो बहुत लंबी योजना है। इसे पूरा होने में सौ साल लग जाएँगे।”

ऐसे लोगों को हमारा जवाब सिर्फ़ एक ही है— “अगर ऐसा है, तो हमें एक पल भी बरबाद नहीं करना चाहिए। हमें आज ही, पहले मौक़े पर, अपना ‘पेड़’ लगा देना चाहिए।”

एक ताक़तवर पेड़ हमेशा ‘सौ साल’ में ही तैयार होता है, इसलिए जो शाख्स एक ताक़तवर पेड़ का मालिक बनना चाहता है, उसके पास सौ साल की बाग़वानी के सिवा कोई चारा नहीं है। अगर वह ऐसा करने के बजाय सड़कों पर निकलकर ‘पेड़ सत्याग्रह’ शुरू कर दे या किसी मैदान में जमा होकर ‘बाग़-ए-मिल्लत जिंदाबाद’ के नारे लगाने लगे, तो यह एक बेवक़ूफी-भरी हरकत होगी, जिससे न कोई पेड़ उगेगा और न ही वह बाग़वान बन पाएगा। इसका एकमात्र नतीजा यह होगा कि वह उस वक़्त को और बरबाद कर देगा, जो उसे पेड़ उगाने के लिए ईश्वर की तरफ़ से मिला था।

अगर आपके पास मक़ान न हो और आप सड़क पर खड़े होकर फुलझड़ियाँ छोड़ने लगें, तो इससे आप शहर में एक मक़ान के मालिक नहीं बन जाएँगे। ठीक उसी तरह अगर कुछ लोग मिल्लत का नाम लेकर राजनीतिक करतब दिखाने लगें, तो ऐसे करतबों से यह नहीं हो सकता कि ज़मीन पर मिल्लत का क़िला खड़ा हो जाए। शेर-ओ-शायरी की दुनिया में तो बस तुकबंदी के ज़रिए ही बड़े-बड़े इंक़लाब लाए जा सकते हैं। एक वक्ता अपने जोशीले शब्दों से किसी पंडाल को तुरंत शानदार कामयाबियों के आसमान पर पहुँचा सकता है, लेकिन एक असली घटना को जन्म देना इतने धैर्य की परीक्षा वाला काम है, जो बिना लंबी योजना और लगातार मेहनत के मुमकिन नहीं है।



सीढ़ी, न कि लिफ्ट



“मैं अपने मौजूदा मुक़ाम तक सीढ़ी से चढ़कर पहुँचा हूँ, लिफ्ट से नहीं,” एक दर्ज़ी मास्टर ने कहा, “एक अच्छा कोट बनाना कोई आसान काम नहीं है। कोट बनाने की पूरी प्रक्रिया इतनी जटिल है कि बिना काफ़ी जानकारी और तजुर्बे के कोई भी इंसान इसे ठीक से नहीं कर सकता। मैंने इस रास्ते में एक उम्र लगा दी है। उसके बाद ही यह मुमकिन हो सका है कि मैं शहर में सिलाई की एक दुकान कामयाबी से चला सकूँ।”

अपनी कहानी सुनाते हुए दर्ज़ी मास्टर ने बताया कि पहले उसने एक मास्टर दर्ज़ी के यहाँ शागिर्दी की। वहाँ पाँच साल तक वह कोट की सिलाई और कटाई का काम सीखता रहा। पाँच साल की लगातार मेहनत के बाद वह इतना क़ाबिल हो गया कि एक आम कोट सी सकता था, लेकिन जब उसने अपनी दुकान खोली और काम शुरू किया, तो पता चला कि अभी भी बहुत सारी दिक्कतें हैं, जिन्हें सुलझाना बाक़ी है। हर आदमी की बनावट अलग होती है और कोट पहनने वाले शाख्स के अपने जिस्म के हिसाब से फ़िट होना चाहिए। इसलिए जो कोट वह बनाता, उसमें अकसर कोई-न-कोई कमी निकल आती, क्योंकि उसमें ग्राहक की अपनी जिस्मानी बनावट के हिसाब से कुछ फ़र्क़ हो जाता और कोट ठीक से फ़िट नहीं आता। इस तजुर्बे के बाद वह इस नतीजे पर पहुँचा कि इंसानी जिस्म की बनावट (एनाटॉमी) की अच्छी समझ के बिना उसके लिए एक अच्छा कोट बनाना नामुमकिन है।

वह एक ग्रेजुएट था। उसने एनाटॉमी की पढ़ाई शुरू कर दी और इंसानी जिस्म की बाहरी संरचना के बारे में पूरी जानकारी हासिल की। इस पढ़ाई में उसे और पाँच साल लग गए। इस तरह दस साल की मेहनत के बाद यह मुमकिन हुआ कि वह हर शाख्स के जिस्म के साथ एकदम सही बैठने वाला कोट बना सके। यहाँ तक कि उन लोगों का भी, जिनमें कुबड़ापन या कोई और जिस्मानी अंतर होता है। ऐसे लोगों का कोट भी वह इस तरह बना सकता है कि कहीं भी कोई सिलवट या गड़बड़ी न हो। हर लिहाज़ से एक मुनासिब कोट बनाने के लिए बहुत सारी बातें ख़ुद-ब-ख़ुद सीखनी पड़ती हैं, क्योंकि हर चीज़ का नाप नहीं लिया जा सकता।

अगर एक दर्जी मास्टर की जानकारी सिर्फ़ उन्हीं जिस्म के हिस्सों तक सीमित है, जिनका वह नाप लेता है, तो वह कभी एक क्वालिटी वाला कोट बनाने में कामयाब नहीं हो सकता।

दर्जी मास्टर ने अपने हुनर के बारे में इस तरह की और भी कई बातें बताईं और मुझे ऐसा लगा, जैसे मैं 'मिल्लत की तामीर' (राष्ट्र-निर्माण) के विषय पर किसी तजुर्बेकार इंसान का भाषण सुन रहा हूँ। यह सच्चाई है कि हमारी जो आर्थिक और सामाजिक मुश्किलें हैं, उनमें वही तरीका कारगर है, जिससे उस दर्जी मास्टर ने कामयाबी हासिल की यानी लिफ़्ट के बजाय सीढ़ी से चढ़ना। जिंदगी में कोई छलाँग नहीं है। यहाँ ऐसा कोई बटन नहीं है कि आप उसे दबाएँ और अचानक एक लिफ़्ट चल पड़े और आपको ऊपर पहुँचा दे। यहाँ तो क्रदम-दर-क्रदम ही सफ़र तय किया जा सकता है। आप 'सीढ़ी' के ज़रिए अपनी जिंदगी को कामयाब बना सकते हैं और फिर एक लिफ़्ट खरीद सकते हैं, मगर 'लिफ़्ट' के ज़रिए अपनी जिंदगी को कामयाब नहीं बना सकते।

तंगी में चौड़ाई

एक आदमी ने शहर में चश्मे की एक दुकान खोली। चश्मा बेचने वालों को अपने ग्राहकों की सुविधा के लिए आँखों के टेस्ट का इंतज़ाम भी करना होता है, ताकि इंसान एक ही जगह अपनी आँखों की जाँच करा ले और वहीं से चश्मा भी ले ले, लेकिन इस आदमी की दुकान टेस्ट की ज़रूरत के लिए बहुत छोटी थी। आँख के टेस्ट में दूर की नज़र जाँचने के लिए असल में 18 फ़ीट के फ़ासले से पढ़ाया जाता है, जबकि इस दुकान में सिर्फ़ उसकी आधी जगह थी यानी ग्राहक को बैठने की जगह से लेकर दीवार तक का फ़ासला मुश्किल से 9 फ़ीट बनता था।

“हम 9 फ़ीट में शीशा लगाकर अठारह फ़ीट कर लेंगे,” दुकानदार ने अपने दोस्त के सवाल के जवाब में कहा। दोस्त ने उससे पूछा था कि तुम इतनी छोटी दुकान में आँखों के टेस्ट का इंतज़ाम कैसे करोगे? दुकानदार ने बताया कि पढ़ने

वाले अक्षरों का चार्ट जिस दीवार पर लटका हो, उसके ठीक सामने वाली दीवार पर अगर एक आईना लगा दिया जाए और जिसका टेस्ट हो रहा है, उसे असली चार्ट के बजाय आईने में दिखने वाले प्रतिबिंब को पढ़ने के लिए कहा जाए, तो पढ़ने वाले शख्स और पढ़ी जाने वाली चीज़ के बीच का फ़ासला अपने आप दोगुना हो जाता है। आदमी की नज़र पहले 9 फ़ीट का फ़ासला तय करके आईने तक जाती है। फिर आईने की मदद से उसकी नज़र और 9 फ़ीट का फ़ासला तय करके चार्ट तक पहुँचती है। इस तरह कुल अठारह फ़ीट हो जाते हैं। दुकानदार ने ऐसा ही किया। छोटी दुकान के बावजूद उसके यहाँ आँखों के टेस्ट का वैसा ही इंतज़ाम हो गया, जैसा बड़ी दुकानों में होता है।

यही नियम ज़िंदगी के हर मामले में लागू होता है। अगर आपके पास मौक़े कम हों, अगर आपके लिए फैलने की जगह सीमित हो, तो निराश होने की ज़रूरत नहीं है। आप अपनी अक्ल का इस्तेमाल करके अपने '9 फ़ीट' को '18 फ़ीट' बना सकते हैं।

अगर आपका मकान छोटा है, तो आप दो मंज़िला बनाकर उसे चौड़ा कर सकते हैं। अगर आपके पास पूँजी कम है, तो ईमानदारी का सबूत देकर इसकी भरपाई कर सकते हैं। अगर आपकी डिग्री साधारण है, तो अच्छे व्यवहार के ज़रिए उसे ज़्यादा कारगर बना सकते हैं। अगर आपके पास लड़कर जीतने के मौक़े नहीं हैं, तो चतुराई का तरीक़ा अपनाकर अपने विरोधी को क़ाबू में कर सकते हैं। अगर आपको राजनीतिक ताक़त में कम हिस्सा मिला है, तो आर्थिक मैदान में तरक्की करके खुद को आगे ले जा सकते हैं। अगर आप तादाद के लिहाज़ से अल्पसंख्यक (minority) हैं, तो एकता और संगठन बढ़ाकर आप बहुमत की बराबरी कर सकते हैं।

हर छोटी 'दुकान' बड़ी दुकान बन सकती है। कोई भी दुकान तभी तक छोटी है, जब तक दुकानदार ने उसे बढ़ाने वाली अक्ल का इस्तेमाल नहीं किया है। बढ़ाने वाली अक्ल को इस्तेमाल करने के बाद इस दुनिया में कोई दुकान छोटी नहीं रह जाती।



इतनी अक़ल जानवर को भी होती है



कुरआन में आदम के दो बेटों का एक क्रिस्सा बयान हुआ है। एक भाई ने गुस्से में आकर दूसरे भाई को मार डाला। यह किसी इंसान के क़त्ल का पहला वाक़या था। क़ातिल की समझ में नहीं आ रहा था कि वह अपने भाई की लाश का क्या करे। उस वक़्त ईश्वर ने एक कौआ भेजा। उसने एक मुर्दे कौए को उसके सामने 'दफ़न' किया। उसने अपनी चोंच और पंजों से ज़मीन खोदी, मुर्दे कौए को उसमें रखा और ऊपर से मिट्टी डाल दी। यह देखकर क़ातिल बोला, "अफ़सोस है मुझ पर! मैं इस कौए जैसा भी नहीं हो सका कि अपने भाई की लाश को ज़मीन में छिपाने की तरकीब सोचता।"

यह इंसानी नस्ल के शुरुआती ज़माने का वाक़या है। उस वक़्त से लेकर आज तक ईश्वर यही कर रहा है कि वह जानवरों में से किसी जानवर को 'भेजकर' हमें हमारी ज़िंदगी के बारे में सबक़ देता है, मगर इंसान मुश्किल से ही ऐसा करता है कि वह इस तरह के वाक़यात से अपने लिए सबक़ ले। यहाँ एक परिंदे का क्रिस्सा बताया जा रहा है, जिसमें हमारे आज के लिए एक बहुत बड़ा सबक़ है।

एक अबाबील (एक प्रकार की चिड़िया) ने छत की लकड़ी में घोंसला बनाया। घोंसला मिट्टी का था। नर और मादा दोनों थोड़ी-थोड़ी गीली मिट्टी अपनी चोंच में लाते और उससे घोंसले की तामीर करते। लगातार मेहनत के बाद कुछ दिनों में घोंसला तैयार हो गया। फिर अबाबील ने उसके अंदर अंडे दे दिए।

एक दिन अबाबील का जोड़ा घोंसले पर बैठा हुआ था। चार अंडों और दो अबाबीलों का बोझ घोंसले के लिए बरदाश्त से बाहर साबित हुआ और वह लकड़ी से टूटकर नीचे गिर पड़ा। अंडे टूटकर बरबाद हो गए। इसके बाद देखने वालों ने देखा कि दोनों अबाबीलें पूरी छत में चारों तरफ़ उड़ रही थीं। वे छत की लकड़ियों में अपने नए घोंसले के लिए ज़्यादा सुरक्षित जगह तलाश कर रही थीं। आखिरकार उन्होंने अपने लिए एक ऐसी जगह ढूँढ ली, जो ऊबड़-खाबड़ होने की वजह से घोंसले को ज़्यादा अच्छी तरह सँभाल सकती थी।

पहली बार अबाबीलों ने सिर्फ़ मिट्टी का घोंसला बनाया था। अब दूसरी बार उन्होंने जो मिट्टी लानी शुरू की, उसमें घास मिली हुई थी। पहले तजुर्बे के बाद

उन्होंने साफ़ गारे को नाकाफ़ी पाया, तो उन्होंने घास वाले गारे से घोंसला बनाना शुरू किया यानी अगर पहले सादी मिट्टी थी, तो अब 'री-इन्फ़ोस्टर्ड' (मज़बूत) मिट्टी घोंसले के लिए चुनी गई। नतीजा ज़ाहिर था। दूसरा घोंसला ज़्यादा मज़बूत और जमा हुआ था। वह अपनी जगह पर क़ायम रहा और उसमें जो अंडे दिए गए, वे महफ़ूज़ रहे, यहाँ तक कि उनमें से बच्चे निकल आए। बच्चे अपनी माँ के साथ उड़कर आसमान में गायब हो गए।

यह वाक़या ख़ुरशीद अहमद बिस्मिल साहब (जन्म : 1947) के अपने मकान का है, जो थाना मंडी (राजौरी) के रहने वाले हैं। उन्होंने 19 सितंबर, 1979 को अपना वही कमरा दिखाया और मुझसे यह क्रिस्सा बयान किया।

अगर किसी जानवर की पहली कोशिश पहली ही बार में नाकाम हो जाए, तो दूसरी कोशिश से पहले वह यह पता करता है कि उसके काम में कौन-सी कमी थी, जिसने उसकी योजना को नाकाम बना दिया और फिर एक ज़्यादा बेहतर योजना के तहत दूसरी बार निर्माण करता है, मगर हमारा 'आशियाना' गिरता रहता है और कभी हमें यह एहसास नहीं होता कि हम अपनी कमी को पहचानें।



व्यक्तिगत स्तर पर



एक आदमी साइकिल पर सफ़र कर रहा था। अचानक उसकी साइकिल का ब्रेक जाम हो गया। वह उतरकर एक साइकिल मिस्त्री के पास गया। सफ़र करने वाले का ख़्याल था कि मिस्त्री उसी जगह हाथ लगाएगा, जहाँ ब्रेक जाम हुआ था और उसे ठीक कर देगा, लेकिन मिस्त्री ने हथौड़ा लिया और बिलकुल दूसरी जगह पर ठोकना शुरू कर दिया। साइकिल वाला अपनी हैरानी का इज़हार भी नहीं कर पाया था कि मिस्त्री ने कहा, "बस, ठीक है। ले जाइए।" अगले ही पल साइकिल अपने सवार को लेकर दोबारा सड़क पर दौड़ रही थी।

यही हाल इंसानी जिंदगी का भी है। अकसर ऐसा होता है कि इंसान बाहरी वजहें देखकर समझ लेता है कि ख़राबी यहाँ है। वह उसी जगह ठोक-पीट शुरू कर देता है, लेकिन ख़राबी दूर नहीं होती। इसकी वजह यह है कि ख़राबी की असली

जड़ कहीं और होती है और जब तक असली जड़ को नहीं सुधारा जाता, खराबी ठीक नहीं हो सकती।

मिसाल के तौर पर, मान लीजिए कि क्रौम में एकता नहीं है। उस पर ज़ुल्म हो रहा है। लोग आपसी झगड़ों की वजह से बाहर वालों से मिल जाते हैं। उनकी कोई सामूहिक आवाज़ नहीं है वगैरह-वगैरह। इन नज़ारों को देखकर किसी शास्त्र के अंदर कुछ करने का जज़्बा पैदा होता है और वह फ़ौरन सभाओं और कॉन्फ़्रेंस के चक्कर में पड़ जाता है। उसे यह काम सही लगता है कि क्रौम के लोगों को इकट्ठा करके जोशीले भाषण दिए जाएँ। प्रस्ताव (resolution) पास किए जाएँ वगैरह, लेकिन यह समस्या का हल नहीं है। यह तो लक्षणों पर मेहनत करने जैसा है, जबकि असली हल तो यह है कि वजह पर मेहनत की जाए। ज़िंदगी में अकसर ऐसा होता है कि समस्या दिखती कहीं और है और उसके हल का राज़ छुपा होता है कहीं और।

जैसे कि अगर क्रौम में एकता नहीं है, तो इसकी वजह हर व्यक्ति की अलग-थलग सोच होगी। ऐसी हालत में आप 'एकता कॉन्फ़्रेंस' करके लोगों में एकता पैदा नहीं कर सकते। पहले हर एक व्यक्ति के स्तर पर एकता पैदा कीजिए। उसके बाद क्रौम के स्तर पर अपने आप एकता बन जाएगी।

इस दुनिया का नियम यह है कि यहाँ 'फल' पर मेहनत करने वाले को फल नहीं मिलता। यहाँ फल सिर्फ़ उसी व्यक्ति को मिलता है, जिसने 'बीज' पर मेहनत करने का सबूत दिया हो।

सही दिशा में चलिए



एक पश्चिमी विचारक ने कहा है— “तुमने कामयाबी की राह की ज़्यादातर रुकावटें तभी हटा दी हैं, जब तुमने सिर्फ़ हरकत और सही दिशा में हरकत के फ़र्क़ को समझ लिया है।”

हर सक्रियता ऊपर से देखने में एक जैसी लगती है। चाहे आप अपनी गाड़ी मंज़िल की तरफ़ चला रहे हों या मंज़िल से उलटी दिशा में दौड़ा रहे हों, दोनों हालात में देखने वालों को गाड़ी एक जैसी चलती हुई नज़र आएगी, लेकिन दोनों में इतना बड़ा फ़र्क़ है कि एक हरकत हर पल आपको मंज़िल के करीब ले जा रही होगी और दूसरी हरकत हर पल मंज़िल से दूर।

अलग-अलग ज़िंदगी का मामला हो या सामूहिक ज़िंदगी का, हमेशा यह जरूरत होती है कि हालात और संसाधनों का जायजा लेकर उसके मुताबिक सही दिशा में सफ़र शुरू किया जाए। ऐसा सफ़र देर-सवेर मंज़िल पर पहुँच ही जाता है। इसके उलट अगर बिना सोचे-समझे कोई दौड़ शुरू कर दी जाए, तो ऐसी दौड़ का अंत सिर्फ़ नुक़सान और बरबादी में ही होगा।

ज़्यादातर लोग ऐसा करते हैं कि बिना सोचे-समझे कोई काम शुरू कर देते हैं या कुछ देर के ज़ब्त के असर में कोई कार्रवाई करने लगते हैं और फिर जब उसका कोई नतीजा नहीं निकलता, तो दूसरों की शिकायत करते हैं कि उनकी ज़िद और पक्षपात की वजह से ऐसा हुआ। हालाँकि अगर वे गहराई से सोचें, तो इसकी वजह सिर्फ़ यह थी कि उन्होंने कुछ-न-कुछ करने को ही काफ़ी समझ लिया। जबकि असली काम तो वही है, जो सही तरीक़े से और सही दिशा में किया जाए, न कि सही-ग़लत का ख़याल किए बिना बस हाथ-पैर चलाना शुरू कर देना।

अकसर ऐसा होता है कि इंसान अपनी नाकामयाबी के लिए दूसरों को दोष देता है। हालाँकि दूसरों को उसके खिलाफ़ जो मौक़ा मिला, वह सिर्फ़ इसलिए मिला, क्योंकि उसने ग़लत दिशा से अपना सफ़र शुरू किया था। अगर उसने सही दिशा से अपना सफ़र शुरू किया होता, तो ऐसी नौबत ही नहीं आती कि कोई उसके रास्ते में रुकावट बन पाता और उसके कामयाबी के सफ़र को नाकामयाबी और बरबादी का सफ़र बना देता।



बड़ा काम करने वाले



दुनिया में हमेशा दो तरह के इंसान होते हैं। पहली क्रिस्म का इंसान वह है कि वह जो कुछ भी करता है, उसकी कीमत बढ़ाकर वसूल करना चाहता है। दूसरी क्रिस्म का इंसान वह है कि वह जो कुछ करता है, उसे भूल जाता है। अगर उसे अपने किए का कोई बदला न भी मिले, तो भी वह अपने दिल में कोई शिकायत नहीं रखता। उसकी तसल्ली का साधन यह है कि वह अपने मक़सद में लगा हुआ है, न कि यह कि उसे अपने काम का तुरंत फल मिल रहा है।

पहली क्रिस्म के लोग भी इंसान हैं और दूसरी क्रिस्म के लोग भी इंसान हैं, लेकिन दोनों में इतना ज्यादा फ़र्क है कि बाहरी रूप के अलावा दोनों में कोई चीज़ एक जैसी नहीं है। पहली क्रिस्म के लोग सिर्फ़ बाज़ार चलाते हैं, जबकि दूसरी क्रिस्म के लोग इतिहास बनाते हैं।

यही दूसरी क्रिस्म के लोग इंसानियत की असली पूँजी हैं। इसकी वजह यह है कि कोई भी बड़ा काम करने के लिए हमेशा यह ज़रूरत होती है कि बहुत-से लोग मिलकर काम करें। जब इस तरह लोग जुटते हैं, तो किसी को कम मिलता है और किसी को ज्यादा। किसी को क्रेडिट मिलता है और कोई बिना क्रेडिट के रह जाता है। किसी का स्वागत होता है और कोई देखता है कि उसकी अनदेखी की जा रही है। यह हालत बिलकुल स्वाभाविक है। यह अंतर हमेशा आता है, चाहे वह कोई आम आंदोलन हो या किसी पैगंबर का आंदोलन।

ऐसे हालात में एकजुट कोशिश को बनाए रखने का एकमात्र व्यावहारिक तरीका यही है कि लोग अपने हक़ भूल जाएँ और सिर्फ़ अपनी ज़िम्मेदारी याद रखें।

ऐसे स्वभाव की ज़रूरत सिर्फ़ इसलिए नहीं है कि सामूहिक कोशिश में लोगों को कोई बदला नहीं मिलता, बल्कि इसलिए भी है कि मिलने वाला बदला अकसर इंसान के अपने अंदाज़े से कम होता है। इसलिए बदला मिलने पर भी वही सारी शिकायतें पैदा हो जाती हैं, जो तब पैदा होती हैं, जब कोई बदला मिला ही न हो।

बड़ा काम करने वाले वह लोग हैं, जिनका हाल यह है कि उनका काम ही उनका बदला बन जाता है। अपनी ज़िम्मेदारी को पूरी तरह निभाकर उन्हें वह खुशी हासिल होती है, जो किसी इंसान को तब होती है, जब उसके काम के नतीजे में उसे कोई बहुत बड़ा इनाम मिल जाता है।



निरंतर कर्म



चीन के पूर्व कम्युनिस्ट चेयरमैन माओ त्से तुंग ने एक दिलचस्प चीनी कहानी लिखी थी।

बहुत पुराने ज़माने में चीन के उत्तरी इलाक़े में एक बूढ़ा आदमी रहता था। उसका घर दक्षिण की तरफ़ था। उस बूढ़े आदमी की मुश्किल यह थी कि उसके दरवाज़े के सामने दो बहुत ऊँचे-ऊँचे पहाड़ खड़े थे। उन पहाड़ों की वजह से सूरज की किरणें उसके घर में कभी नहीं पहुँचती थीं।

एक दिन उस बूढ़े आदमी ने अपने जवान बेटों को बुलाया और कहा, “आओ, हम इन पहाड़ों को खोदकर यहाँ से हटा दें, ताकि सूरज की रोशनी हमारे घर में बिना रुकावट के आ सके।”

जब उसके पड़ोसी को यह बात पता चली, तो वह हँस पड़ा। उसने कहा, “मुझे तो पहले से मालूम था कि तुम कुछ बेवकूफ़ हो, लेकिन इतने बेअक़ल हो, यह नहीं सोचा था। आखिर यह कैसे मुमकिन है कि तुम अपनी खुदाई से इन ऊँचे पहाड़ों को हटा दोगे?”

बूढ़े आदमी ने बहुत गंभीरता से जवाब दिया, “तुम्हारी बात सही है, लेकिन अगर मैं मर गया, तो मेरे बेटे यह काम जारी रखेंगे। उनके मरने के बाद उनके बेटे और फिर उनके बेटे। इस तरह यह खुदाई हमेशा चलती रहेगी। तुम जानते हो, पहाड़ और ज़्यादा बड़े नहीं होंगे, लेकिन हर खुदाई से उनका आकार छोटा होता जाएगा। इसलिए अगर आज नहीं, तो किसी आने वाले दिन यह मुसीबत हमारे घर के सामने से दूर हो जाएगी।”

यह कहानी बहुत ख़ूबसूरती से बताती है कि बड़ी कामयाबी के लिए हमेशा बड़ी योजना ज़रूरी होती है। अगर आप दुनिया में कोई बड़ी कामयाबी हासिल करना चाहते हैं, तो आपको बड़ी योजना के लिए तैयार रहना चाहिए और उन तमाम ज़रूरतों को पूरा करना चाहिए, जो उसे लगातार चलाने के लिए ज़रूरी हैं।

हकीकत यह है कि समस्याओं के मुक़ाबले में उनके हल की ताक़त ज़्यादा होती है। समस्याएँ हमेशा सीमित होती हैं, लेकिन हल हमेशा शाश्वत (eternal) होता है। अगर आप किसी हल के अमल को पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलाते रहें, तो आप हर पहाड़ को काट सकते हैं और हर दरिया को पार कर सकते हैं।

जो व्यक्ति निरंतर कर्म करने के लिए तैयार रहता है, उसके लिए कोई पहाड़ पहाड़ नहीं रहता और कोई दरिया भी दरिया नहीं रहता।



यह क्रीमत का नहीं, बड़े समय का सवाल है



ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी सन् 1163 में बनी थी। उसका हरा-भरा लॉन दुनियाभर में मशहूर है। एक अमेरिकी करोड़पति ने उस लॉन को देखा, तो वह उसे बहुत पसंद आया। उसने सोचा कि काश! उसकी हवेली में भी ऐसा ही लॉन होता। उसने ऑक्सफ़ोर्ड के माली से पूछा, “इस तरह के लॉन को बनाने में कितने डॉलर लगेंगे?”

माली ने गंभीरता से जवाब दिया, “बिलकुल फ्री।”

“यह कैसे मुमकिन है?”

“अपनी ज़मीन को समतल करके और उस पर घास उगाकर। जब घास उग जाए, तो उसे काटो और रोलर से दबाओ। यह काम लगातार पाँच सौ साल तक करते रहो। जब पाँच सौ साल पूरे हो जाएँगे, तो तुम्हारे लिए ऐसा ही लॉन तैयार हो जाएगा। यह क्रीमत का नहीं, बड़े समय का सवाल है।”

अगर शाम को सूरज डूब गया है और तुम फिर से सुबह का नजारा देखना चाहते हो, तो तुम्हें पूरी रात का इंतज़ार करना पड़ेगा। बिना रात के अंतराल से गुज़रे तुम सुबह के माहौल में अपनी आँखें नहीं खोल सकते। अगर तुम्हारे पास एक बीज है और तुम उसे पेड़ के रूप में देखना चाहते हो, तो तुम्हारे पास 25 साल इंतज़ार करने के अलावा कोई चारा नहीं है। उससे पहले तुम्हारा बीज एक हरे-भरे पेड़ के रूप में खड़ा नहीं हो सकता। ठीक इसी तरह प्रकृति में हर घटना के प्रकट होने का एक तय ‘समय’ होता है। कोई भी घटना अपने निर्धारित समय से पहले सामने नहीं आती।

समय का मतलब है वह अवधि, जिसमें कोई प्रक्रिया होती है और पूरी होती है। यह सिद्धांत प्रकृति की पूरी व्यवस्था में काम कर रहा है। इंसानों के अलावा ब्रह्मांड के बाकी हिस्सों में यह व्यवस्था सीधे दैवी प्रबंधन में स्थापित है और इंसानों के लिए यह ज़रूरी है कि वे इसे अपनी मर्जी से अपने जीवन में अपनाएँ। पूरा ब्रह्मांड अपनी पूरी व्यवस्था के साथ इंसानियत को यह व्यावहारिक सबक दे रहा है कि घटनाओं के प्रकट होने की एक असली रणनीति है, जिसे अपनाकर इंसान इस दुनिया में कामयाब हो सकता है।

चाहे निजी जीवन का निर्माण हो या राष्ट्रीय जीवन का, दोनों ही मामलों में इंसान के सामने एक ही रास्ता है कि वह अपनी यात्रा 'शुरुआत' से शुरू करे और जरूरी अवधि से पहले ही नतीजा देखने की इच्छा न करे, नहीं तो उसका अंत उस यात्री की तरह होगा, जो तेज़ रफ़्तार ट्रेन में बैठा है और स्टेशन आने से पहले ही उतरना चाहता है। अगर ऐसा यात्री अपने डिब्बे का दरवाज़ा खोलकर समय से पहले उतर जाए, तो जहाँ भी वह जाएगा, वह उसकी मंज़िल नहीं, बल्कि उसकी क़ब्र होगी... सफलता सबसे ज़्यादा जिस चीज़ की माँग करती है, वह है समय; लेकिन यही वह क़ीमत है, जो इंसान अदा करने के लिए तैयार नहीं है।



पत्थर वाली सीख



राजस्थान का एक विद्यार्थी हाई स्कूल में फ़ेल हो गया। अगले साल उसने फिर से परीक्षा दी, लेकिन वह फिर फ़ेल हो गया। उसके बाद जब तीसरे साल का रिज़ल्ट आया और उसने देखा कि वह अभी भी फ़ेल हो गया है, तो वह बहुत ही सदमे में आ गया। उसे इतनी निराशा हुई कि वह घर से भाग गया।

भटकते-भटकते वह एक गाँव के बाहरी इलाक़े में पहुँच गया। उसे प्यास लग रही थी। उसने एक कुआँ देखा, जहाँ कुछ औरतें और बच्चे पानी भर रहे थे। वह प्यास बुझाने के लिए कुएँ के पास गया, लेकिन वहाँ उसने एक दृश्य देखा। दिखने में तो वह दृश्य छोटा था, लेकिन उसने उसे इतना प्रभावित किया कि वह अपनी प्यास ही भूल गया। उसे अचानक लगा कि उसे पानी से बड़ी कोई चीज़ मिल गई है।

उसने देखा कि कुएँ पर पानी भरने आने वाले गाँव वालों के पास आम तौर पर दो-दो मिट्टी के घड़े होते थे। वे एक घड़ा कुएँ के पास वाले एक पत्थर पर रख देते थे और दूसरे घड़े से कुएँ में से पानी खींचते थे। उसने देखा कि जिस पत्थर पर घड़ा रखा जाता था, वह समय के साथ घिस गया था।

उसने सोचा, 'घड़ा तो मिट्टी का बना हुआ है, लेकिन जब उसे लगातार कई दिनों तक एक ही जगह पर रखा गया, तो रगड़ से पत्थर घिस गया। लगातार

कोशिश से मिट्टी ने पत्थर पर जीत हासिल कर ली। निरंतर क्रिया ने कमजोर को मजबूत पर विजयी बना दिया। अगर मैं भी लगातार मेहनत करूँ, तो क्या मैं अपनी परीक्षा में पास नहीं हो सकता? क्या अपनी कमियों को ज्यादा मेहनत से दूर नहीं कर सकता?’

यह सोचकर भागे हुए विद्यार्थी के क्रदम रुक गए। वह वापस मुड़ा और अपने घर लौट आया और फिर से पढ़ाई में जुट गया। अगले साल उसने चौथी बार हाई स्कूल की परीक्षा दी। इस बार नतीजा हैरान करने वाला था। उसके पेपर इतने अच्छे थे कि वह फ़र्स्ट डिवीज़न में पास हुआ। जो तीन बार फ़ेल हुआ था, वह चौथी कोशिश में ज़बरदस्त सफलता हासिल कर गया। पत्थर वाली यह सीख उस नौजवान के जीवन के लिए इतनी महत्वपूर्ण साबित हुई कि इसने उसका पूरा रुख ही बदल दिया।

जो विद्यार्थी लगातार हाई स्कूल में फ़ेल होने के बाद भाग गया था, उसने उसके बाद लगातार प्रथम स्थान हासिल करना शुरू कर दिया। उसने एम.ए. की परीक्षा में भी टॉप किया। उसके बाद वह छात्रवृत्ति पर उच्च शिक्षा के लिए विदेश गया और डॉक्टरेट की डिग्री हासिल की।

यह कोई अकेली घटना नहीं है, जो सिर्फ़ एक गाँव में घटी। असलियत यह है कि ऐसे ‘पत्थर’ हर जगह मौजूद हैं, जो लोगों को जीवन की सीख देते हैं और असफलताओं से सफलता तक निकलने का रास्ता दिखाते हैं। अगर किसी व्यक्ति में सलाह लेने का स्वभाव हो, तो उसे अपने आस-पास ही ऐसा ‘पत्थर’ मिल जाएगा, जो अपनी चुप्पी की भाषा में उसे वही संदेश देता है, जो उस नौजवान को अपने पत्थर से मिला था।



यह तो खुद ही पता करना पड़ता है



‘टाइम्स ऑफ़ इंडिया’ (18 जुलाई, 1983) में एक मजेदार किस्सा छपा था। 1970 में भारत का एक नेता (जिसका नाम नहीं लिखा) फ़्रांस गया। पेरिस में उसकी मुलाक़ात एक फ़्रेंच नेता से हुई, जो गॉलिस्ट पार्टी से था। अख़बार की

रिपोर्ट के मुताबिक उनकी बातचीत कुछ इस तरह हुई—

फ्रेंच नेता ने पूछा, “क्या आप पेरिस में कुछ खास करना चाहेंगे?”

भारतीय नेता बोले, “मैं जनरल डि गॉल का बहुत बड़ा प्रशंसक हूँ मेरी इच्छा है कि उनसे एक शिष्टाचार भेंट करूँ।”

फ्रेंच नेता बोला, “लेकिन सर, वे तो स्वर्ग सिधर चुके हैं!”

“क्या? भारत में ब्रीफिंग के दौरान किसी ने मुझे यह बात नहीं बताई!”

“उन्होंने शायद यह मान लिया होगा कि आपको यह पता ही है। उनका देहांत चार साल पहले ही हो गया था।”

यह एक ऐसा उदाहरण है, जिससे पता चलता है कि हर बात बताई नहीं जा सकती। जरूरी है कि इंसान कुछ बातें खुद ही जाने। सुनने वाला अगर 50 फ्रीसदी बात जानता हो, तो उसे बाक्री के 50 फ्रीसदी बात बताई जा सकती है। अगर वह आधी बात पहले से न जानता हो, तो बाक्री की आधी बात भी वह नहीं समझ पाएगा, चाहे वह बात कितनी भी अच्छी क्यों न हो और चाहे उसे कितने भी तर्कों के साथ पेश किया जाए।

आज अगर आप किसी से कहें कि ‘फ्रलाँ खिलाड़ी ने सेंचुरी बना ली,’ तो वह तुरंत समझ जाएगा कि इसका मतलब क्रिकेट के सौ रन हैं, लेकिन अगर आप कहें कि ‘देश की तरक्की के लिए एक सदी (सेंचुरी) की जद्दोजहद जरूरी है,’ तो कोई इसका मतलब नहीं समझेगा, क्योंकि देश की तरक्की के मामले में सौ साल की मेहनत से कोई वाकिफ़ नहीं है।



पंद्रह साल में कामयाबी



एक आदमी सिगरेट फ़ैक्ट्री में एक मामूली नौकर था। वहाँ उसने सिगरेट के धंधे के सारे ‘गुर’ सीख लिये और फिर अलग से अपना कारोबार शुरू कर दिया। उसने अपना काम पाँच हजार रुपये से शुरू किया था। लगातार मेहनत करने के करीब पंद्रह साल बाद उसकी एक बहुत बड़ी फ़ैक्ट्री हो गई। एक दिन उसने अपने दोस्तों से अपना किस्सा सुनाते हुए कहा—

“जिस तरह एक बच्चा पंद्रह साल में तैयार होता है, उसी तरह एक कारोबार भी पंद्रह साल में तैयार होता है। मैं एक दिन में अपनी इस हालत में नहीं पहुँचा। मुझे यहाँ तक आने में पंद्रह साल लगे।”

असल बात यह है कि हर काम ‘पंद्रह साल’ में पूरा होता है, चाहे वह इंसानी हो या मिला-जुला। चाहे वह कारोबार हो या देश की सेवा। वे लोग, जो यह समझते हैं कि एक पल में कामयाबी का कोई नुस्खा हो सकता है, वे ख्याली दुनिया में रहते हैं। ‘एक छलाँग लगाओ और मंज़िल पर पहुँच जाओ’— क्रायदे के लिहाज़ से यह एक सही जुमला है, लेकिन ज़िंदगी की हकीकतों के लिहाज़ से यह बेमानी लफ़्ज़ों का ऐसा मजमूआ है, जिसकी वाक्यात की दुनिया में कोई कीमत नहीं।

ग्लेन कनिंघम वह शख्स है, जो एक मील की दौड़ का चैंपियन बना। जिस स्कूल में वह पढ़ रहा था, उसमें आग लग गई। वह आग की लपटों से घिर गया और उसके पैर इतने जल गए कि वह अपाहिज हो गया और चलने लायक न रहा। डॉक्टरों ने कहा कि उसके फिर से चलने-दौड़ने लायक बनने के लिए कोई करिश्मा होना चाहिए, लेकिन ग्लेन कनिंघम की अपाहिजी ने उसके अंदर चलने-दौड़ने का एक नया जुनून पैदा कर दिया। उसकी सारी दिमागी और जहनी ताकत खुद को फिर से चलने लायक बनाने पर लग गई। उसने तरह-तरह की कसरतें शुरू कीं। आखिरकार उसके दिमाग में एक ख्याल आया। उसने एक हल (plough) के हैंडल को पकड़कर, उसे चलाते हुए, खुद को घसीटने (drag) का अभ्यास शुरू किया। ख्याल कामयाब रहा। जब उसके पैर ज़मीन पर लगने लायक हो गए, तो उसका हौसला बढ़ा। अब उसने अपनी प्रैक्टिस और तेज़ कर दी। आखिरकार वह करिश्मा, जिसकी डॉक्टरों ने बात की थी, हो गया। वह ठीक से चलने-दौड़ने लायक हो गया। उसके बाद उसने एक मुक्राबले में हिस्सा लिया और एक मील की दौड़ के सारे पुराने रिकॉर्ड तोड़कर उसका चैंपियन बन गया।

हालाँकि ग्लेन कनिंघम को यह कामयाबी कुछ दिनों में नहीं मिली। उसे उस मुक्राम तक पहुँचने में ‘पंद्रह साल’ लगे। पंद्रह साल की जद्दोजहद के बाद ही वह दौड़ का चैंपियन बन पाया।

सच तो यह है कि इस दुनिया में ‘पंद्रह साल’ के बिना कोई कामयाबी मुमकिन नहीं है। फ़ौरी नतीजे देने वाली सबसे क्राबिल हस्ती ईश्वर है, लेकिन

ईश्वर ने अपनी दुनिया का सिस्टम फ़ौरी नतीजों पर इसलिए नहीं बनाया, ताकि इंसान सबक ले और बेकार की कोशिशों में अपना वक्त बरबाद न करे। ईश्वर की दुनिया में रात-दिन अनगिनत वाक्यात हो रहे हैं, लेकिन हर चीज़ बेहद मज़बूत और तयशुदा क़ानूनों के आधार पर होती है। यहाँ ज़मीन पर एक भी तिनका ऐसा नहीं है, जो अरमानों की ज़मीन पर खड़ा हो और न ही एक चींटी ऐसी है, जो हकीकत को नज़र-अंदाज़ करके जीती हो। फिर इंसान के लिए ईश्वर के क़ानून को कैसे बदला जा सकता है?

कामयाबी की एक ही शर्त है— कोशिश मतलब वह मेहनत करना, जो मंज़िल के लिए ईश्वर के क़ानून में तय है। यही इस दुनिया में कामयाबी का उसूल है और यही परलोक में कामयाबी का उसूल है।

ज़िद्दी इरादा

एक विचारक ने कहा है— “लोगों में ताक़त की कमी नहीं है, बल्कि ज़िद्दी इरादे की कमी है।” यह सच्चाई है कि ज़्यादातर लोगों में पूरी क़ाबिलियत होती है, मगर वे इसका फ़ायदा इसलिए नहीं उठा पाते, क्योंकि वे लगातार और लंबे समय तक मेहनत नहीं कर सकते और किसी भी असली कामयाबी के लिए लंबी और लगातार मेहनत बहुत ज़रूरी है।

अगर आप अपनी कोशिशों का कोई ठोस और अच्छा नतीजा देखना चाहते हैं, तो पहले दिन ही यह समझ लें कि आपको लंबा इंतज़ार करना पड़ेगा। अगर आपमें इंतज़ार करने की ताक़त नहीं है, तो आपको अपने लिए कोई टिकाऊ कामयाबी की उम्मीद भी नहीं रखनी चाहिए। ज़िंदगी का राज एक शब्द में यह है— जितना लंबा इंतज़ार, उतनी ही ज़्यादा तरक्की।

किसी क्रौम या देश की ‘तामीर’ कम समय में भी हो सकती है और इसके लिए ज़्यादा वक्त भी लग सकता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि आप किस तरह का देश बनाना चाहते हैं।

अगर मक़सद देश में तुरंत जोश पैदा करना है, अगर आप सिर्फ़ नकारात्मक

और वक्रती हंगामे को ही अपना लक्ष्य समझने की गलती कर रहे हैं, अगर आप लोगों के दिलों को भड़काने वाले नारे लगाकर थोड़ी देर के लिए भीड़ इकट्ठी कर लेने को ही काम समझते हैं, अगर आपके लिए सिर्फ जलसों की धूम ही देश की तामीर है, तो इस क्रिस्म की तामीर, अगर कभी अचानक हालात ठीक हो जाएँ, तो रातों-रात हो सकती है, लेकिन हकीकत यह है कि यह देश की तामीर से ज्यादा नेताओं की तामीर है, क्योंकि इस तरह के शोर-शराबे से कुछ नेताओं को फ़ायदा जरूर हो जाता है, मगर इंसानियत के उस बड़े समूह को इससे कोई फ़ायदा नहीं होता, जिसे हम क्रौम या देश कहते हैं। इस नज़रिये से देखें, तो इस तरह के तरीके एक क्रिस्म का शोषण ही हैं, जिनसे फ़ायदा उठाकर कुछ लोग वक्रती तौर पर अपनी नेता बनने की पोज़ीशन मज़बूत कर लेते हैं। यह सस्ती लीडरशिप हासिल करने का एक कामयाब नुस्खा है, जिसे ऊपरी सतह के लोग या तो अनजाने में या अपनी निजी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए अपनाते हैं।

अगर हम सच में देश की तामीर करना चाहते हैं, तो हमें यह समझ लेना चाहिए कि हमने एक शाहबलूत का पेड़ उगाने का जिम्मा लिया है, न कि एक ककड़ी की बेल लगाने का। यह एक ऐसा काम है, जिसके लिए जरूर लंबी योजना की जरूरत होती है। इसे कम समय में हासिल नहीं किया जा सकता।

अगर कोई नेता इस तरह के नारे लगाता है, तो यह या तो उसकी सीधी-सादी सोच का सबूत है या फिर उसकी दूसरों का फ़ायदा उठाने वाली सोच का और अगर कोई देश बिना लंबे इंतज़ार के अपनी तरक्की का महल बनता हुआ देखना चाहता है, तो उसे जान लेना चाहिए कि ऐसे महल सिर्फ़ दिमाग में बनते हैं, असल ज़िंदगी में नहीं।



दो सौ साल



1782 में एक अंग्रेज़ एडिनबर्ग से ग्लासगो आया। उसके पास दो सौ पाउंड और एक लकड़ी का प्रेस था। इसी का इस्तेमाल करके उसने एक अखबार शुरू किया। शुरुआत में इसका नाम था— 'ग्लासगो एडवरटाइज़र'। यह वही अखबार

है, जो आज 'ग्लासगो हेराल्ड' के नाम से मशहूर है और इसकी रोजाना चार लाख प्रतियाँ बिकती हैं। इसकी शुरुआत को अब दो सौ साल हो गए हैं।

इसके संस्थापक जॉन मेनंस को हर तरह की मुश्किल परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। हालाँकि एक आलोचक के शब्दों में, एक चीज उनमें बहुतायत में थी, वह था उनका असीम उत्साह। यह असीम उत्साह उनकी हर कमी का विकल्प बन गया। उन्होंने एक ऐसे अखबार की नींव रखी, जो लगातार दो सौ सालों से चल रहा है। बीच में साझेदारों के बीच गंभीर मतभेद भी पैदा हुए, लेकिन उन्हें समझदारी और धैर्य से सुलझा लिया गया।

जो अखबार दो सौ साल पहले लकड़ी के प्रेस पर हाथ से छापा जाता था, अब वह पूरी तरह से स्वचालित मशीनों से बनता है। इसमें अक्षरों को न तो जोड़ा जाता है और न ही ढाला जाता है, बल्कि उन्हें लेजर किरणों की मदद से प्लेट पर प्रोजेक्ट किया जाता है। अखबार अपने आप छप जाता है और बाहर आ जाता है। वह अपने आप फोल्ड हो जाता है। उसके बाद बंडल बनाए जाते हैं। बंडलों के चारों तरफ़ पॉलिथीन लपेटी जाती है और फिर उन्हें डिस्पैच डिपार्टमेंट भेज दिया जाता है। यह सारा काम कंप्यूटरों के ज़रिए होता है।

(टाइम्स ऑफ़ इंडिया; 22 जनवरी, 1984)

चूँकि ऊपर बताया गया अंग्रेज़ी अखबार लगातार दो सौ सालों से चल रहा है, इसलिए इस दौरान हुई प्रिंटिंग और प्रकाशन की सारी तरक्की इसके इतिहास का हिस्सा बन पाई। वे सब इसकी प्रगति के लिए ज़रिया बनती गईं। अगर कल्पना करें, यह शुरुआती 25 या 50 सालों में बंद हो गया होता, तो भले ही दुनिया में हर तरह की तरक्की होती, लेकिन वह अखबार उस तरक्की में शामिल होने के लिए मौजूद नहीं होता।

आज की दुनिया में कोई भी काम 'दो दिन' में पूरा नहीं होता। इसे करने के लिए 'दो सौ साल' लगते हैं। हालाँकि दो सौ साल की योजना को पूरा करने के लिए दो चीज़ों की ज़रूरत होती है— काम करने का जज़्बा और लगातार कोशिश। इन दो चीज़ों के बिना यहाँ कोई बड़ी तरक्की मुमकिन नहीं है।



हार मान लेना



अमेरिका के एक आदमी ने 1831 में व्यापार शुरू किया। उसमें वह फेल हो गया। 1832 में उसने राज्य की राजनीति में हिस्सा लिया, मगर वहाँ भी वह हार गया। 1834 में उसने दोबारा व्यापार किया। इस बार भी वह अपना व्यापार चलाने में कामयाब नहीं हो सका।

1841 में उसका नर्वस ब्रेकडाउन हो गया। 1843 में वह दोबारा राजनीति में आया। उसे उम्मीद थी कि इस बार उसकी पार्टी उसे कांग्रेस की सदस्यता के लिए नॉमिनेट करेगी, लेकिन आखिरी वक्त में उसकी उम्मीद पूरी नहीं हुई। उम्मीदवारों की लिस्ट में उसका नाम नहीं आया। 1855 में उसे पहली बार सीनेट के चुनाव में उतरने का मौका मिला, मगर वह चुनाव हार गया। 1858 में वह दोबारा सीनेट के चुनाव में खड़ा हुआ और एक बार फिर हार गया।

बार-बार हारने वाला यह आदमी अब्राहम लिंकन (1809-1865) था, जो 1860 में अमेरिका का राष्ट्रपति चुना गया। उसने अमेरिका के निर्माण में इतना बड़ा काम किया कि आज उसे 'अमेरिका का निर्माता' माना जाता है।

अब्राहम लिंकन को अमेरिका के राष्ट्रीय और राजनीतिक इतिहास में इतना सम्मानित नाम कैसे मिला और वह उस ऊँचे पद तक कैसे पहुँचा? डॉक्टर नॉर्मन विंसेंट पील के शब्दों में इसका जवाब इस तरह है— उसे मालूम था कि हार को कैसे स्वीकार करना है।

यथार्थवाद (realism) जिंदगी का सबसे बड़ा राज है और हार मान लेना यथार्थवाद की सबसे ऊँची क्रिस्म है। हार मान लेने का मतलब है कि आप इस हकीकत को स्वीकार कर लेते हैं कि आप दूसरों से आगे नहीं, बल्कि पीछे हैं। दूसरे शब्दों में, आप खुद को सैद्धांतिक रूप से ठीक उसी जगह खड़ा कर लेते हैं, जहाँ आप वास्तव में हैं। हार मान लेने के बाद एक इंसान तुरंत उस स्थिति में आ जाता है कि वह अपनी यात्रा शुरू कर सके, क्योंकि यात्रा हमेशा वहीं से शुरू होती है, जहाँ आप वाकई हैं, न कि उस जगह से, जहाँ आप अभी पहुँचे ही नहीं हैं।



हकीकत को मानना



बाग लगाने का काम किसी 'बाग कॉन्फ्रेंस' से शुरू नहीं होता, बल्कि यह इस तरह शुरू होता है कि हर एक पौधे को वह हालात दिए जाएँ, जहाँ वह अपनी अंदरूनी बढ़ने की ताकत इस्तेमाल कर सके, एक पेड़ बन सके और इस तरह पूरे बाग का एक हिस्सा बन जाए।

यही तरीका किसी क्रौम (कम्युनिटी) को बनाने का भी है। क्रौम की तामीर असल में लोगों की तामीर का नाम है। इसका मतलब है— हर एक इंसान को जागरूक बनाना; हर शख्स की छुपी हुई क्राबिलियत को जगाना और उसे एक असली इंसान का दर्जा दिलाना; हर एक में यह एहसास पैदा करना कि वह अपने दूसरे भाइयों के लिए मुश्किल बने बिना अपनी तरक्की की संभावना को साकार करने की कोशिश करे। इस प्रोसेस का नाम क्रौम की तामीर है। इसके अलावा जो कुछ भी है, वह बेकार का शोर-शराबा है। इससे ज़्यादा कुछ नहीं।

यह दुनिया मुक्काबले की दुनिया है। यहाँ ऐसा कभी नहीं होता कि किसी इंसान के लिए बिना रुकावट के मौक़े खुले हों और मैदान में उसका कोई प्रतिद्वंद्वी (rival) ही न हो। ऐसा इस धरती पर कभी किसी के साथ नहीं हुआ और न आज किसी के साथ हो सकता है। ज़िंदगी असल में रुकावटों के बीच से अपने लिए रास्ता बनाने का नाम है, न कि रुकावटों के न होने पर बिना डरे आगे बढ़ने का।

जिस तरह इतिहास पढ़ने से पता चलता है कि इंसान को हमेशा अपनी ज़िंदगी की शुरुआत रुकावटों और मुश्किलों के बीच करनी पड़ी है, उसी तरह इतिहास यह भी साबित करता है कि रुकावटें चाहे कितनी भी ज़्यादा क्यों न हों, इंसान के लिए कोई-न-कोई रास्ता हमेशा खुला होता है, जिस पर चलकर वह अपनी मंज़िल तक पहुँच सकता है, लेकिन यह रास्ता उन्हीं लोगों के लिए है, जो रास्ते के बंद हिस्से पर सिर नहीं पीटते, बल्कि दूसरी दिशाओं में कोई 'रास्ता' (pass) ढूँढते हैं और आगे बढ़ जाते हैं।

इसके अलावा इतिहास यह भी साबित करता है कि हादसा (calamity) चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो, इंसान के लिए उसकी भरपाई का तरीका हमेशा मौजूद रहता है। इस दुनिया में कोई भी आफ़त या हादसा इंसान के लिए उस

संभावना को खत्म नहीं करता कि वह एक बेहतर योजना के साथ अपने काम की दोबारा शुरुआत करे और खोई हुई चीज़ को दोबारा नए अंदाज़ में हासिल कर ले। दूसरे इंसान के पास जो कुछ है, वही आप भी हासिल कर सकते हैं, बशर्ते आप इस राज को समझ लें— इस दुनिया में जो कुछ भी किसी को मिलता है, वह हकीकत में जमकर की गई मेहनत (realistic struggle) से मिलता है, न कि सिर्फ़ ख्वाब देखने और अच्छे विचारों (wishing and optimism) से।

दूसरों का ख्याल

सी. बेल रॉजर्स पोल्ट्री (मुर्गी-पालन) के दुनियाभर में मशहूर एक्सपर्ट हैं। मुर्गी-पालन पर उनकी एक मशहूर किताब है। यह किताब इन शब्दों से शुरू होती है—

बड़े पैमाने पर कामयाब मुर्गी-पालन काफ़ी हद तक इंसान के स्वभाव की बात है। कोई शख्स, जो चिड़ियों और जानवरों के लिए प्यार की भावना नहीं रखता, वह इस काम में कामयाब नहीं हो सकता। मुर्गी-पालन के लिए एक सख्त और परेशान कर देने वाले रूटीन काम की बहुत ज़रूरत है। यह काम उन लोगों को बहुत उबाऊ लगेगा, जो रोज़ एक ही काम करने के आदी नहीं हैं और वह भी इस उम्मीद के बिना कि कभी कोई छुट्टी या रुकावट का दिन आएगा।

“कामयाबी ठंडे दिमाग़ से लिये गए फ़ैसलों का मामला है, बिना दिमाग़ को बार-बार बदले, गहरी नज़र से देखने की क्षमता, पहल करने की कुव्वत और छोटी-छोटी बहुत सारी बातों पर लगातार और बिना रुके ध्यान देने का।”

ए.सी. कैपबेल रॉजर्स,

प्रॉफ़िटेबल पोल्ट्री कीपिंग इन इंडिया एंड द ईस्ट,

डी.बी. तारापोरेवाला संस एंड कंपनी, बॉम्बे 1959, पेज 223

पोल्ट्री एक्सपर्ट ने मुर्गी-पालन के बारे में जो बात कही है, वही आम ज़िंदगी के लिए भी सही है। जिस तरह मुर्गियाँ पालने वाला इंसान सिर्फ़ अपनी मर्जी से नहीं चलता, बल्कि मुर्गियों की आदतों और ज़रूरतों का ख्याल रखता है। ठीक

उसी तरह जिंदगी में हमें दूसरे इंसानों के स्वभाव और उनके फ़ायदे की रियायत (allowance) देनी होती है।

दूसरों की इज़्जत करके ही हम दूसरों के बीच इज़्जत पा सकते हैं। दूसरों के काम आकर ही हम दूसरों को अपने काम ला सकते हैं। इस दुनिया में खुद की कामयाबी असल में दूसरों की कामयाबी में मददगार बनने का दूसरा नाम है। जो लोग सिर्फ़ अपने बारे में जानते हैं और दूसरों को नहीं जानते, वे इस दुनिया में कभी कामयाब नहीं हो सकते।



मौक़ा सिर्फ़ एक बार



कॉलेज की एक पुरानी नोटबुक में किसी शिक्षक द्वारा लिखा गया एक वाक्य आज भी मन पर गहरी छाप छोड़ जाता है— “जीवन बस एक बार मिलता है।” उन्होंने लिखा था— “तुम जीवन को दर्शक की तरह देख रहे हो।” मैंने भी ऐसा ही किया और नौकरी में लग गया। मैं तब उसका अर्थ नहीं समझ पाया। उम्र कच्ची थी, अनुभव अधूरे थे और समय के वास्तविक मूल्य से हम अनजान थे। आज स्मृतियाँ बहुत हैं, पर उनसे मिलने वाला लाभ बहुत कम, क्योंकि सही समय पर हम समय की भाषा को समझ नहीं पाए और जो समय को नहीं समझ पाता, उसके सामने आए बड़े-से-बड़े अवसर भी बिना कुछ दिए आगे बढ़ जाते हैं।

यह सच्चाई हमारे समाज के लगभग 99 प्रतिशत लोगों पर लागू होती है। युवावस्था व्यक्ति के लिए संघर्ष की आयु है, लेकिन अधिकांश लोग इस आयु का ठीक से इस्तेमाल नहीं कर पाते। वे जीवन का उत्तम समय बेकार की बातों में बिता देते हैं, यहाँ तक कि उन्हें एहसास होता है कि समय बीत गया और काम करने का उत्साह जाता रहा। तब वे पछताते हैं कि न्यूनतम संघर्ष के साथ वे व्यावहारिक जीवन के मैदान में दाखिल हो गए। अपनी जवानी के बावजूद वे ज़्यादा तरक्की नहीं कर सके। वे सारी उम्र इसी शिकायत में गुज़ार देते हैं कि इस दुनिया में उनकी सफलता के लिए जो अंतिम संभावना तय थी, वह भी उनसे छूट गई और वे असफलता के बोध के तले जीते हुए उसी हालत में मर जाते हैं।

यदि जीवन बिना संघर्ष के जिया जाए, तो उपलब्धियाँ भी सीमित ही रह जाती हैं। अभाव एक बार स्वीकार कर लिया जाए, तो वह अकसर जीवनभर साथ चलता है और जिनके हिस्से में अभाव आता है, उनके लिए जीवन बार-बार नहीं आता— वह केवल एक बार ही आता है।

एक व्यक्ति के लिए जीवन कठिन हो सकता है, तो दूसरे के लिए वही जीवन सहज, क्योंकि उसने संघर्ष के औजार अपने पास रखे हैं। बात यहीं स्पष्ट हो जाती है— यदि आप क्षमता और योग्यता के साथ जीवन के मैदान में उतरते हैं, तो आपको आपका अधिकार पाने से कोई नहीं रोक सकता, लेकिन यदि आप बिना तैयारी, बिना सामर्थ्य आगे बढ़ते हैं, तो फिर शिकायतों के अतिरिक्त आपके हिस्से में कुछ नहीं आता।

देश से उम्मीदें मत बाँधिए— खुद को तैयार कीजिए। अपने कौशल, अपनी क्षमताओं और अपने भीतर के संकल्प को मजबूत कीजिए। सच तो यह है कि संघर्ष देश से नहीं, अपनी कमजोरियों से करना पड़ता है। देश के विरुद्ध की जाने वाली शिकायतें अकसर स्वयं से असंतोष का ही दूसरा नाम होती हैं। संभव है, जिसे आप अपना छीना हुआ अधिकार मानते हैं, वह इसलिए न मिला हो, क्योंकि आपने उसे पाने के लिए आवश्यक संघर्ष ही नहीं किया।



झूठी बड़ाई



एक साहब की कहानी है। उनके दादा एक कामयाब व्यापारी थे, लेकिन बाद में उनका व्यापार बंद हो गया। उनके माता-पिता का बचपन में ही देहांत हो गया। उन साहब को अपने पिता-दादा की दौलत तो नहीं मिली, लेकिन एक एहसास जरूर विरासत में मिला कि 'मेरे पिता-दादा बहुत बड़े आदमी थे।'

वे अभी जवान ही थे कि उन्हें पता चला कि क़स्बे के डाक़खाने में पोस्टमैन की जगह खाली है। उन्होंने अर्जी देकर पोस्टमैन की नौकरी पा ली। लोगों ने उन्हें सलाह दी कि "तुम्हारी पढ़ाई सिर्फ़ आठवीं क्लास तक हुई है, तुम कोशिश करके हाई स्कूल पूरा कर लो। उसके बाद तुम आसानी से यहाँ के डाक़खाने में

पोस्टमास्टर बन सकते हो।” इसके साथ ही उनकी थोड़ी-बहुत खेती भी थी। दोनों को मिलाकर उनका गुजारा आसानी से चल जाता, लेकिन उनके झूठे घमंड ने इसमें रुकावट डाल दी और उन्होंने किसी की सलाह नहीं मानी।

इसके अलावा झूठी शान दिखाने की भावना के कारण वे अकसर डाकखाने के दूसरे कर्मचारियों से झगड़ पड़ते थे, यहाँ तक कि एक दिन उन्होंने पोस्टमास्टर से ही झगड़ा कर लिया और नौकरी छोड़कर चले आए।

डाकखाने की नौकरी छोड़ने के बाद वे बेकार बैठे रहे। न तो उन्होंने कोई दूसरा काम किया और न ही आगे पढ़ाई की। उनका एकमात्र काम यह रह गया कि वे अपनी कल्पना की हुई बड़ाई के क्रिम्से सुनाते रहे और इस तरह खुद को झूठी तसल्ली देते रहे। नौकरी छोड़ने के बाद खेती से जो आमदनी होती थी (जो बटाई पर दी हुई थी), उसी से उनका गुजारा चलता रहा। यह सिलसिला तब तक चला, जब तक उनके छह बच्चे नहीं हो गए। अब मुश्किलों ने उन्हें परेशान करना शुरू कर दिया।

हालाँकि उनके झूठे घमंड की भावना ने एक बार फिर रुकावट डाली और उन्होंने अपनी गलती मानने से इनकार कर दिया। वे अपने रिश्तेदारों को अपनी बरबादी का जिम्मेदार ठहराकर उनसे लड़ने लगे, लेकिन इस अवास्तविक रवैये ने उनकी बरबादी को और बढ़ा दिया, यहाँ तक कि उनका मानसिक संतुलन बिगड़ गया।

आज की दुनिया हक्रीकत की दुनिया है। यहाँ हक्रीकत के साथ कदम मिलाकर चलोगे, तो तुम कुछ भी हासिल कर सकते हो और अगर तुम हक्रीकत के साथ नहीं चलोगे, तो तुम्हें कुछ भी हासिल नहीं होगा। ईश्वर की इस दुनिया में झूठी बड़ाई से ज्यादा बेमानी कोई चीज नहीं है। झूठी बड़ाई से ज्यादा तबाह करने वाला कोई और नजरिया नहीं है।



एक व्यावहारिक समाधान



एक साइकोलॉजिस्ट ने कहा है— “जब किसी की ईगो को छोड़ा जाता है, तो वह एक सुपर ईगो बन जाता है और नतीजा ब्रेकडाउन होता है।”

अपने आखिरी ज़माने में उमैर बिन हबीब बिन हम्माशा ने अपने पोते अबू जाफ़र को एक लंबी नसीहत दी। इस नसीहत का एक हिस्सा सन्न के बारे में था। इस सिलसिले में उन्होंने कहा—

“जो शख्स किसी नादान के छोटे नुक़सान से राज़ी नहीं होगा, उसे उसी नादान के बड़े नुक़सान से राज़ी होना पड़ेगा।”

इन दोनों कथनों में अलग-अलग शब्दों के साथ एक ही बात कही गई है। वह यह है कि मौजूदा दुनिया में लोगों के नुक़सान से बचने की सिर्फ़ एक ही पक्की तरीक़ीब है और वह यह कि खुद को लोगों को नुक़सान पहुँचाने से दूर रखा जाए।

हर इंसान के अंदर जन्म से ही ‘ईगो’ मौजूद होता है। यह ईगो आम तौर पर सोया रहता है। इसके नुक़सान से खुद को बचाने का सिर्फ़ यही तरीक़ा है कि इसे सोया ही रहने दिया जाए। अगर किसी कार्रवाई से इस ईगो को छेड़ दिया गया, तो यह साँप की तरह उठकर खड़ा हो जाएगा और फिर वह हर मुमकिन फ़साद मचाएगा, जो इसके बस में हो।

सामूहिक जीवन में बार-बार ऐसा होता है कि किसी नादान या उपद्रवी आदमी से आपको कोई नुक़सान पहुँच जाता है। ज़्यादातर हालात में इसका सबसे अच्छा हल यह होता है कि शुरुआती नुक़सान को बरदाश्त कर लिया जाए, क्योंकि अगर शुरुआती छोटे नुक़सान को बरदाश्त नहीं किया गया और उसका जवाब देने की कोशिश की गई, तो सामने वाला और भी ज़्यादा भड़क जाएगा। नतीजा यह होगा कि जिस आदमी ने एक कंकरी की चोट नहीं सही, उसे पत्थरों की बारिश सहने के लिए मजबूर कर दिया जाएगा।



दूर का रास्ता



विकसित देशों में टेलीफ़ोन का सिस्टम बहुत ही अच्छा होता है। इसके उलट अविकसित देशों में हालाँकि टेलीफ़ोन हर जगह है, लेकिन उसका सिस्टम ठीक नहीं चलता। उदाहरण के लिए, भारत में अगर आप लोकल कॉल करें या एक शहर से दूसरे शहर बात करें, तो तरह-तरह की दिक्कतों का सामना करना पड़ता

है। इसके विपरीत अगर आप दिल्ली से लंदन के किसी नंबर पर डायल करें, तो आपको तुरंत लाइन मिल जाएगी और बिलकुल साफ़ बात हो सकेगी।

इस सिलसिले में अफ्रीका का एक मज्ददार क्रिस्सा अखबार में देखने को मिला। अफ्रीका के एक देश में एक औरत ने स्थानीय क्रसाई की दुकान पर फ़ोन करने की कोशिश की। काफ़ी देर तक कोशिश करने के बाद भी उसे नंबर नहीं मिल पाया। इस औरत की माँ लंदन में रहती थी। इसके बाद उसने लंदन के फ़ोन पर अपनी माँ का नंबर डायल किया। यह नंबर उसे तुरंत मिल गया। अपनी माँ से बात करते हुए उस औरत ने ज़िक्र किया कि वह मीट मँगवाने के लिए एक घंटे से क्रसाई की दुकान पर फ़ोन लगाने की कोशिश कर रही थी, लेकिन कनेक्शन नहीं हो पा रहा था। उसकी माँ ने कहा, “अच्छा, मैं यहाँ से फ़ोन करती हूँ।” इस तरह उसकी माँ ने लंदन से अफ्रीका के क्रसाई की दुकान का फ़ोन नंबर मिलाया। नंबर बिना किसी दिक्कत के मिल गया। वह संदेश, जो अफ्रीका के स्थानीय फ़ोन से नहीं पहुँच पाया था, वह लंदन के फ़ोन से पहुँच गया।

यह क्रिस्सा ज़िंदगी की एक सच्चाई बता रहा है। यह सच्चाई यह है कि कभी-कभी दूर का रास्ता असल में ज़्यादा पास होता है।

ज़्यादातर लोगों की यही हालत है कि वे मंज़िल तक पहुँचने के लिए छोटा रास्ता ढूँढते हैं। वे अपना मनचाहा नतीजा पाने के लिए वह तरीका अपनाते हैं, जो ऊपर से देखने में जल्दी नतीजा देने वाला लगता है, लेकिन मंज़िल पर जल्दी पहुँचने के लिए सिर्फ़ ‘रास्ते’ को देखना काफ़ी नहीं है, बल्कि ‘सवारी’ (व्हीकल) को देखना भी ज़रूरी है। जल्दी नतीजा पाना सिर्फ़ दिखने वाले कारणों पर निर्भर नहीं करता, बल्कि उन दूसरे कारणों पर भी निर्भर करता है, जो दिखाई नहीं देते। कभी-कभी दूर का रास्ता ज़्यादा पास होता है और पास का रास्ता ज़्यादा दूर बन जाता है।



अंदर और बाहर का फ़र्क



अपोलो-8 के तीनों अंतरिक्ष यात्री 27 दिसंबर, 1968 को प्रशांत महासागर में उतरे थे। इन अमेरिकी अंतरिक्ष यात्रियों को धरती से चाँद तक का सफ़र तय करने

में छह दिन और तीन घंटे लगे और उन्होंने लगभग पाँच लाख सैंतालीस हजार मील का सफ़र किया। उनकी यात्रा का सबसे नाज़ुक पल वह था, जब उनका छह टन वज़नी यान चाँद का चक्कर लगाकर वापस धरती के पास पहुँचा।

जब अमेरिकी यान धरती के वायुमंडल में वापस घुसा, तो धरती के गुरुत्वाकर्षण (gravity) के कारण उसकी रफ़्तार अनोखे ढंग से बढ़कर 39,000 किलोमीटर प्रति घंटा हो गई। उसे चाँद के गुरुत्वाकर्षण से सात गुना ज़्यादा ताक़त का सामना करते हुए अपना सफ़र जारी रखना था। इस असाधारण रफ़्तार की वजह से अंतरिक्ष यान एक बहुत ही डरावनी क्रिस्म की गर्मी से गुज़रा। वायुमंडल में घुसते ही हवा के घर्षण से यान गर्म होना शुरू हो गया, यहाँ तक कि वह आग के एक गोले की तरह लाल हो गया। उस वक़्त यान के बाहरी हिस्से का तापमान 3,300 डिग्री सेल्सियस था, जबकि पानी सिर्फ़ 100 डिग्री पर ही उबलने लगता है।

3,300 डिग्री सेल्सियस के तापमान में कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता। फिर इतनी भयानक गर्मी में वे तीनों अंतरिक्ष यात्री कैसे सुरक्षित और जीवित वापस आ गए? इसकी वजह यह थी कि जिस यान के अंदर वे बंद थे, वह ख़ास तौर पर इस तरह से बनाया गया था कि वह बाहर की तीव्रता को अंदर नहीं आने देता था। इसलिए सबसे ज़्यादा गर्मी के बावजूद उसके अंदर का तापमान 21 डिग्री सेल्सियस से ऊपर नहीं गया। बाहर का तापमान 3,300 डिग्री था और अंदर का तापमान सिर्फ़ 21 डिग्री।

अंतरिक्ष यात्रा की यह घटना अपने अंदर एक बड़ा सबक़ रखती है। इंसानी ज़िंदगी में भी बार-बार ऐसे मुश्किल दौर आते हैं, जब बाहरी माहौल बिलकुल आपके खिलाफ़ हो जाता है। ऐसे वक़्त में हालात की तीव्रता से बचने का सिर्फ़ एक ही रास्ता होता है, वह यह है कि आप अपने अंदरूनी जज़्बात को दबाएँ और अपनी फीलिंग्स पर कंट्रोल रखते हुए उन्हें संतुलित (moderate) हालत में रखें। अगर ऐसा हो कि आपके 'अंदर' भी वही तीव्रता हो जाए, जो आपके 'बाहर' है, तो आप ख़ुद को तबाह कर लेंगे। इसके उलट अगर अंदर की स्थिति बाहर से अप्रभावित रहे और संतुलन बनाए रखें, तो आप बाहर की 'आग' से सुरक्षित रहेंगे और आखिरकार कामयाबी की मंज़िल पर सुरक्षित पहुँच जाएँगे।

जिंदगी का राज यह है— अगर बाहर आपके खिलाफ़ नफ़रत और दुश्मनी हो, तो आप उस नफ़रत और दुश्मनी को अपने अंदर दाखिल न होने दें; बल्कि खुद पर कंट्रोल रखकर अपने अंदर प्यार और माफ़ करने के जज़्बात को पैदा करें। बाहर की दुनिया अगर आपके साथ बुराई करे, तो आप भलाई के रूप में उसका जवाब दें। यही जिंदगी का और कामयाबी का तरीका है। अगर आप भी वैसे ही बन गए, जैसा माहौल था, तो आप यक्रीनन इस प्रतिस्पर्धी दुनिया में कामयाब नहीं हो सकते।



बेसब्री का नतीजा



यह 15 जनवरी, 1986 की घटना है। इंडियन एयरलाइंस की एक फ़्लाइट (फ़्लाइट नंबर 406) बंबई से दिल्ली के लिए उड़ी, लेकिन सिर्फ़ 15 मिनट बाद वह वापस मुड़ गई और दोबारा बंबई के एयरपोर्ट पर उतर गई। इसकी वजह यह थी कि यह फ़्लाइट किसी टेक्निकल वजह से आधे घंटे लेट हो गई थी। जब प्लेन आसमान में पहुँचा, तो एक यात्री ने कैप्टन भटनागर के नाम एक नोट भेजा कि वे बताएँ कि फ़्लाइट आधे घंटे लेट क्यों हुई है।

कैप्टन ने उस यात्री को कॉकपिट में बुलाया और देरी की वजह समझाने की कोशिश की। यात्री उनके जवाब से संतुष्ट नहीं हुआ और कैप्टन की पीठ पर मुक्का मारकर बोला, “मैंने तुम्हारे जैसे बहुत पायलट देखे हैं।”

कैप्टन भटनागर इस हालात से घबरा गए। उन्होंने तुरंत प्लेन को मोड़ दिया और उसे वापस लाकर बंबई के एयरपोर्ट पर उतार दिया। इसके बाद बंबई एयरपोर्ट पर काफ़ी देर तक हंगामा रहा। आखिरकार इंडियन एयरलाइंस के अधिकारियों ने प्लेन को एक दूसरे पायलट के साथ रवाना किया।

इसका नतीजा यह हुआ कि जब वह प्लेन बंबई से दिल्ली पहुँचा, तो अब वह तीन घंटे लेट हो चुका था। यात्री ने आधे घंटे की देरी बरदाश्त नहीं की। इसकी क्रीमत उन्हें यह चुकानी पड़ी कि वे तीन घंटे की देरी के साथ अपनी मंज़िल पर पहुँचे। इसके अलावा इंडियन एयरलाइंस के अधिकारियों ने एक हाई लेवल जाँच

समिति बैठाई है। मान लीजिए कि वह यात्री किसी सज़ा से बच भी गया, तो भी वह एक नतीजे से नहीं बच सकता— उस चीज़ की ज़्यादा बड़ी क़ीमत चुकाना, जिसकी थोड़ी क़ीमत चुकाने पर वह राज़ी नहीं था यानी वक्रता।

अकसर ऐसा होता है कि इंसान सोचता है कि वह अपने मक़सद को हासिल कर रहा है, जबकि असल में वह उसे खो रहा होता है। वह सोचता है कि मैं अपनी मंज़िल की तरफ़ तेज़ी से बढ़ रहा हूँ, जबकि उसकी जल्दबाज़ी का नतीजा सिर्फ़ यह होता है कि वह अपनी मंज़िल से और दूर हो जाता है।

(टाइम्स ऑफ़ इंडिया; हिंदुस्तान टाइम्स; 16 जनवरी, 1986)

जीने का रहस्य

आज की दुनिया में हमेशा ऐसा होता है कि कई वजहों से एक-दूसरे के खिलाफ़ नाराज़गी के कारण पैदा हो जाते हैं। अगर कोई आगे बढ़ गया है, तो दूसरों में उसके प्रति जलन की भावना; अगर किसी को ज़्यादा मिल गया है, तो उसकी तुलना में अपने कम मिलने का एहसास; अगर किसी के खिलाफ़ शिकायत का कोई कारण है, तो उसके प्रति गुस्सा और बदले की भावना वगैरह। इस तरह की भावनाएँ बेहद आम हैं और हर समाज में, यहाँ तक कि हर घर में मौजूद हैं, लेकिन सामान्य हालात में ये दिलों में दबी रहती हैं। लोगों की दिनचर्या भी इनके उभरने में एक रुकावट का काम करती है। हालाँकि अगर कोई असामान्य घटना हो जाए, तो ये भावनाएँ सामने आ जाती हैं।

असल में, सामाजिक शांति इन नकारात्मक भावनाओं को दबा हुआ रहने देने का नाम है। इसके उलट सामाजिक अशांति का मतलब है कि किसी मूर्खता के कारण इन छुपी हुई भावनाओं को भड़का दिया जाता है।

यह जीवन का एक अटल सच है। आज की प्रतिस्पर्धी दुनिया में, कोई भी समाज, यहाँ तक कि एक परिवार भी इससे मुक्त नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में जीने का सिर्फ़ एक ही रहस्य है और वह यह है कि सब्र और समझदारी के रास्ते को अपनाकर इन दबी हुई भावनाओं को दबा हुआ ही रहने दिया जाए। इनके सामने आने को हर क़ीमत पर रोका जाना चाहिए।

यही जीने का वह रहस्य है, जिसे एक विचारक ने इन शब्दों में व्यक्त किया है— “इस दुनिया में हर किसी के पास दूसरों की खामियों को दफ़नाने के लिए एक विशाल क़ब्रिस्तान होना चाहिए।”



सब्र की ज़रूरत



मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब के अपने बाप शाहजहाँ से सियासी मतभेद थे। सन् 1658 में उसने शाहजहाँ को तख़्त से उतारकर आगरा के क़िले में कैद कर दिया। इसी हालत में शाहजहाँ 1666 में 74 साल की उम्र में मर गया। कैद के वक़्त उसकी बेटी जहाँआरा भी क़िले में उसके साथ रहती थी। शाहजहाँ आगरा के क़िले से ताजमहल को देखा करता था और शेर पढ़ता रहता था।

डॉक्टर आर.सी. मजूमदार, डॉक्टर एच.सी. रायचौधरी और डॉक्टर के.के. दत्ता ने अपनी किताब ‘एन एडवांस्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया’ में शाहजहाँ के आखिरी हालात के बारे में लिखा है कि उसने मज़हब में दिल को सुकून देने वाली चीज़ पा ली और सब्र का तरीक़ा अपनाते हुए अपने आखिरी दिन अपनी बेटी जहाँआरा के साथ ध्यान और आराधना करने में बिता दिए, यहाँ तक कि वह मर गया।

कहते हैं कि एक लंबे वक़्त के बाद शाहजहाँ कैद की ज़िंदगी से बेचैन हो उठा। उसने औरंगज़ेब के पास एक शेर लिखकर भेजा, जिसका मतलब यह था—

“या तो हमें मार डालो या फिर हमारा मोल चुकाओ या फिर हमें इस क़फ़स से आज़ाद कर दो।”

औरंगज़ेब ने भी जवाब में एक दूसरा मिसरा लिखकर शाहजहाँ के पास भेज दिया, जो यह था— “चतुर चिड़िया जब जाल में फँस जाए, तो उसे सब्र से काम लेना चाहिए।”

हो सकता है कि यह वाक़या न हुआ हो, बस एक क़िस्सा हो, मगर यह अपने आपमें एक समझदारी की बात है। कभी-कभी ऐसा होता है कि इंसान किसी ग़लती या हादसे की वजह से ऐसे मुश्किल हालात में फँस जाता है, जो उसके लिए आम तौर पर बिलकुल बरदाश्त के बाहर होता है, लेकिन अब जहाँ वह

फँस गया है, वहाँ से फ़ौरन निकलना असल में मुमकिन नहीं होता। ऐसी हालत में घबराकर कोई क्रदम उठाना एकदम बेवकूफी है। जाल में फँसने के बाद अगर चिड़िया पंख फ़ड़फ़ड़ाए, तो वह और ज़्यादा फँसती चली जाती है। ठीक उसी तरह किसी नाज़ुक हालात में फँस जाने के बाद अगर इंसान बेसब्री के साथ कोई हरकत करे, तो वह उसमें और भी ज़्यादा उलझ जाएगा।

समझदारी का यह नियम इंसानों के लिए भी है और क्रौमों के लिए भी।

बिना प्रतिक्रिया दिए

एक हिंदी कहावत है— “जो शब्द की चोट सह जाए, वही गुरु बनने लायक है और दूसरे लोग उसके सेवक बनकर रहें।”

शब्द सुनने से न तो किसी का खून बहता है, न ही किसी के हाथ-पैर टूटते हैं, मगर शब्द की चोट सहना बेशक किसी इंसान के लिए सबसे मुश्किल काम है। शब्द की चोट वही इंसान झेल सकता है, जिसके अंदर गहराई हो, जो बाहरी सतह से ऊपर उठकर चीज़ों को देख सके।

श्री कृष्णमूर्ति (उम्र 90 साल) भारत के मशहूर विचारक हैं। वे बहुत अच्छी अंग्रेज़ी बोलते हैं, इसलिए उनके भाषणों में अंग्रेज़ी जानने वाले हजारों लोग शामिल होते हैं। भारत के अलावा पश्चिमी देशों में भी उनके भाषणों को दिलचस्पी से सुना जाता है।

हालाँकि कृष्णमूर्ति को यह शिकायत है कि कोई भी उनके विचारों को व्यवहार में नहीं लाता। मद्रास के एक भाषण में उन्होंने कहा, “50 साल से मैं दुनियाभर में घूम-घूमकर अपने विचार पेश कर रहा हूँ, मगर लोगों के अंदर कोई व्यावहारिक बदलाव नहीं आता।” उन्होंने भीड़ से सवाल किया, “क्या आप लोग अपने आपको बदलेंगे?” फिर खुद ही जवाब दिया, “आप लोग मेरी बातें सुनकर वापस चले जाएँगे और ऐसे ही करते रहेंगे, जैसे अब तक कर रहे थे।”

यह सुनकर भीड़ में से एक आदमी उठा और बहुत गुस्से में बोला, “हर साल आप यही कहते हैं कि हम आपका साथ नहीं देते। फिर आप हमें अपनी

बात क्यों सुनाते रहते हैं?” इसके जवाब में श्री कृष्णमूर्ति ने बहुत ही नरमी के साथ कहा—

“सर, क्या आपने कभी गुलाब से पूछा है कि वह क्यों खिलता है?”

(हिंदुस्तान टाइम्स; 24 फ़रवरी, 1984)

आलोचनात्मक बात सुनकर अकसर ऐसा होता है कि इंसान गुस्से में भर जाता है, मगर ऐसे मौक़े पर गुस्सा करना खुद अपना ही नुक़सान करना है। अगर आप सामने वाले की आलोचना सुनकर गुस्सा हो जाएँ, तो आप सिर्फ़ तेज़ और तलख़ शब्द बोलेंगे, लेकिन अगर ऐसे मौक़े पर आप अपनी भावनाओं पर क़ाबू रख लें, तो आप ऐसी बात कह सकते हैं, जो दिल में उतर जाए और सामने वाले को चुप करा दे।



आसानी हमेशा मुश्किलों के बाद आती है



गर्मी के मौसम में जब धूल-भरी आँधी उठती है, तो ऐसा लगता है कि यह एक मुसीबत के सिवा और कुछ नहीं है, लेकिन रूस के मौसम वैज्ञानिकों ने कराकोरम के रेगिस्तानों में रिसर्च करने के बाद बताया है कि ये धूल-भरी आँधियाँ ज़मीन पर मौसम की तपिश को कंट्रोल करने का एक कुदरती तरीक़ा हैं।

जब ये आँधियाँ चलती हैं, तो धूल ऊपर उठकर हवा में एक परत बना लेती है, जैसे एक चादर ओढ़ा दी गई हो। इस तरह ये आँधियाँ ज़मीन की सतह को तेज़ गर्मी से बचाती हैं। रूसी वैज्ञानिकों ने कई उपकरणों और हवाई जहाज़ों का इस्तेमाल करके इन आँधियों के बारे में अध्ययन किया है। उनका कहना है कि तेज़ गर्मी के दिनों में भी रेगिस्तान की जलती हुई सतह ठंडी हो जाती है, जब ये धूल-भरी आँधियाँ चलना शुरू होती हैं।

धूल के ये बादल छोटी जगह पर भी छा सकते हैं और बहुत दूर तक भी फैल सकते हैं, जैसे अरब से लेकर दक्षिण अमेरिका तक और मध्य एशिया से लेकर आर्कटिक सागर तक।

कुदरत का सिस्टम ऐसा बना हुआ है कि हर फ़ायदेमंद चीज़ किसी मेहनत-भरे प्रोसेस के बाद ही मिलती है। यह एक सीख है, जो हमें बताती है कि जब हम अपनी जिंदगी के लिए कोई प्लान बनाएँ, तो यह बात जरूर याद रखें कि मनचाहा नतीजा पाने के लिए हमें मेहनत और संघर्ष के एक दौर से गुज़रना ही होगा।

दुनिया को बनाने वाले ने इसे इसी तरह से बनाया है और इसके साथ तालमेल बैठकर ही हम कोई अच्छा नतीजा हासिल कर सकते हैं। अगर हम यह चाहें कि हमें 'आँधी' की तकलीफ़ न झेलनी पड़े और बिना इसके ही हमारे सिर पर ठंडे बादल का साया मिल जाए, तो ऐसा होने के लिए हमें एक दूसरी ही दुनिया बनानी पड़ेगी।

यह एक सच्चाई है कि ज्यादातर मामलों में नाकामी की वजह यह होती है कि इंसान तुरंत कामयाबी चाहता है। 'शॉर्टकट' शब्द सड़कों और रास्तों की दुनिया के लिए तो ठीक है, लेकिन जिंदगी की जद्दोजहद में 'शॉर्टकट' जैसी कोई चीज़ नहीं होती।

सूरत में एक हीरे की दुकान है, जो दूसरी मंज़िल पर है। एक जवान लड़का उस दुकान में घुसा। उसने एक हीरा चुरा लिया और उसे लेकर भागना चाहता था, लेकिन दुकान के लोगों को शक हो गया। उन्होंने तुरंत सीढ़ियों का रास्ता बंद कर दिया और लड़के से सवाल-जवाब शुरू कर दिया।

लड़के ने देखा कि सीढ़ियों से भागना अब मुमकिन नहीं है। वह तेज़ी से पास की खिड़की में गया और वहाँ से नीचे कूद गया। ऊपर से देखने में लगा कि उसने भागने के लिए छलाँग लगाई, लेकिन दूसरी मंज़िल से जब वह सड़क पर गिरा, तो उसे इतनी गहरी चोट आई कि वह वहीं पर मर गया।

(टाइम्स ऑफ़ इंडिया; 21 जनवरी, 1980)

अगर किसी को 'सीढ़ी' का रास्ता बंद नज़र आए, तो वह 'खिड़की' से कूदकर सड़क पर नहीं पहुँच सकता। ऐसी छलाँग उसे क़ब्र में पहुँचाएगी, सड़क पर नहीं। ऊपर से देखने में यह एक मूर्ख लड़के की कहानी लगती है, लेकिन बहुत-से समझदार लोग भी अपनी जिंदगी में ठीक यही तरीक़ा अपनाते हैं और आख़िरकार उसी अंजाम से दो-चार होते हैं, जिससे वह जवान लड़का हुआ।



अपनी कमियाँ पहचानो



वह बुढ़ापे की उम्र में था, लेकिन उसने शादी नहीं की थी। ऐसा इसलिए था, क्योंकि वह एक आदर्श जीवनसाथी की तलाश में था। लोगों ने उससे पूछा, “क्या आपको पूरी जिंदगी में कोई ऐसी महिला नहीं मिली, जो आदर्श जीवनसाथी बन सकती?”

उसने जवाब दिया, “एक महिला ऐसी जरूर मिली थी, मगर मुश्किल यह थी कि वह भी अपने लिए एक आदर्श पति की तलाश कर रही थी... और बदकिस्मती से मैं उसके मानदंडों पर खरा नहीं उतर सका।”

आम तौर पर लोग दूसरों की कमियाँ जानने में माहिर होते हैं, इसीलिए उनका किसी के साथ निबाह नहीं हो पाता है। अगर इंसान अपनी खुद की कमियाँ पहचान ले, तो उसे पता चलता है कि वह भी उसी इंसानी सतह पर खड़ा है, जहाँ वह दूसरों को खड़ा देखता है। अपनी कमियों का एहसास इंसान के अंदर विनम्रता और एकता की भावना पैदा करता है।

इसके उलट अगर वह सिर्फ दूसरों की कमियाँ ही जानता हो, तो इससे उसमें घमंड पैदा होगा और किसी के साथ निबाह कर पाना उसके लिए मुश्किल हो जाएगा।

मनोविज्ञान के अध्ययन से पता चलता है कि सारे गुण एक ही इंसान में नहीं मिलते। एक व्यक्ति में एक गुण होता है, तो दूसरे में कोई दूसरा गुण। इसके अलावा जब किसी व्यक्ति में कोई खास गुण होता है, तो उसी के साथ कुछ और विशेषताएँ भी अपने आप पैदा हो जाती हैं, जो उस मुख्य गुण का एक साइड इफ़ेक्ट होती हैं।

मिसाल के तौर पर—

- अगर कोई इंसान बहादुर है, तो उसमें एक हद तक जोश भी होगा।
- अगर कोई इंसान नेक है, तो वह नर्म दिल भी होगा।
- अगर कोई इंसान संवेदनशील है, तो उसे गुस्सा भी जल्दी आएगा।
- अगर कोई इंसान होशियार है, तो उसमें आलोचना करने का स्वभाव भी होगा।
- अगर किसी इंसान में व्यावहारिक कौशल ज्यादा है, तो हो सकता है कि उसकी बौद्धिक क्षमता उतनी न हो वगैरह-वगैरह।

ऐसी हालत में काम की बात सिर्फ़ एक ही है— अगर हम किसी के ‘अच्छे पहलू’ से फ़ायदा उठाना चाहते हैं, तो हमें उसके ‘बुरे पहलू’ को नज़र-अंदाज़ करना चाहिए। यही एकमात्र तरीक़ा है, जिससे हम किसी की क़ाबिलियत को अपने काम का बना सकते हैं।

चाहे पति-पत्नी का रिश्ता हो, मालिक और नौकर का रिश्ता हो या दुकानदार और ग्राहक का रिश्ता हो, हर जगह इस सिद्धांत को याद रखने की ज़रूरत है। अगर हमें ‘फूल’ चाहिए, तो हमें ‘काँटा’ भी सहना पड़ेगा। जिसमें काँटे को सहने की क्षमता नहीं, उसके लिए इस दुनिया में फूल का मालिक बनना भी मुक़द्दर में नहीं है।

यह एक सच्चाई है कि अकेला इंसान कोई बड़ा काम नहीं कर सकता। कुछ बड़ा हासिल करने के लिए ज़रूरी है कि कई लोगों की मेहनत और क़ाबिलियत उस काम के पीछे लगे। यही ज़रूरत है, जिसने कंपनियों (जॉइंट स्टॉक कंपनी) की अवधारणा को जन्म दिया है।

हालाँकि कई लोगों के साथ मिलकर किसी मक़सद को पाने की कोशिश तभी मुमकिन है, जब उन लोगों के अंदर सब्र और दिल की विशालता हो। उन्हें एक-दूसरे को सहना चाहिए। उन्हें छोटी-छोटी बातों पर एक-दूसरे से नहीं उलझना चाहिए। बुरी बातों को याद रखने के बजाय उन्हें भूलने की कोशिश करनी चाहिए। ऊँचे मानक रखना बहुत अच्छी बात है, मगर जब वे मानक हासिल करना मुमकिन न हो, तो व्यावहारिक बने रहना सबसे अच्छा तरीक़ा है।



सब्र की ज़मीन पर



हरा-भरा पौधा मिट्टी के खेत में उगता है, सोने-चाँदी की थाली में नहीं। यह बात सिर्फ़ खेती-बाड़ी तक सीमित नहीं है, बल्कि यह ज़िंदगी का एक यूनिवर्सल नियम है। ईश्वर ने हर चीज़ के पैदा होने का एक ख़ास सिस्टम बना दिया है। उसी ख़ास सिस्टम के तहत वह चीज़ अस्तित्व में आती है। किसी और तरीक़े से हम उसे पैदा नहीं कर सकते।

इंसानी जिंदगी का भी यही हाल है। जिंदगी एक ऐसा इम्तिहान है, जो सब्र की ज़मीन पर देना पड़ता है। जिंदगी एक ऐसी फ़सल है, जो सब्र की ज़मीन पर उगती है। ईश्वर ने तय कर दिया है कि जिंदगी की बुनियाद सब्र की ज़मीन पर ही रखी जाएगी और अब क्रयामत तक यही होना है। हम इसके लिए कोई दूसरी ज़मीन नहीं बना सकते।

सब्र कोई नकारात्मक चीज़ नहीं है। यह पूरी तरह एक सकारात्मक रवैया है। सब्र का मतलब है—

- बिना सोचे-समझे आगे बढ़ने के बजाय समझदारी से अपना काम करना।
- भावनात्मक प्रतिक्रिया देने के बजाय होशियारी से अपनी योजना बनाना।
- वक्त की मायूसी में भी भविष्य की उम्मीद को देख लेना।
- हालात से धिरकर राय बनाने के बजाय हालात से ऊपर उठकर राय बनाना।

अगर आप एक बीज को सोने की प्लेट में रख दें, तो वह अपनी जिंदगी के स्रोतों से जुड़ नहीं पाता। वह जिंदगी के साधनों से भरी हुई दुनिया में बे-सहारा पड़ा रह जाता है। उगने की सारी क्षमता रखते हुए भी वह उग नहीं पाता।

इंसान का भी यही हाल है। अगर वह बेसब्री की हालत में हो, तो वह ईश्वर की हरी-भरी दुनिया में एक सूखे टूँठ की तरह पड़ा रह जाएगा, लेकिन जैसे ही वह सब्र अपनाता है, वह अचानक ईश्वर की ज़मीन में अपनी जड़ें पा लेता है और बढ़ते-बढ़ते आख़िरकार पूरा पेड़ बन जाता है।

जब इंसान सही मायने में सब्र दिखाता है, तो वह इंसानों के स्तर पर जीने के बजाय ईश्वर के स्तर पर जीने लगता है। दुनिया की तंगियों से गुज़रकर वह परलोक की विशालता में पहुँच जाता है। वह बेमानी जिंदगी के दौर से निकलकर मायने वाली जिंदगी के दौर में दाख़िल हो जाता है।

सब्र वाला इंसान ही सच्चा मोमिन इंसान है। उसी के लिए वह हमेशा रहने वाला इनाम तय किया गया है, जिसका दूसरा नाम स्वर्ग है।



बदला नहीं



एक साहब ट्रांसपोर्ट का काम करते हैं। उनकी एक गाड़ी थी, जो कागज़ों में क़ानूनी तौर पर किसी दूसरे आदमी के नाम थी। कुछ दिनों बाद उस आदमी की नीयत ख़राब हो गई। उसने सोचा कि कागज़ात में क़ानूनी दर्जगी का फ़ायदा उठाकर गाड़ी पर क़ब्ज़ा कर ले या उनसे कोई बड़ी रक़म ऐंठ ले।

जब यह बात उस ट्रांसपोर्ट मालिक के सामने आई, तो उसके शरीर में आग-सी लग गई। वह अपने उस 'दोस्त' का जानी दुश्मन बन गया। अब उसका दिमाग़ हर वक़्त एक ही सोच में रहता कि इस आदमी को कैसे मरवाया जाए। बदले की भावना ने उसके दिमाग़ को अपराधों का कारख़ाना बना दिया। अब उसे न अपने कारोबार की तरक्की की फ़िक्र थी, न अपने घर को बनाने की। सारी फ़िक्र इसी बात की थी कि उस आदमी को किसी-न-किसी तरह ख़त्म कर दिया जाए।

इसी हालत में छह महीने बीत गए। आख़िरकार एक ऐसा वाक़या हुआ, जिसने उसकी ज़िंदगी का रूख़ ही बदल दिया। वह एक जगह पर संयोग से गया हुआ था। एक सड़क से गुज़रते वक़्त उसके कान में कुछ आवाज़ें आईं उसे लगा कि यहाँ कोई भाषण हो रहा है। वह जलसा-गाह की तरफ़ मुड़ गया और वहाँ बैठकर भाषण सुनने लगा। भाषण देने वाला कह रहा था—

“बदला लेने से पहले सोच लो कि बदले का भी बदला लिया जाएगा।”

भाषण की सादगी ने उसे अपनी तरफ़ खींच लिया। वह बहुत ग़ौर से वक्ता की बातें सुनता रहा, जो बार-बार अलग-अलग उदाहरणों से अपनी बात साफ़ कर रहा था। भाषण के बाद जब वह जलसा-गाह से उठा, तो वह दूसरा इंसान बन चुका था। उसने तय किया कि वह बदले के ख़याल को ख़त्म कर देगा और उस आदमी के मामले को ईश्वर पर छोड़कर अपने कारोबार की तरक्की में लग जाएगा।

ट्रांसपोर्ट मालिक को अब तक काम करने का सिर्फ़ 'बरबाद करने वाला तरीक़ा' पता था। अब उन्होंने काम करने का 'बनाने वाला तरीक़ा' ढूँढ़ लिया। उन्हें पता चला कि काम करने का वही एक अंदाज़ नहीं है, जिस पर दूसरे लोग अकसर चल रहे हैं। काम करने का एक और अंदाज़ भी है और वह है... दूसरों के पीछे भागने के बजाय अपने खुद के पीछे भागना।

उस आदमी ने अब इस दूसरे तरीके को अपना लिया। 6 सितंबर, 1983 की एक मुलाकात में उन्होंने कहा कि “अब वे खुद को ज्यादा शांत भी पाते हैं और ज्यादा कामयाब भी।”

एक अनिवार्य बुराई

श्री डी.के. दास दिल्ली के सबसे वरिष्ठ आई.ए.एस. अधिकारियों में से एक थे। दिल्ली की एक पॉश कॉलोनी ‘मधुवन’ में उनका एक बहुत बड़ा मकान था, लेकिन 13 अगस्त, 1985 को उन्होंने अपने गले में फंदा डालकर खुदकुशी कर ली। उनकी पत्नी श्रीमती हीना दास दोपहर एक बजे उनके कमरे में गईं, तो उनकी लाश छत के पंखे से लटकती हुई मिली। मौत के वक्त श्री दास की उम्र 56 साल थी। उन्हें दिल्ली टूरिज्म डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन का चेयरमैन बनाया गया था और वे आई.ए.एस. के स्केल की आखिरी तनख्वाह पा रहे थे। इतना सब कुछ होने के बावजूद श्री दास ने खुदकुशी क्यों की? इस मामले में हम दो अखबारों की रिपोर्ट से कुछ वाक्य यहाँ लिख रहे हैं। पहला हिंदुस्तान टाइम्स (4 अगस्त) का है और दूसरा टाइम्स ऑफ़ इंडिया (4 अगस्त) का है—

“श्री दास के एक बिज़नेसमैन दोस्त ने बताया कि मृत अधिकारी अपनी कई नियुक्तियों से नाखुश थे। उन्होंने कहा कि श्री दास अकसर कहा करते थे कि उन्हें हमेशा महत्वहीन और मामूली पद दिए जाते हैं। वे इसलिए भी उदास रहते थे, क्योंकि उन्हें लगता था कि दिल्ली प्रशासन में उन्हें उनका हक नहीं दिया जा रहा है।”

इस दुनिया में कोई भी इंसान चाहे अल्पसंख्यक समुदाय का हो या बहुसंख्यक समुदाय का, चाहे छोटा कर्मचारी हो या बड़ा अधिकारी— हर हालत में उसे कहीं-न-कहीं भेदभाव का सामना करना पड़ता है। भेदभाव इस दुनिया की एक अनिवार्य बुराई है। इस दुनिया में कोई भी इंसान इस एहसास से नहीं बच सकता कि उसे वह मुकाम नहीं दिया गया, जिसका वह हकदार था।

ऐसी हालत में समझदारी यही है कि इस हकीकत को स्वीकार कर लिया जाए, क्योंकि इसे स्वीकार न करना इंसान को या तो निराशा की तरफ़ ले जाता है या फिर खुदकुशी की तरफ़।

छलाँग नहीं

एक बार एक जवान लड़का एक बुजुर्ग गुरु के पास आया और उसने पूछा, “मुझे ज्ञान (enlightenment) पाने में कितना वक्त लगेगा?”

गुरु ने कहा, “दस साल।”

जवान लड़का बोला, “इतना लंबा वक्त?”

गुरु ने कहा, “नहीं, मैंने ग़लती की। तुम्हें इसमें बीस साल लगेंगे।”

जवान लड़के ने पूछा, “आप वक्त बढ़ाते क्यों जा रहे हैं?”

गुरु ने जवाब दिया, “बात को समझो, तुम्हारे मामले में शायद तीस साल लग जाएँगे।”

ऊपर लिखा हिस्सा फ़िलिप कैपलियू के एक लेख से लिया गया है।

जो मक़सद आम रफ़्तार से दस साल में हासिल होता हो, अगर आप उसे दस दिन में हासिल करना चाहें, तो इसका मतलब है कि आप छलाँगों के ज़रिए अपना सफ़र तय करना चाहते हैं और छलाँगों के ज़रिए सफ़र हमेशा असली सफ़र को और लंबा बना देता है।

छलाँग लगाने वाले का अंजाम हमेशा यही होता है कि वह किसी चट्टान से टकरा जाता है या किसी गड्ढे में जा गिरता है। इसका नतीजा यह होता है कि उसे वापस लौटकर किसी अस्पताल में भर्ती होना पड़ता है, जहाँ वह लंबे वक्त तक इलाज के लिए पड़ा रहता है। अगर वह आम रफ़्तार से चलता, तो वक्त पर अपनी मंज़िल तक पहुँच जाता, लेकिन छलाँग ने उसे पीछे धकेल दिया और उसका सफ़र और लंबा कर दिया।

किसी काम में देर करना जितना ग़लत है, उतना ही ग़लत यह भी है कि आप उसे जल्दी पूरा करना चाहें। हर काम की पूर्ति का एक वक़्त होता है और सही पूर्ति वही है, जो अपने वक़्त पर हो। देर करना अगर आलस है, तो जल्दी करना बेसब्री है और ईश्वर की इस मज़बूत दुनिया में दोनों आख़िरकार जहाँ पहुँचते हैं, वह नाकामयाबी के सिवा कुछ नहीं है।



हौसला और जज़्बा



नोबेल पुरस्कार विजेता प्रोफ़ेसर अब्दुससलाम ने जनवरी, 1986 में भारत के कई शहरों का दौरा किया। इस दौरान उनके भाषणों की रिपोर्टें अख़बारों में छपती रहीं। उनके एक भाषण की रिपोर्ट में ये शब्द शामिल थे—

“दक्षिण कोरिया की मिसाल देते हुए उन्होंने कहा कि लगभग 15 साल पहले वहाँ और भारत की प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय बराबर थी, लेकिन अब दक्षिण कोरिया की मेहनत के नतीजे में उनकी प्रति व्यक्ति आय भारत से कई गुना ज़्यादा हो चुकी है। प्रोफ़ेसर सलाम ने बताया कि दक्षिण कोरिया की एक टीम ट्राएस्टे (इटली) आई थी, जहाँ वे रहते हैं और यह जानना चाहती थी कि नोबेल पुरस्कार कैसे जीते जाते हैं। उन्होंने कहा कि यही वह जज़्बा है, जो तीसरी दुनिया के लोगों में पैदा किया जाना चाहिए।” (द टाइम्स ऑफ़ इंडिया; 16 जनवरी, 1986)

तलाश और कोशिश का यही जज़्बा सारी तरक्की की बुनियाद है, चाहे वह इंसान की तरक्की का मामला हो या देश की तरक्की का और चाहे उसका ताल्लुक दुनिया की कामयाबियों से हो या आख़िरत की कामयाबियों से। हर तरक्की उन्हीं लोगों के लिए है, जो अपने अंदर तलाश और जिज्ञासा का कभी न ख़त्म होने वाला जज़्बा रखते हैं।

तलाश का जज़्बा यह बताता है कि इंसान के अंदर ठहराव पैदा नहीं हुआ है और ठहराव सारी तरक्की का दुश्मन है। जहाँ ठहराव आ जाए, वहाँ तरक्की का सिलसिला ज़रूर रुक जाएगा। ठहराव की हालत आने के बाद इंसान ‘और’ पाने

की चाहत खो देता है और जिससे 'और' पाने का जुनून सिर से उतर जाए; वह जहाँ है, वहाँ भी टिक नहीं पाएगा, बल्कि पीछे जाने लगेगा, यहाँ तक कि सबसे आखिरी पंक्ति में पहुँच जाएगा।

सही सबक

शफ़ीक़ बलखी और इब्राहीम अदहम दोनों एक ही ज़माने में थे। कहा जाता है कि एक बार शफ़ीक़ बलखी अपने दोस्त इब्राहीम अदहम के पास आए और बोले, “मैं एक व्यापारिक यात्रा पर जा रहा हूँ। सोचा कि जाने से पहले आपसे मिल लूँ, क्योंकि लगता है कि सफ़र में कई महीने लग जाएँगे।”

इस मुलाक़ात के कुछ दिन बाद इब्राहीम अदहम ने देखा कि शफ़ीक़ बलखी दोबारा मस्जिद में मौजूद हैं। उन्होंने पूछा, “तुम सफ़र से इतनी जल्दी कैसे लौट आए?”

शफ़ीक़ बलखी ने बताया, “मैं व्यापार के सफ़र पर निकला और एक जगह पहुँचा। वह एक सुनसान जगह थी। मैंने वहाँ पड़ाव डाला। वहाँ मैंने एक चिड़िया देखी, जो उड़ने की ताक़त से महरूम थी। मुझे उसे देखकर दया आ गई। मैंने सोचा, ‘इस सुनसान जगह पर यह चिड़िया अपना खाना कैसे ढूँढ़ती होगी?’ मैं इसी सोच में था कि तभी एक दूसरी चिड़िया आई। उसकी चोंच में कुछ दबा हुआ था। वह उस बेबस चिड़िया के पास उतरी, तो उसकी चोंच की चीज़ उसके सामने गिर गई। बेबस चिड़िया ने उसे उठाकर खा लिया। इसके बाद आने वाली ताक़तवर चिड़िया उड़ गई।

“यह नज़ारा देखकर मैंने कहा, ‘अगर ईश्वर एक चिड़िया का रिज़क़ इस तरह पहुँचा सकता है, तो मुझे रोज़ी के लिए शहर-दर-शहर भटकने की क्या ज़रूरत है?’ इसलिए मैंने आगे जाने का इरादा छोड़ दिया और वहीं से वापस चला आया।”

यह सुनकर इब्राहीम अदहम बोले, “शफ़ीक़, तुमने अपने आपको उस बेबस चिड़िया की तरह क्यों बना लिया? तुमने यह क्यों नहीं चाहा कि तुम उस चिड़िया

की मिसाल बनो, जो अपने परों की ताकत से खुद भी खाती है और दूसरे अपनों को भी खिलाती है?”

शफ़ीक़ बलखी ने यह सुना, तो इब्राहीम अदहम का हाथ चूम लिया और कहा, “अबू इस्हाक़, तुमने मेरी आँखों का पर्दा हटा दिया। वही बात सही है, जो तुमने कही।”

वाक़या एक ही है, लेकिन उससे एक इंसान ने बेबसी का सबक़ लिया और दूसरे इंसान ने हिम्मत का सबक़ लिया। ठीक़ इसी तरह हर वाक़ये में एक साथ दो पहलू मौजूद होते हैं। यह इंसान का इम्तिहान है कि वह किसी वाक़ये को किस नज़रिये से देखता है। एक नज़रिये से देखने पर एक चीज़ बुरी नज़र आती है, जबकि दूसरे नज़रिये से देखने पर वही चीज़ अच्छी बन जाती है। एक तरफ़ से देखने पर एक वाक़ये में नेगेटिव सबक़ होता है और दूसरी तरफ़ से देखने पर पॉज़िटिव सबक़ होता है।

ख़ुदकुशी

श्री आइना देव अंगाडी (बैंगलोर) उस वक़्त केंब्रिज में पढ़ रहे थे, जब पंडित जवाहरलाल नेहरू वहाँ पढ़ने गए थे। उनका और नेहरू जी का बहुत घनिष्ठ साथ था। इसलिए उनके बेटे श्री डेरियन अंगाडी की परवरिश ऐसे हुई कि वे बचपन से नेहरू जी के क्रिस्से सुनते थे और उनकी नक़ल किया करते थे। श्री डेरियन अंगाडी बाद में फ़िल्म एक्टर बन गए।

लॉर्ड एटनबरो ने लगभग 25 करोड़ रुपये के ख़र्च से ‘गांधी’ नाम की मशहूर फ़िल्म बनाई थी। शुरुआत में जब इस फ़िल्म के कलाकारों की तलाश हुई, तो जवाहरलाल नेहरू की भूमिका निभाने के लिए श्री डेरियन अंगाडी को उपयुक्त समझा गया और उन्हें इस काम के लिए चुन लिया गया, मगर छह महीने बाद उन्हें सूचना दी गई कि उनका नाम कलाकारों की सूची से हटा दिया गया है और श्री रोशन सेठ उनकी जगह पंडित नेहरू की भूमिका निभाएंगे।

“यह डेरियन अंगाडी को भूमिका दिए जाने के छह महीने बाद हुआ, जिस दौरान उन्होंने अपनी भूमिका को परफेक्ट बनाने के लिए कड़ी मेहनत की थी।” (हिंदुस्तान टाइम्स; 16 सितंबर, 1984)

श्री डेरियन को इस बात का इतना सदमा लगा कि उन्होंने 5 दिसंबर, 1981 को खुदकुशी कर ली।

उस व्यक्ति ने खुदकुशी क्यों की? इसलिए, क्योंकि उसने छह महीने तक मेहनत करके अपने अंदर जो क्राबिलियत पैदा की थी, उसे इस्तेमाल का वह मौक़ा नहीं मिला, जो वह चाहता था। इससे उसके अंदर निराशा पैदा हुई और उसने अपने आपको ख़त्म कर लिया, लेकिन इंसान अपनी मेहनत से अपने अंदर जो क्राबिलियत पैदा करता है, वह क्राबिलियत अपनी कीमत ख़ुद है। अगर तुरंत उसे इस्तेमाल करने का मौक़ा न मिले, तब भी वह एक सुरक्षित ख़ज़ाना है। उसे यह नहीं सोचना चाहिए कि उसकी मेहनत बेकार चली गई। उसकी मेहनत से पैदा हुई ख़ूबी वैसे ही उसके पास मौजूद रहती है और जल्द ही इंसान कोई दूसरा मौक़ा पा लेता है, जहाँ वह उसे इस्तेमाल करके उसकी पूरी कीमत वसूल कर सकता है।

दुनिया की लीडरशिप का राज

4 नवंबर, 1847 की तारीख थी। स्कॉटलैंड के एक डॉक्टर के कमरे में जब उसका नौकर अंदर आया, तो उसने देखा कि डॉक्टर और उसके दो साथी अपनी कुर्सियों से गिरकर फ़र्श पर उलटे मुँह बेहोश पड़े हैं। नौकर ने समझा कि इन लोगों ने शायद आज कोई तेज़ शराब पी ली है, इसलिए उनकी यह हालत हुई है। उसने उनके कपड़े ठीक किए और चुपचाप बाहर चला गया, लेकिन बात दूसरी थी। ये असल में सर जेम्स सिंपसन (1811-1870) और उनके दो असिस्टेंट थे। उन्होंने इंसानी बदन पर क्लोरोफ़ॉर्म के असर का टेस्ट करने के लिए पहली बार इसे साँस के ज़रिए अपने अंदर ले लिया था।

सिंपसन एक ग़रीब नानबाई के सात लड़कों में सबसे छोटा था। चार साल की उम्र में उसने अपने गाँव के स्कूल में पढ़ाई शुरू की। उसने पढ़ाई में इतनी

दिलचस्पी दिखाई कि उसके बाप और छह भाई इस बात पर राजी हो गए कि खुद जरूरत के खर्चे में कटौती करके उसे ऊँची पढ़ाई के लिए शहर भेजें। इस तरह वह एडिनबरा यूनिवर्सिटी पहुँचा और डॉक्टरी की उस वक़्त की सबसे ऊँची डिग्री (एम.डी.) हासिल की।

डॉक्टर सिंपसन को अपनी पढ़ाई के दौरान पता चला कि क्लोरोफ़ॉर्म में बेहोश करने की क्षमता है। उन्होंने इसकी रिसर्च शुरू कर दी। वे इस नतीजे पर पहुँचे कि ऑपरेशन के वक़्त अगर मरीज़ को क्लोरोफ़ॉर्म के ज़रिए वक़्ती तौर पर बेहोश कर दिया जाए, तो उसे चीर-फ़ाड़ के डरावने दर्द से बचाया जा सकता है। उन्होंने अपनी रिसर्च जारी रखी, यहाँ तक कि खुद अपने ऊपर टेस्ट करके यह साबित कर दिया कि क्लोरोफ़ॉर्म को बिना नुक़सान वाली बेहोशी के लिए कामयाबी से इस्तेमाल किया जा सकता है। इस तरह ग़रीब नानबाई के इस लड़के ने इंसानियत को वह चीज़ दी, जिसे डॉक्टर ब्राउन ने इन शब्दों में बयान किया है— “...दुखी इंसानों के लिए ईश्वर का एक बेहतरीन तोहफ़ा।”

आधुनिक दुनिया में पश्चिम की लीडरशिप का राज उसके इसी तरह के बहादुर लोग हैं। उन्होंने खुद को गँवा दिया, ताकि इंसानियत को दे सकें। उन्होंने खुद को ख़तरे में डाला, ताकि दूसरों को ख़तरे से बचा सकें।



एक और तरीक़ा भी है



नेपोलियन (1769-1821) जब पहली क्रैद के बाद एल्बा द्वीप से भागा, तो उसके साथ उसके वफ़ादार सिपाहियों का सिर्फ़ एक छोटा-सा दल था। इस बेदख़ल शहंशाह का मक़सद था कि वह फ़्रांस के तख़्त पर दोबारा क़ब्ज़ा करे, लेकिन पहले ही मुक़ाबले में उसे फ़्रांस के 20 हज़ार सिपाहियों का सामना करना पड़ा।

नेपोलियन दुनिया के सबसे बहादुर इंसानों में से एक था, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया कि अपनी फ़ौज़ी कमी की परवाह किए बिना दुश्मन से भिड़ जाए। जब दोनों तरफ़ के लोग आमने-सामने हुए, तो वह अकेला, बिलकुल बिना हथियारों के, अपने दल से निकला और पूरे इत्मीनान के साथ दुश्मन की कतारों के सामने

जा खड़ा हुआ। उसने अपने कोट के बटन खोले और अपना सीना नंगा कर दिया। इसके बाद जज्बाती अंदाज़ में उसने अपने विरोधी सिपाहियों से, जिनमें से ज्यादातर उसके अधीन रह चुके थे, बात करते हुए कहा—

“तुममें से कौन-सा सिपाही है, जो अपने बाप के नंगे सीने पर गोली चलाने को तैयार हो?”

इसका असर यह हुआ कि हर तरफ़ से “कोई नहीं! कोई नहीं!” की आवाज़ें उठने लगीं। सारे सिपाही विरोधी दल को छोड़कर नेपोलियन के झंडे के नीचे आ गए। नतीजा ज़ाहिर था। अपने संसाधनों की कमी के बावजूद नेपोलियन जीत गया। उसने फ़्रांस के तख़्त पर दोबारा क़ब्ज़ा कर लिया। हालाँकि उस वक़्त वह जिस बदहाली में था, अगर उसने फ़्रांस की फ़ौजों से सीधी लड़ाई की होती, तो शायद मैदान-ए-जंग में उसकी लाश तड़पती नज़र आती।

इंसान के पास चाहे जितना भी सामान हो, लेकिन खतरा आने पर अगर वह घबरा उठे, तो उसकी नसों काम करना बंद कर देंगी। वह उस क़ाबिल नहीं रहेगा कि हालात के बारे में सोच सके और मुक़ाबले के लिए अपनी योजना बना सके। इसके उलट अगर वह ख़तरे के वक़्त अपने दिमाग़ को अलर्ट रखे, तो बहुत जल्द ऐसा होगा कि वह ख़तरे की असली हालत को समझ ले और अपने मौजूदा साधनों को सही वक़्त पर इस्तेमाल करके कामयाब हासिल कर ले।

इतिहास में बार-बार ऐसा हुआ है कि कम तादाद और कम ताक़त वालों ने ज़्यादा तादाद और ज़्यादा ताक़त वालों पर जीत हासिल की है। इसकी वजह यह है कि दुश्मन हमेशा उससे बहुत कम ताक़तवर होता है, जितना वह ऊपर से दिखाई देता है। इस दुनिया का सिस्टम कुछ इस ढंग से बना है कि कोई भी शख्स या ग्रुप, चाहे वह कितना भी ताक़तवर क्यों न हो जाए, उसके अंदर कोई-न-कोई कमज़ोरी मौजूद रहती है। उसी कमज़ोरी का इस्तेमाल करने का नाम ही दुश्मन पर जीत हासिल करना है। किसी शख्स की असली ताक़त उसके विरोधी की कमज़ोरी है और यह ताक़त हमेशा हर किसी को हासिल रहती है, बशर्ते कि वह उस होशियारी का सबूत दे सके कि वह अपने प्रतिद्वंद्वी की कमज़ोरी का इस्तेमाल करना जानता है।



हिम्मत और ज़िद



अहमद और इक्रबाल दोनों एक ही शहर में रहते थे। अहमद ने बी.ए. पास किया था, जबकि इक्रबाल की पढ़ाई सिर्फ़ आठवीं क्लास तक हुई थी।

एक बार इक्रबाल को एक सरकारी दफ़्तर में जाना था। जब वह वहाँ जाने लगा, तो अहमद भी उसके साथ चला गया। दोनों उस दफ़्तर में पहुँचे। अहमद ने देखा कि इक्रबाल लगातार अंग्रेज़ी बोल रहा है। जब दोनों बाहर निकले, तो अहमद ने कहा, “तुम बिलकुल ग़लत-सलत अंग्रेज़ी बोल रहे थे। मैं तो कभी इस तरह बोलने की हिम्मत नहीं करूँगा।”

इक्रबाल को अहमद की इस टिप्पणी से कोई शर्मिंदगी नहीं हुई। उसने पूरे आत्मविश्वास के साथ जवाब दिया—

“ग़लत बोलो, ताकि तुम सही बोलना सीख सको।”

इक्रबाल ने आगे कहा, “तुम भले ही बी.ए. हो और मैं कुछ नहीं, मगर देख लेना, मैं अंग्रेज़ी बोलने लगूँगा और तुम कभी नहीं बोल पाओगे।”

इस वाक्ये को अब 20 साल हो चुके हैं। इक्रबाल की बात सौ फ़ीसदी सही साबित हुई। अहमद आज भी वहीं है, जहाँ वह 20 साल पहले था, मगर इक्रबाल ने इस दौरान ज़बरदस्त तरक्की की। वह अब बेझिझक अंग्रेज़ी बोलता है और बहुत कम लोग ही हैं, जो उसकी बातचीत में भाषा की ग़लती पकड़ पाएँ।

इक्रबाल के इस हिम्मत भरे और ज़िंदादिल अंदाज़ ने उसे बहुत फ़ायदा पहुँचाया। इससे पहले शहर में उसकी एक छोटी-सी दुकान थी, मगर आज उसी शहर में उसकी एक बड़ी फ़ैक्ट्री कायम है। “ग़लत बोलो, ताकि तुम सही बोलना सीख सको”— यह बात उसके अपने मामले में पूरी तरह सच साबित हुई।

इक्रबाल के इस तरीक़े का रिश्ता सिर्फ़ भाषा से नहीं है, बल्कि ज़िंदगी के सारे मामलों से है। आज की दुनिया में वही लोग कामयाब होते हैं, जो हौसले के मालिक हों, जो बिना डरे आगे बढ़ने की हिम्मत रखते हों, जो ख़तरा मोल लेकर क़दम उठाने की ज़ुरत रखते हों। इस दुनिया में ग़लती करने वाला ही सही काम करता है। जिसे यह डर सता रहा है कि कहीं उससे ग़लती न हो जाए, वह ज़िंदगी की दौड़ में पीछे रह जाएगा। उसके लिए आगे की मंज़िल तक पहुँचना मुक़द्दर में नहीं है।



बिना उस्ताद के



एक महिला ने अंग्रेजी पढ़ी थी। उनके पिता एक मौलवी थे। उनके घर में अंग्रेजी का माहौल नहीं था। इसलिए उन्होंने एम.ए. (अंग्रेजी) मुश्किल से थर्ड डिवीजन में पास किया। उनकी इच्छा थी कि उन्हें अंग्रेजी लिखना आ जाए। यह काम एक अच्छे शिक्षक के बिना नहीं हो सकता था, लेकिन उनके घर की आर्थिक हालत इजाजत नहीं देती थी कि वे कोई टीचर रख सकें, जो उन्हें अंग्रेजी लिखना सिखाए।

जहाँ सारे रास्ते बंद नज़र आते हैं, वहाँ भी इंसान के लिए एक रास्ता जरूर खुला होता है। बस शर्त यह है कि इंसान में सच्ची चाहत हो और वह अपना मक़सद हासिल करने में पूरी ताक़त लगा दे।

उस महिला ने बिना टीचर के इस समस्या का एक बहुत कामयाब हल ढूँढ़ निकाला। उन्होंने लंदन से छपी एक किताब पढ़ी। उसमें एक अंग्रेज़ लेखक ने विदेशी अंग्रेजी सीखने वालों को यह सलाह दी थी—

“अंग्रेजी लिखने का अभ्यास ऐसे करो—

- किसी अंग्रेज़ लेखक की लिखी किताब लो।
- रोज़ उसके कुछ पन्ने पहले अपनी भाषा में अनुवाद करो।
- फिर किताब बंद करके अलग रख दो।
- अब अपने अनुवाद को खुद से दोबारा अंग्रेजी में लिखो।
- ऐसा करने के बाद किताब फिर से खोलो और अपने अंग्रेजी अनुवाद की मूल अंग्रेजी लेख से तुलना करो।
- जहाँ भी कोई ग़लती या कमी नज़र आए, उसे अच्छी तरह समझो और किताब को देखकर अपनी लिखावट को खुद सही करो।”

उस महिला ने इस बात को पकड़ लिया। अब वे रोज़ इस पर अमल करने लगीं। वे अंग्रेजी के अख़बार, मैगज़ीन या किताब से कोई लेख लेतीं, उसका उर्दू में अनुवाद करतीं और फिर अपने उर्दू अनुवाद को दोबारा अंग्रेजी में लिखतीं।

फिर वे अपने अंग्रेज़ी लेख की तुलना मूल अंग्रेज़ी लेख से करके देखतीं कि कहाँ-कहाँ फ़र्क है और कहाँ-कहाँ कमी रह गई है।

वे लगभग दो साल तक लगातार यही करती रहीं। इसके बाद उनकी अंग्रेज़ी इतनी अच्छी हो गई कि वे अंग्रेज़ी में आर्टिकल लिखने लगीं। उनके आर्टिकल अंग्रेज़ी पत्रिकाओं में छपने लगे। उनके भाई ने एक एक्सपोर्ट का कारोबार शुरू किया, जिसमें ख़ूब अंग्रेज़ी चिट्ठी-पत्री की ज़रूरत पड़ती थी। उस महिला ने सारा अंग्रेज़ी कॉरस्पॉन्डेस सँभाल लिया और उसे कामयाबी से अंजाम दिया।

जो तजुर्बा इस महिला ने अंग्रेज़ी भाषा के लिए किया, वही तजुर्बा दूसरी भाषाओं के सीखने में भी किया जा सकता है।

हमारी दुनिया की एक अजीबो-ग़रीब ख़ूबी यह है कि इसमें हर कामयाबी तक पहुँचने के कई रास्ते होते हैं। कुछ दरवाज़े अगर बंद भी हो जाएँ, तो भी कुछ दूसरे दरवाज़े खुले रहते हैं, जिनसे होकर इंसान अपनी मंज़िल तक पहुँच सकता है। यह एक सच्चाई है कि आज की दुनिया में किसी की नाकामी की वजह हमेशा उसका हौसला कमज़ोर होना है, न कि मौक़ों की कमी होना।



संदेह



यह बात 1950 के आस-पास की है। मैं आजमगढ़ रेलवे स्टेशन पर टिकट ख़रीद रहा था। ट्रेन प्लेटफ़ॉर्म पर खड़ी थी और छूटने वाली थी कि एक देहाती आदमी टिकट लेने आ गया। जहाँ तक उसे जाना था, उसका किराया कुछ ही रुपये का था। उसने अपनी बँधी हुई मुट्ठी खिड़की के अंदर डालकर खोली, तो उसमें सबसे छोटे सिक्के थे। बाबू ने यह देखकर गुस्सा किया और बोला, “रुपये का नोट ले आओ! इतने सारे छोटे सिक्के हम कब तक गिनते रहेंगे?”

मुझे उस ग़रीब देहाती पर दया आ गई। मैंने तुरंत अपनी जेब से नोट निकाले और उससे कहा, “तुम ये नोट ले लो और सिक्के मुझे दे दो,” लेकिन देहाती ने मेरा प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। उसने शक भरी नज़रों से मेरी तरफ़ देखा और फिर चुपचाप एक तरफ़ चला गया। मैं तेज़ी से चलकर ट्रेन पर सवार हो गया। हालाँकि

मेरी नज़रें उस देहाती का पीछा करती रहीं। मुझे डर है कि वह वक्रत पर टिकट नहीं ले सका और ट्रेन छूट गई।

उस देहाती आदमी ने मेरा प्रस्ताव क्यों नहीं स्वीकार किया? इसकी वजह 'शक' थी। उसने समझा कि मैं उसकी मजबूरी का फ़ायदा उठा रहा हूँ और अपने ख़राब नोटों को उसके सिक्कों से बदलना चाहता हूँ। यह शक उसके दिमाग़ पर इतना छा गया कि वह अपने सिक्के मुझे देने को तैयार नहीं हुआ, यहाँ तक कि उसकी ट्रेन भी छूट गई।

यही आज हमारे समाज की आम हालत है। हर आदमी दूसरे आदमी को शक की नज़र से देखता है। हर कोई दूसरे को भरोसे के लायक नहीं समझता। इसकी वजह से पूरे समाज में एक-दूसरे के ख़िलाफ़ अविश्वास का माहौल बना हुआ है। हर आदमी खुद को कई संभावित फ़ायदों से महरूम किए हुए है, क्योंकि ज़्यादातर काम करने के लिए कई लोगों का सहयोग ज़रूरी होता है और शक के माहौल ने आपस में सहयोग की संभावना ही ख़त्म कर दी है।

शक से शक पैदा होता है और भरोसे से भरोसा पैदा होता है। अगर आप किसी को शक की नज़र से देखने लगेंगे, तो जवाब में उसके अंदर भी आपके ख़िलाफ़ शक पैदा होगा और दोनों के बीच दूरी बढ़ती चली जाएगी। इसके उलट अगर आप उसके साथ भरोसे का व्यवहार करेंगे, तो उसके दिल में भी आपके बारे में भरोसा पैदा होगा और दोनों एक-दूसरे के करीब होते चले जाएँगे।

जो 'इंसान' एक शरीर के अंदर है, वही इंसान दूसरे शरीर के अंदर भी है, लेकिन आदमी अकसर इस ग़लतफ़हमी में पड़ जाता है कि वह खुद कुछ और है और दूसरा कुछ और।



आलोचना



जून, 1983 में ब्रिटेन में आम चुनाव हुआ था। इस चुनाव में कंज़रवेटिव पार्टी जीती और उसकी नेता श्रीमती मागरिट थैचर दोबारा ब्रिटेन की प्रधानमंत्री बनीं।

इस जीत के बाद श्रीमती थैचर ने सबसे पहला काम यह किया कि श्री फ्रांसिस पिम को सरकार से हटा दिया। श्री पिम श्रीमती थैचर की अपनी पार्टी के नेता थे और उनकी कैबिनेट में विदेश मंत्री के पद पर थे।

श्री पिम एक बहुत ऊँचे खानदान से ताल्लुक रखते थे। उन्होंने सरकार में बहुत ऊँचे ओहदे सँभाले थे। फिर भी श्रीमती थैचर ने उन्हें कैबिनेट से क्यों हटाया? इसकी वजह यह थी कि चुनाव के दौरान एक भाषण में श्री पिम ने एक ऐसी बात कह दी, जो श्रीमती थैचर को पसंद नहीं आई।

श्री पिम ने एक चुनावी भाषण में ऑपोज़िशन का जिक्र किया। उन्होंने कहा, “कोई भी सरकार परफ़ेक्ट नहीं होती, इसलिए एक अच्छी सरकार बनाने के लिए मज़बूत विपक्ष का होना बिलकुल ज़रूरी है, जो उसे सही रास्ते पर लाता रहे।”

श्री पिम का यह बयान श्रीमती थैचर के लिए बरदाश्त से बाहर था। उन्होंने तुरंत श्री पिम को मंत्रालय से निकाल दिया।

इंसान की यह आम कमजोरी है कि वह आलोचना बरदाश्त नहीं कर पाता। इस कमजोरी का सबसे बड़ा नुक़सान यह है कि इंसान अच्छे साथियों से महरूम हो जाता है।

कोई भी बड़ा काम बिना योग्य साथियों की मदद के पूरा नहीं हो सकता और योग्य साथियों को अपने साथ रखने का एक ही तरीक़ा है— उनकी आलोचना को सहना, क्योंकि तेज़ दिमाग़ वाले लोग अपनी बौद्धिक आज़ादी को दबाकर नहीं रह सकते। अगर नेता का दिल बड़ा है, तो वह अपने साथियों की बौद्धिक आज़ादी और उनके अलग विचारों को बुरा नहीं मानेगा। इस तरह वह ऐसे सभी लोगों को अपने साथ जोड़े रखेगा।

इसके उलट अगर नेता का दिमाग़ छोटा है, तो वह ऐसे लोगों की क़द्र नहीं कर पाएगा और इसका नतीजा यह होगा कि उसकी पार्टी तीसरे दर्जे के लोगों का झुंड बनकर रह जाएगी, जिसमें न तो कोई बड़ा काम करने की क़ाबिलियत होगी और न ही उसे समझने की समझ।



निराशा नहीं



अब्राहम लिंकन (1809-1865) को 'आधुनिक अमेरिका का निर्माता' कहा जाता है। अमेरिका के राजनीतिक इतिहास में उनका बहुत ऊँचा स्थान है, लेकिन लिंकन को यह कामयाबी एकदम से नहीं मिली। इस कामयाबी तक पहुँचने के लिए उन्हें नाकामयाबी की अनगिनत सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ीं। एक शख्स ने लिंकन की ज़िंदगी को कुछ शब्दों में ऐसे बयान किया है—

“एक आदमी 1831 में कारोबार में नाकामयाब हो गया। उसने 1832 में राजनीति में हार मान ली। 1834 में उसे दोबारा कारोबार में नाकामयाबी मिली। 1841 में उसकी नसों पर बहुत ज़ोर पड़ा। 1843 में वह चुनाव में खड़ा हुआ, मगर हार गया। 1858 के चुनाव में उसे दोबारा हार मिली। लोग उसके बारे में कहने लगे कि यह शख्स कभी कामयाब नहीं होगा, मगर यही वह शख्स है, जो 1860 में अब्राहम लिंकन के नाम से अमेरिका का सोलहवाँ राष्ट्रपति चुना गया। उसकी कामयाबी का राज यह था कि वह जानता था कि हार को कैसे स्वीकार किया जाए, बस वक़्ती तौर पर, हमेशा के लिए नहीं।”

कामयाबी हमेशा नाकामयाबियों के बाद आती है। इस दुनिया में जीत सिर्फ़ उसी शख्स के लिए है, जो हार मान लेने की हिम्मत रखता हो। हर चीज़ की एक क्रीमत होती है और नाकामयाबी का इक़बाल ही कामयाबी की असली क्रीमत है। जो लोग यह क्रीमत अदा नहीं करते, वे कभी इस दुनिया में कामयाबी की मंज़िल तक नहीं पहुँच सकते।

इस दुनिया में कामयाबी का सिर्फ़ एक ही राज़ है और वह यह कि आप नाकामयाबी को वक़्ती वाक़या समझें। नाकामयाबी को दोबारा कामयाबी में बदलने के लिए आप कभी भी अपना हौसला न खोएँ।



टूटने के बाद



पदार्थ की सबसे छोटी इकाई परमाणु है। ठीक उसी तरह, जैसे समाज की सबसे छोटी इकाई इंसान है। अगर हम परमाणु को तोड़ने में कामयाब हो जाएँ, तो हम उसे खत्म नहीं करते, बल्कि उसे एक नई और बहुत ज्यादा बड़ी ताकत में बदल देते हैं, जिसका नाम है— परमाणु ऊर्जा। पदार्थ जमी हुई ऊर्जा है और ऊर्जा बिखरा हुआ पदार्थ। पदार्थ अपने शुरुआती रूप में जितनी ताकत रखता है, उसकी ताकत उस वक़्त बहुत बढ़ जाती है, जब उसके परमाणुओं को तोड़कर परमाणु ऊर्जा में बदल दिया जाता है।

साधारण पदार्थ की ताकत और परमाणु ताकत में क्या फ़र्क है, इसका अंदाज़ा इस बात से लगाइए— दो टन कोयला एक रेलगाड़ी को सत्तर मील तक खींच सकता है और नौ गैलन मिट्टी का तेल एक मोटर को पाँच सौ मील तक चलाने के लिए काफ़ी होता है। इसके मुक़ाबले में जब बारह पाउंड यूरेनियम को परमाणु ऊर्जा में बदल दिया जाता है, तो वह इतना क़ाबिल हो जाता है कि एक तेज़ रफ़्तार रॉकेट को दो लाख चालीस हजार मील का सफ़र तय करा सके।

ऐसा ही मामला उस सामाजिक इकाई का है, जिसे ‘इंसान’ कहते हैं। इंसान जब ‘टूटता है’, तो वह बेपनाह हद तक विशाल हो जाता है। जिस तरह पदार्थ टूटने से खत्म नहीं होता, बल्कि अपनी ताकत बढ़ा लेता है, उसी तरह इंसान की हस्ती जब ‘टूट-फूट’ से गुज़रती है, तो वह खत्म नहीं होती, बल्कि नई और ज़बरदस्त ताकत हासिल कर लेती है।

इंसान पर मुसीबत या हार का हादसा गुज़रना उसकी सारी अंदरूनी डोरियों को झंकृत करने जैसा है। इसके बाद उसकी सारी भावनाएँ जाग उठती हैं। उसकी छुपी हुई ताकतें अपनी नाकामी की भरपाई के लिए हरकत में आ जाती हैं। उसके इरादों और हौसले को गति मिलती है। उसके अंदर हारी हुई बाज़ी को दोबारा जीतने का एक ऐसा बेपनाह जज़्बा पैदा होता है, जो बहते हुए सैलाब की तरह आगे बढ़ता है। उसे रोकना किसी के बस की बात नहीं होती, यहाँ तक कि पथरीली चट्टानों के वश में भी नहीं।

पदार्थ के अंदर परमाणु विस्फोट उसे बहुत ज्यादा ताकतवर बना देता है।

ठीक उसी तरह इंसानी शख्सियत के अंदर भी बेपनाह संभावनाएँ छुपी हुई हैं। ये संभावनाएँ उस वक़्त सामने आती हैं, जब इंसानी शख्सियत किसी विस्फोट से दो-चार होती है; जब उस पर कोई ऐसा हादसा गुज़रता है, जो उसकी शख्सियत को चीरकर टुकड़े-टुकड़े कर देता है, जो उसकी डोरियों को झंकृत करके उसके जीवन की धुन को बजाता है।



कामयाबी का राज



एक अनपढ़ आदमी भारत से इराक़ गया। दो साल बाद जब वह वापस आया, तो एक आदमी ने पूछा, “कितना पैसा कमाकर लाए?”

उसने जवाब दिया, “ज़्यादा तो नहीं कमा सका, फिर भी गुज़ारा करके पचास हजार रुपये लाया हूँ।”

उस आदमी ने फिर पूछा, “यह बताओ, पैसा हासिल करने का राज़ क्या है?”

उसने जवाब दिया, “भाई साहब, मैंने तो यह सीखा कि ‘मन’ मारोगे तो ‘मनी’ पाओगो।”

पैसा पाने का राज़ यह है कि इंसान सब्र के साथ काम करे। अपनी मनमर्ज़ी पर चलने के बजाय दूसरों का ख़्याल रखते हुए मेहनत करे, क्योंकि दौलत हासिल करने का मतलब है दूसरों की जेब से पैसा निकालना। फिर अगर आप दूसरों का ख़्याल नहीं रखेंगे, तो दूसरा आदमी आपको यह मौक़ा क्यों देगा कि आप उसकी जेब का पैसा निकालकर अपनी जेब में डालें?

दौलत हासिल करने का राज़ है— अपने ‘मन’ को मारना। अपनी मनमर्ज़ी पर चलने के बजाय दूसरे के मन के हिसाब से चलना। यही बात दूसरे मक़सदों के लिए भी सही है और यही बात दीन के मक़सद के लिए भी सही है। इस दुनिया में इंसान को बहुत-से दूसरे लोगों के बीच काम करना पड़ता है। अपने से बाहर की बहुत-सी परिस्थितियों का सामना करके अपना सफ़र जारी रखना होता है। इसलिए इस दुनिया में कोई कामयाबी तब तक मुमकिन नहीं, जब तक इंसान अपने खोल से बाहर न निकले, वह अपनी ज़िद करने के बजाय दूसरे लोगों और

बाहरी हालात का ख्याल रखते हुए अपना रास्ता निकालो। वह अपने साथ दूसरों को भी शामिल कर लो।

यह एक सच्चाई है कि इस दुनिया में इंसान अपने आपको दबाकर ही दूसरों को पाता है। बाहरी ज़रूरतों को मानकर वह बाहर से अपना मान-सम्मान दिलवाने में कामयाब होता है। अपने से बाहर की दुनिया को कुछ देने के बाद ही उसके लिए यह मुमकिन होता है कि वह बाहर की दुनिया से अपने लिए कुछ पा सके।

मुश्किल हालात

जानवर जंगल के माहौल में हमेशा अपने दुश्मनों के खतरे में रहते हैं। इस वजह से वे हर वक़्त चौकन्ने रहते हैं। यह चौकन्नापन उनके लिए बहुत ज़रूरी है। इससे उनकी छुपी हुई क्राबिलियतें बाहर आती हैं और उनकी पहचान खत्म नहीं होती। यही वजह है कि जो बड़े-बड़े पार्क जानवरों के लिए बनाए जाते हैं, उनमें जानबूझकर उनके लिए खतरे पैदा किए जाते हैं। मिसाल के तौर पर, खरगोशों के पार्क में एक बिल्ली छोड़ दी जाती है या हिरनों के पार्क में एक शेर या भेड़िया डाल दिया जाता है। इस तरह जानवरों की सतर्कता बनी रहती है। वे अपनी सुरक्षा के लिए हर वक़्त ज़िंदादिल और सक्रिय रहते हैं। अगर ऐसा न हो, तो धीरे-धीरे वे सुस्त और बेजान हो जाएँगे।

यही बात इंसानों पर भी लागू होती है। इंसान के अंदर अनगिनत क्षमताएँ छुपी होती हैं। ये क्षमताएँ आम हालात में सोई रहती हैं। वे तब जागती हैं, जब उन्हें झटका लगे, जब उन्हें इस्तेमाल में लाया जाए। किसी भी जगह यह देखा जा सकता है कि जिन परिवारों में आराम और सुविधा आ जाती है, उनके लोग संवेदनहीन और कम समझदार हो जाते हैं। इसके उलट जिन परिवारों को मुश्किल हालात ने घेर रखा हो, उनके लोगों में हर तरह की मानसिक और व्यावहारिक क्राबिलियतें ज़्यादा निखरकर सामने आती हैं।

हक्रीक़त यह है कि दुनिया का सिस्टम ईश्वर ने जिस तरह बनाया है, वह यही है कि यहाँ दबाव से ही विकास होता है। मुश्किलों की पाठशाला में इंसान

की बेहतरीन तर्बियत होती है। असुरक्षित हालात के अंदर ही कर्तव्यनिष्ठा और मेहनत जागती है।

इतिहास बताता है कि उन्हीं लोगों ने बड़ी-बड़ी तरक्की हासिल की है, जो हालात के दबाव में थे। कुदरत का यही क्रानून इंसानों के लिए भी है और यही क्रानून सभी क्रौमों के लिए भी।

बड़ा काम

विलियम ब्लैक ने कहा है, “बड़े काम तब होते हैं, जब इंसान और पहाड़ आमने-सामने होते हैं।” कोई बड़ा काम सड़क पर धक्का-मुक्की करने से नहीं होता।

विलियम ब्लैक की यह बात बिलकुल सही है। यह एक सच्चाई है कि बड़े काम के लिए बड़ी मेहनत चाहिए। पहाड़ की मुश्किल चढ़ाई के बाद ही इंसान चोटी पर पहुँच पाता है। सड़कों पर शोर-शराबा करने या जलसों में शब्दों की बाढ़ लाने से कोई बड़ा मक़सद कभी हासिल नहीं होता।

सही मायने में कोई बड़ी कामयाबी पाने के लिए ज़रूरी होता है कि हालात को बहुत गहराई से समझा जाए। अपने साधनों और बाहरी संभावनाओं का पूरा ख्याल रखते हुए योजना बनाई जाए। सफ़र शुरू किया जाए, तो इस बात का पूरा ध्यान रखा जाए कि रास्ते में दूसरे बहुत-से मुसाफ़िर भी मौजूद हैं।

इसके अलावा यह भी ज़रूरी है कि इंसान हर वह कुर्बानी दे, जो उसका मक़सद उससे माँगता है। कहीं उसे पैसे की कुर्बानी देनी पड़ती है, तो कहीं वक़्त की। कहीं अपनी राय की कुर्बानी देनी पड़ती है, तो कहीं अपनी भावनाओं की। कहीं उसे दूसरों से पेश आना पड़ता है, तो कहीं खुद अपना हिसाब-किताब करना पड़ता है। कहीं उसे आगे बढ़ना पड़ता है और कहीं उत्तेजना के बावजूद उसे रुक जाना पड़ता है।

पहाड़ चढ़ने जैसी मेहनत के बिना कोई बड़ा काम पूरा नहीं होता। हर बड़ा काम बड़ी जद्दोजहद माँगता है। ऐसा काम, जो इंसान के मरने के बाद भी अपना अच्छा असर छोड़े; ऐसा काम, जो भविष्य की रूपरेखा तय करे; ऐसा

काम, जो इतिहास की दिशा ही बदल दे, उसके लिए कड़ी मेहनत चाहिए। ऐसे काम के लिए बहुत ही समझदारी चाहिए। यही वजह है कि इस तरह का काम वही लोग कर पाते हैं, जो सचमुच पहाड़ चढ़ने जैसी मेहनत का सबूत देते हैं। इसके उलट जो लोग सड़कों पर शोरगुल करने को ही काम समझते हैं, वे सिर्फ सामूहिक अव्यवस्था बढ़ाते हैं। वे इतिहास को कोई असली तोहफ़ा दे पाने की क्राबिलियत नहीं रखते।

मुश्किलें हीरो बना देती हैं

अमेरिका की ओहायो स्टेट यूनिवर्सिटी में एक संस्थान है, जिसका नाम है— 'डिज़ास्टर रिसर्च सेंटर'। यह संस्थान 1963 में बना था। अब तक इसने सौ से ज्यादा बड़ी-बड़ी मानवीय आपदाओं का अध्ययन किया है। इसने पाया कि बेहद मुश्किल मौकों पर इंसान के अंदर कुछ नई और असाधारण ताकतें जाग जाती हैं, जो उसे आपदाओं का शिकार होने से बचाती हैं।

मिसाल के तौर पर, 1961 में टेक्सास में एक जबरदस्त तटीय तूफ़ान आया, लेकिन इस तूफ़ान में उस इलाके के सिर्फ आधे मिलियन लोगों ने अपना घर छोड़ा। 50 फ़ीसदी से ज्यादा आबादी अपने घरों में डटी रही, हालाँकि इस तूफ़ान की चेतावनी चार दिन पहले ही दे दी गई थी। 1971 के कैलिफ़ोर्निया भूकंप में एक बहुत बड़ा बाँध कमज़ोर हो गया, जिससे 70 हजार लोगों के लिए गंभीर खतरा पैदा हो गया, मगर ऐसी नाज़ुक हालत में भी अपने घर छोड़कर भागने वालों की संख्या सिर्फ 7 फ़ीसदी थी।

अनुभव से पता चला है कि आपदा का शिकार हो जाने के बाद भी ज्यादातर लोग उम्मीद से भरे रहते हैं। टेक्सास के दो शहरों में भयानक तूफ़ान से तबाह हुए लोगों से उनके भविष्य के बारे में पूछा गया। 10 फ़ीसदी से भी कम लोगों ने भविष्य के बारे में कोई डर जताया। बाक़ी सभी लोग तबाही के बावजूद अपने भविष्य को लेकर पूरी तरह आशावान थे।

आपदाओं पर अपने लंबे शोध का निष्कर्ष उस संस्थान ने अपनी रिपोर्ट में इन शब्दों में बताया है—

“नतीजतन घटनाओं की हकीकत बताती है कि इंसान मुसीबतों का सामना करने में हैरतअंगेज तरीके से नियंत्रित और लचीला होता है। शायद हीरोइज्म, न कि घबराहट या सदमा, आपदा के वक़्त उनके सबसे आम व्यवहार को बयान करने के लिए सही शब्द है।”

इंसान को उसके बनाने वाले ने हैरान कर देने वाली अनगिनत क्षमताएँ दी हैं। इनमें से एक क्षमता यह है कि बरबादी के मलबे के बीच खड़ा होकर भी वह ख़त्म नहीं होता, बल्कि अपनी नई इमारत की योजना सोचता है और बहुत जल्द अपने नुक़सान की भरपाई कर लेता है। इंसान के अंदर यह स्वाभाविक संभावना हमें एक बहुत बड़ा सबक दे रही है। अगर कोई शख्स या क़ौम किसी हादसे का शिकार हो जाए, तो उसे मातम और शिकायत में एक पल भी बरबाद नहीं करना चाहिए, बल्कि ईश्वर की दी हुई क्षमता का इस्तेमाल करके खुद को दोबारा खड़ा करने की कोशिश में लग जाना चाहिए। बिल्कुल मुमकिन है कि जहाँ हालात ने आपकी कहानी ख़त्म कर दी थी, वहीं से आपकी ज़िंदगी का एक नया और शानदार अध्याय शुरू हो जाए।

कुर्बानी

पेड़ क्या है? एक बीज की कुर्बानी। जब एक बीज खुद को ख़त्म करने के लिए तैयार होता है, तभी यह मुमकिन हो पाता है कि ज़मीन पर एक हरा-भरा पेड़ खड़ा हो।

अगर आप ईंटों से पूछें कि मकान कैसे बनता है, तो वे चुपचाप यह कहेंगी— जब कुछ ईंटें खुद को हमेशा के लिए ज़मीन में दफ़न होने के लिए तैयार हो जाती हैं। तभी वह चीज़ बन पाती है, जिसे मकान कहते हैं।

इंसानी ज़िंदगी की तामीर का भी यही हाल है। इंसानियत का भविष्य तभी बन पाता है, जब कुछ लोग खुद को ‘बिना भविष्य’ के देखने पर राज़ी हो जाएँ। किसी समुदाय की तरक्की तभी होती है, जब कुछ लोग जान-बूझकर खुद को ‘बे-

तरक्की' कर लें— कुर्बानी के ज़रिए तामीर, यह कुदरत का एक यूनिवर्सल क़ानून है, इसमें कभी कोई बदलाव नहीं आता। कुदरत का यही सिद्धांत भौतिक दुनिया के लिए है और कुदरत का यही सिद्धांत इंसानी दुनिया के लिए भी है।

एक इमारत में एक उसका गुंबद होता है और एक उसकी नींव। गुंबद हर किसी को दिखाई देता है, मगर नींव किसी को दिखाई नहीं देती, क्योंकि वह ज़मीन के अंदर दफ़न रहती है, मगर यही वह न दिखने वाली नींव है, जिस पर पूरी इमारत और उसका गुंबद खड़ा होता है। राष्ट्र-निर्माण का मामला भी यही है। कुर्बानी यह है कि आदमी क्रौमी तामीर में उसकी नींव बनने पर राज़ी हो जाए।

कुर्बानी यह नहीं है कि आदमी जोश में आकर लड़ जाए और अपनी जान दे दे। कुर्बानी यह है कि आदमी किसी नतीजे वाले काम के गुमनाम हिस्से में खुद को दफ़न कर दे। वह ऐसे काम में अपनी कोशिश लगाए, जिसमें दौलत या शौहरत के रूप में कोई क़ीमत मिलने वाली न हो। जो भविष्य के लिए काम करे, न कि सिर्फ़ आज के लिए।

किसी भी क्रौम की तरक्की और कामयाबी हमेशा इसी तरह के लोगों पर निर्भर करती है। यही वे लोग हैं, जो किसी क्रौम के भविष्य की नींव बनते हैं। वे खुद को दफ़न करके क्रौम के लिए ज़िंदगी का सामान मुहैया कराते हैं।

उसी खर्च से

एक विद्वान का वाक़या है। उनकी ज़िंदगी एक रिसर्च संस्थान में गुज़री। वे बहुत सादगी से रहते थे। अपनी छोटी-सी आमदनी में से भी वे हर महीने कुछ-न-कुछ बचत कर लेते थे। उनकी बस एक बेटी थी। जब उसकी शादी की, तो शादी में उन्होंने कुछ खर्च नहीं किया। एक नौजवान से सादे तरीक़े से निकाह पढ़ाया और फिर बेटी को विदा कर दिया। हालाँकि विदा करते वक़्त उन्होंने अपनी बेटी और दामाद को एक चेक दिया। यह चेक दस हज़ार रुपये का था। उन्होंने कहा—

“यही मेरी पूरी ज़िंदगी की बचत है, जो बैंक में जमा थी। मैं यह रक़म शादी की रस्मों में भी खर्च कर सकता था, मगर मुझे यह ज़्यादा पसंद

आया कि इसे नक़द तुम लोगों को सौंप दूँ, तुम लोग इसे सँभालकर रखो और अपनी ज़िंदगी को बनाने में इस्तेमाल करो।”

बेटी और दामाद ने आपस में सलाह की, तो उनकी समझ में यह बात आई कि इस रक़म से कोई कारोबार शुरू किया जाए। चुनाँचे उन्होंने ऐसा ही किया। शुरुआत में उन्हें काफ़ी मेहनत करनी पड़ी। कभी-कभी बहुत मुश्किल दौर भी आए, मगर वे लगातार अपने कारोबार पर डटे रहे। आख़िरकार हालात बदलने शुरू हुए। उन ‘दस हज़ार’ रुपयों में बरकत हुई और उन्होंने कुछ सालों में काफ़ी तरक्की कर ली। अब वे अपने इलाक़े में एक इज़्जतदार और खुशहाल ज़िंदगी गुज़ार रहे हैं।

शादी इंसान की ज़िंदगी का एक बेहद गंभीर वाक़या है। वह धूम मचाने का दिन नहीं, बल्कि ज़िंदगी की ज़िम्मेदारियों का एहसास करने का दिन है। इस दिन एक मर्द और एक औरत खुद को एक मज़बूत समझौते में बाँधते हैं। इसका तकाज़ा है कि निकाह की रस्म सादा हो, वह फ़ालतू नुमाइशों से बिलकुल पाक हो और अगर किसी को ख़र्च करना ही है, तो उस ख़र्च की एक अच्छी सूरत वह है, जिसकी मिसाल ऊपर के वाक़ये में नज़र आती है।

अगर हमारे बीच इस किस्म का रिवाज पड़ जाए, तो शादी राष्ट्र-निर्माण के प्रोग्राम का एक अहम हिस्सा बन जाए। हर परिवार में बहुत ख़ामोशी के साथ तरक्की का सिलसिला चल पड़े। राष्ट्र के अरबों रुपये, जो हर साल कुछ दिनों के तमाशों में बरबाद हो जाते हैं, राष्ट्र के निर्माण का एक मज़बूत ज़रिया बन जाएँ। वे क्रौम की इकॉनमी की योजना का हिस्सा बन जाएँ और जब राष्ट्र आर्थिक हैसियत से ऊपर उठेगा, तो यह सिर्फ़ एक आर्थिक घटना नहीं होगी, बल्कि अनगिनत पहलुओं से वह राष्ट्र की तरक्की के लिए फ़ायदेमंद होगी। यह एक अतिरिक्त फ़ायदा है, मगर बिना किसी अतिरिक्त ख़र्च के।



ख़ामोश तामीर



स्वामी विवेकानंद (1863-1902) को सच्चाई की तलाश थी। वे सफ़र करते हुए कन्याकुमारी के किनारे पर पहुँचे। यहाँ समंदर के अंदर लगभग एक फ़र्लांग (200

मीटर) की दूरी पर एक चट्टान है। स्वामी विवेकानंद समंदर में कूद पड़े और तैरकर चट्टान के ऊपर पहुँचे। यहाँ उन्होंने गहरा ध्यान किया और उसके बाद वापस आकर हिंदू धर्म के प्रचार में जुट गए।

आजादी के बाद इस चट्टान पर 'विवेकानंद केंद्र' बनाया गया। लगभग दो करोड़ रुपये के खर्च से एक बहुत बड़ा सेंटर बनाया गया, जो 1970 में पूरा हुआ। इसका खास मकसद है— इंसान बनाना। काम करने वाले लोगों की जरूरत के लिए इस सेंटर ने अपील की थी, जिसके नतीजे में दर्जनों ऊँची शिक्षा वाले लोगों और सैकड़ों नौजवानों ने अपनी जिंदगियाँ इसके लिए कुर्बान कर दीं। वे इस मिशन के लिए जीवन भर के कार्यकर्ता बन गए। (टाइम्स ऑफ़ इंडिया, 27 जनवरी 1984)

इन्हीं में से एक हैं— डॉक्टर एच. नागेंद्रा वे अमेरिका के स्पेस फ्लाइट सेंटर में एक ऊँचे ओहदे पर थे। उन्होंने वह नौकरी छोड़कर अब विवेकानंद केंद्र (कन्याकुमारी) में एक सादा जीवन बिता रहे हैं। उन्होंने कहा, “यहाँ मैं अपने आपको बेकार महसूस नहीं करता। एक वैज्ञानिक का काम सच्चाई की तलाश करना है और मेरी तलाश अब भी जारी है। पहले यह मैकेनिकल इंजीनियरिंग के क्षेत्र में थी, अब यह इंसानी इंजीनियरिंग के क्षेत्र में है।”

विवेकानंद केंद्र इस वक़्त खास तौर पर चार क्षेत्रों में काम कर रहा है— शिक्षा, ग्रामीण विकास, योग रिसर्च और पत्रिकाओं व किताबों का प्रकाशन। सैकड़ों लोग अपनी ऊँची नौकरियाँ और आराम की जिंदगी छोड़कर इसके प्रोग्राम के तहत अलग-अलग राज्यों में खामोशी के साथ मेहनत में जुटे हैं। डॉक्टर नागेंद्र के शब्दों में, उनके लिए यह एक भरपूर जिंदगी है। उन्हें पूरा संतोष है कि वे एक सार्थक काम में लगे हुए हैं—

“यह वाकई में एक भरपूर जिंदगी है... काम से मिलने वाले संतोष से भरपूर।”

वही क्रौम जिंदा क्रौम है, जिसमें ऊँची क्राबिलियत वाले लोग इस तरह की कुर्बानी देने के लिए तैयार हो जाएँ।



कुर्बानी



यह 1962 की बात है। उस वक़्त श्री सुरेश एच. कामदार की उम्र 29 साल थी। वे कलकत्ता के एक मेडिकल कॉलेज हॉस्पिटल में अपने एक बीमार रिश्तेदार से मिलने गए थे। वहाँ उस वक़्त एक मरीज़ लाया गया। उसका ऑपरेशन ज़रूरी था और उसे तुरंत ब्लड ट्रांसफ्यूजन (खून) की ज़रूरत थी। यह उस आदमी के लिए ज़िंदगी-मौत का सवाल था। श्री कामदार का ब्लड ग्रुप A-Rh पॉज़िटिव था। उन्हें मरीज़ पर दया आ गई। उन्होंने ख़ुद ही खून देने की पेशकश कर दी। इस तरह एक जान बच गई।

श्री कामदार की उम्र अब 53 साल हो चुकी है। कलकत्ता के उस अनुभव के बाद उन्होंने खून देना अपना स्थायी मिशन बना लिया। पिछले 24 सालों में उन्होंने सौ बार ख़ुद से खून दिया है। रेड क्रॉस सोसाइटी ने उन्हें उच्च सम्मान के तमग़े दिए हैं। (टाइम्स ऑफ़ इंडिया; 2 दिसंबर, 1985)

दुनिया में ऐसे बहुत-से लोग हैं, जो तुरंत जोश में आकर लड़ते हैं और अपना खून बहा देते हैं, मगर ऐसे लोग बेहद कम हैं, जो सोच-समझकर लगातार खून देते हैं और जीवन के आखिरी पल तक देते रहते हैं।

ये दूसरे लोग ऊपर से देखने में छोटा काम करने वाले लगते हैं, मगर यही वे लोग हैं, जो दुनिया में बड़ा काम करते हैं। यही वे लोग हैं, जो इतिहास बनाते हैं। यही वे लोग हैं, जो अपनी व्यक्तिगत कुर्बानियों के ज़रिए पूरी क्रौम को आगे ले जाते हैं। अगर पहली क्रिस्म की कुर्बानी नेता बनाती है, तो दूसरी क्रिस्म की कुर्बानी क्रौम बनाती है। अगर पहली कुर्बानी आज की तामीर है, तो दूसरी कुर्बानी भविष्य की तामीर है।

एक बड़ा मकान अचानक नहीं बनता। सालों साल तक एक-एक ईंट जोड़ी जाती है, उसके बाद वह ढाँचा तैयार होता है, जिसे मकान कहते हैं। एक तालाब अचानक नहीं भरता। बारिश लंबे वक़्त तक बूँद-बूँद करके उसमें पानी पहुँचाती है, तब जाकर एक भरा हुआ तालाब बनता है। यही हाल इंसानी मामलों का भी है। इंसानी ज़िंदगी में कोई बड़ी घटना तभी सामने आती है, जब बहुत-से लोग इसके लिए तैयार हों कि वे अपनी छोटी-छोटी कोशिशों को लंबे वक़्त तक जमा

करेंगे। इंसानी कामयाबी सब्र के साथ किए गए काम का नतीजा है, न कि किसी एक पल के क्रदम का नतीजा।

कामयाबी की क्रीमत

एक छात्र के अभिभावक कॉलेज के प्रिंसिपल से मिले। उन्होंने कहा, “आप लोगों ने जो पढ़ाई का कोर्स बनाया है, वह बहुत लंबा है। छात्र की उम्र का बड़ा हिस्सा सिर्फ पढ़ाई में ही बीत जाता है।”

प्रिंसिपल ने जवाब दिया, “इसका हल तो बहुत आसान है।”

“वह कैसे?”

“आप एक छोटा कोर्स भी बना सकते हैं। असल में, समय इस बात पर निर्भर करता है कि आप छात्र के अंदर कैसा ज्ञान का स्तर चाहते हैं। कुदरत को शाहबलूत (ओक) का पेड़ उगाने में सौ साल लग जाते हैं, लेकिन जब वह खीरे का पौधा उगाना चाहती है, तो उसके लिए सिर्फ छह महीने चाहिए। अगर आप औसत स्तर चाहते हैं, तो कुछ साल की पढ़ाई भी काफ़ी हो सकती है, लेकिन किसी को उच्च शिक्षित बनाने के लिए आपको ज़्यादा समय देना ही पड़ेगा।”

यही नियम ज़िंदगी के सारे मामलों पर लागू होता है। छोटी तरक्की छोटी कोशिश से मिल सकती है, लेकिन अगर आप बड़ी तरक्की चाहते हैं, तो आपको बड़ी जद्दोजहद ज़रूर करनी पड़ेगी। छोटी कोशिश से कभी बड़ी कामयाबी हासिल नहीं हो सकती।

हैरोल्ड शर्मन ने इसी बात को इन शब्दों में कहा है—

“हर कामयाबी पर एक क्रीमत का टैग लगा होता है— सवाल यह है कि आप उसे हासिल करने के लिए मेहनत और कुर्बानी, सब्र, यकीन और डटे रहने के रूप में कितनी क्रीमत चुकाने को तैयार हैं।”

हर कामयाबी के साथ एक क्रीमत जुड़ी होती है। अब यह आप पर निर्भर है

कि आप उसे पाने के लिए मेहनत और कुर्बानी, सब्र, यत्नीन और हिम्मत के रूप में कितनी क्रीमत चुकाने को तैयार हैं। बाज़ार में इंसान को वही चीज़ मिलती है, जिसकी उसने क्रीमत अदा की हो। ठीक उसी तरह हर तरक्की और हर कामयाबी की भी एक क्रीमत होती है और इंसान को वही तरक्की और वही कामयाबी मिलेगी, जिसकी उसने क्रीमत चुकाई हो— न इससे ज़्यादा और न इससे कम।

वक्रत के उलट

शहर की एक पॉश कॉलोनी में एक आदमी आवाज़ लगा रहा था— “बरतन-कलई करने वाला! बरतन-कलई करने वाला!”

वह आवाज़ लगाता हुआ सारी सड़कों पर घूमता रहा, लेकिन उन शानदार मकानों में से किसी ने भी उस पर ध्यान नहीं दिया। पूरी कॉलोनी में कहीं भी उसे काम नहीं मिला।

क्या यह पक्षपात का मामला था? क्या लोगों ने घमंड या बेइंसाफ़ी से ‘बरतन-कलई करने वाले’ को काम नहीं दिया? हो सकता है कि ‘बरतन-कलई करने वाला’ ऐसा ही सोचता हो। वह एक अनपढ़ आदमी था। उसके बाप-दादा यही काम करते थे। वह खुद 40 साल से यही काम कर रहा है। इस वजह से उसका दिमाग़ ‘बरतन-कलई’ में इतना डूब चुका है कि वह इससे बाहर निकलकर नहीं सोच सकता, लेकिन जो शख्स ‘बरतन-कलई’ से बाहर की हकीकत को जानता हो, जो बड़े दायरे में सोच सकता हो, वह आसानी से समझ सकता है कि बरतन-कलई करने वाले को कॉलोनी में काम क्यों नहीं मिला। इसकी सीधी-सादी वजह यह थी कि कलई का काम ताँबे-पीतल के बरतनों पर होता है, जबकि कॉलोनी के सारे मकानों में स्टेनलेस स्टील के बरतन इस्तेमाल हो रहे थे। फिर यहाँ बरतन-कलई करने वाले को काम मिलता भी तो कैसे?

आज की दुनिया में कामयाबी के लिए जिन चीज़ों की जरूरत है, उनमें से एक यह है कि इंसान वक्रत को पहचाने। वह ज़माने की जरूरतों से वाकिफ़ हो। जो शख्स वक्रत और ज़माने को न जाने, उसका हाल वही होगा, जो उस आदमी का

हुआ। वह स्टेनलेस स्टील इस्तेमाल करने वालों के बीच 'बरतन-कलई करने' की आवाज़ लगाता रहेगा और वहाँ कोई भी शख्स नहीं मिलेगा, जो उसका ग्राहक बन सके। वह अपने ज़माने के उलट दुकानदारी की वजह से नाकाम होगा और फिर दूसरों पर इल्जाम लगाएगा कि उन्होंने जातिभेद और ज़ुल्म की वजह से उसकी दुकान नहीं चलने दी।

क्राबिलियत के ज़माने में सिफ़ारिश की गुहार लगाना, जवाबदेही की दुनिया में सिर्फ़ जुमलेबाजी करना, हकीकत के बाज़ार में ख़्वाबों के दाम पर सौदा करने की कोशिश करना— ये सब इसी तरह की ज़माने के उलट हरकतें हैं और ऐसी हर कोशिश का एक ही नतीजा होता है और वह यह कि उनका कोई नतीजा नहीं निकलता।



बताए बिना



मैंने एक अंग्रेज़ी किताब में एक दिलचस्प वाक्या पढ़ा। उसके शब्द इस प्रकार थे—

“जब सर चार्ल्स नेपियर ने 1843 में सिंध फ़तह किया, तो उसने गवर्नर-जनरल लॉर्ड डलहौज़ी को जीत का पैग़ाम इन शब्दों में भेजा— ‘पेकावी’, जिसका लातीनी भाषा में मतलब है— ‘मैंने गुनाह किया है।’”

ऊपर से देखने में यह बहुत अजीब पैग़ाम था। फ़ौज़ी अफ़सर और गवर्नर-जनरल के बीच पहले से ऐसी कोई सहमति नहीं थी, जिससे वह इसका मतलब समझ जाता। इसके बावजूद गवर्नर-जनरल इसे समझ गया। जब उसने ‘पेकावी’ का अंग्रेज़ी अनुवाद काग़ज़ पर लिखा, तो वह यह था— “I have sinned!” इसे देखकर वह तुरंत समझ गया कि इसका मतलब यह है— “मैंने सिंध को जीत लिया है।” (चूँकि ‘sinned’ सुनने में ‘Sindh’ जैसा लगता है।)

नाज़ुक और बड़े मामलों को सँभालने के लिए हमेशा ऐसे ही होशियार और दूरदर्शी लोगों की ज़रूरत होती है यानी ऐसे लोग, जो इशारों से ही बात समझ जाएँ। जो न कही हुई बात को कही हुई बात की तरह जान लें। जो उस बात को पढ़ लें, जो लिखी हुई लाइनों में मौजूद नहीं है और कभी हो भी नहीं सकती।

जिंदगी की हक़ीक़तों में से एक हक़ीक़त यह है कि हर बात पहले से नहीं बताई जा सकती। बहुत-सी बातों को बताए बिना ही जानना पड़ता है। जिन लोगों के अंदर यह क्राबिलियत होती है, वही कोई खास काम कर पाते हैं और जो लोग इस क्राबिलियत से महरूम हों, वे सिर्फ़ नादानियाँ ही करेंगे और फिर शिकायतों का हिसाब-किताब लेकर बैठ जाएँगे।

दुनिया में सबसे ज़्यादा खुशकिस्मत इंसान वह है, जिसे ऐसे साथी मिल जाएँ, जो 'चुप्पी की ज़बान' समझते हों, जो बोले बिना सुन लें और लिखे बिना पढ़ लें, जो लिखी हुई लाइनों से आगे बढ़कर 'लाइनों के बीच' छुपी हुई बातों को जान लें।

जानकारी की कमी

मैल्कम फ़ोर्ब्स की एक बहुत मायने वाली कहावत है। उन्होंने कहा कि समस्या का हल सुझाना उन लोगों के लिए बहुत आसान है, जिन्हें समस्या के बारे में बहुत कम जानकारी हो—

“जब आपको समस्या के बारे में ज़्यादा पता नहीं होता, तो समाधान सुझाना कितना आसान होता है।”

(The Sayings of Chairman Malcolm)

इंसान के सामूहिक जीवन में जब कोई मुसीबत आती है, तो उसकी हालत ऐसी होती है, जैसे काँटों के ढेर में किसी का कपड़ा फँस जाए। ऐसे में अगर इंसान बिना सोचे-समझे खींचतान शुरू कर दे, तो कपड़ा और उलझ जाएगा और अगर निकलेगा भी, तो फटकर निकलेगा। ऐसी हालत में हमेशा ज़रूरत होती है कि सब्र से काम लिया जाए। हालात का पूरा अंदाज़ा लगाकर बहुत होशियारी के साथ ख़ुद को बचाने की कोशिश की जाए, लेकिन जो शख्स दूर खड़ा हो, जिसे हालात की नज़ाकत का पूरा अंदाज़ा न हो, वह बिना रुके बोलता रहेगा और फ़ौरन हल-पर-हल सुझाता चला जाएगा।

सामूहिक जीवन एक बेहद पेचीदा चीज़ है। सामूहिक जीवन में यह मुमकिन नहीं होता कि इंसान सिर्फ़ अपनी मनमर्ज़ी से काम करने लगे। सामूहिक जीवन में

अपनी और दूसरों की ताकत के अनुपात का अंदाजा लगाना पड़ता है। सामूहिक जीवन में यह कोशिश करनी पड़ती है कि आखिरी हद तक दूसरों से टकराव से बचते हुए अपना मकसद हासिल किया जाए। सामूहिक जीवन में यह देखना पड़ता है कि फ़ौरन क्या चीज़ हासिल की जा सकती है और वे क्या चीज़ें हैं, जिनके लिए हमें इंतज़ार की नीति अपनानी चाहिए।

जिस शख्स को सामूहिक जीवन की नाज़ुकियों का एहसास हो, वह यकीनन सामूहिक जीवन के मामले में बेहद संवेदनशील हो जाएगा। वह कोई सुझाव देने से पहले उसके बारे में हज़ार बार सोचेगा। इसके उलट जिस शख्स को ऊपर बताई गई नाज़ुकियों का एहसास न हो, वह बिना रुके सुझाव देता रहेगा। उसका बेपरवाह रवैया उसके दिमाग को सुझावों का कारखाना बना देगा।



ग़लत क्रम



लीमा (Lima) दक्षिण अमेरिका का एक शहर है। वहाँ एक ग़रीब औरत अपने चार बच्चों के साथ रहती थी। उसे वहाँ कोई अच्छी नौकरी नहीं मिल पाई थी। उसने सुना था कि उत्तरी अमेरिका (यू.एस.ए.) बहुत खुशहाल मुल्क है। उसने रोज़ी-रोटी की तलाश में वहाँ जाने का फ़ैसला किया, मगर उसके पास हवाई जहाज़ का किराया नहीं था। उसने एक तरकीब निकाली— उसने खुद को एक सूटकेस के अंदर बंद कर लिया और किसी तरह उस सूटकेस को लीमा से लॉस एंजेलिस जाने वाले हवाई जहाज़ में सामान के तौर पर चढ़वा दिया।

जहाज़ लॉस एंजेलिस पहुँचा। हमेशा की तरह उसका सामान निकालकर उस जगह लाया गया, जहाँ हर शख्स अपना सामान पहचानकर ले लेता है, मगर एक सूटकेस को लेने वाला कोई नहीं मिला। आखिरकार पुलिस ने जब उस सूटकेस को खोला, तो उसके अंदर उस औरत की लाश बंद थी। यूपीआई की ख़बर का आखिरी वाक्य यह था—

“जाँच करने वालों ने कहा कि औरत शायद दूसरे सामान के वजन के नीचे कुचलकर मर गई।” (टाइम्स ऑफ़ इंडिया; 12 जनवरी, 1985)

यह वाक्य जिंदगी की एक हकीकत बताता है। यह हकीकत की मंजिल तक पहुँचने के लिए सिर्फ़ इतना काफी नहीं है कि इंसान कोई-न-कोई क़दम उठा ले। क़दम की कामयाबी के लिए बहुत-सी दूसरी परिस्थितियों का साथ देना ज़रूरी है। अगर ये दूसरी परिस्थितियाँ साथ दें, तो क़दम कामयाब होगा और अगर दूसरी परिस्थितियाँ साथ न दें, तो क़दम बिलकुल नाकाम होकर रह जाएगा।

बताए गए वाक्य में औरत का क़दम एक अकेले इंसान का क़दम था। इस ग़लत क़दम का नतीजा उसे अकेले ही भुगतना पड़ा, लेकिन जब एक नेता किसी क्रौम को कोई क़दम उठाने की तरफ़ ले जाता है, तो यह एक सामूहिक क़दम होता है और इसका नतीजा पूरी क्रौम को भुगतना पड़ता है। एक नेता को उस औरत के मुक़ाबले में करोड़ों गुना ज़्यादा सावधान होना चाहिए। एक नेता के लिए ग़लत क़दम सिर्फ़ ग़लत क़दम नहीं है, बल्कि यह इतना गंभीर जुर्म है कि उसके मुक़ाबले में कोई बहाना मंज़ूर नहीं हो सकता।

ग़लत क़दम उठाने से करोड़ों गुना बेहतर है कि इंसान कोई क़दम ही न उठाए।

समझदारी के ज़रिए

क्या यह मुमकिन है कि जिंदा शेर का अध्ययन खुले जंगल में उसके बिलकुल पास बैठकर किया जाए? इतने पास कि इंसान उसे छू सके और उसके शरीर के अंगों की सही नाप ले सके? ऊपर से देखने में यह एक नामुमकिन-सी बात लगती है, लेकिन ईश्वर ने इंसान को जो दिमाग़ दिया है, वह इतना अजीबो-ग़रीब है कि वह हर नामुमकिन को मुमकिन बना सकता है, बशर्ते उसे सही तरीके से इस्तेमाल किया जाए।

अमेरिका के एक जानवरों के विशेषज्ञ जॉर्ज बी. शैलर ने इस नामुमकिन को मुमकिन बना दिया। शैलर को शेरों की आदतों और ख़ासियतों पर एक किताब लिखनी थी, इसलिए उन्होंने दो साल तक खुले जंगल में जिंदा शेरों के बिलकुल करीब जाकर उनका अध्ययन किया। इस करीबी अध्ययन के ज़रिए उन्होंने जंगल के राजा के बारे में हैरतअंगेज़ सच्चाइयाँ खोज निकालीं। मिसाल के तौर पर, यह

कि शेर बहुत सुस्त और आलसी जानवर है। शेरों के ज्यादातर बच्चे भूखे मर जाते हैं, क्योंकि उनके माँ-बाप अपनी सुस्ती की वजह से अपने बच्चों के लिए खाना जुटा नहीं पाते वगैरह।

श्री शैलर को यह मौक़ा कैसे मिला कि वे खुले जंगल में ज़िंदा शेर के बिलकुल पास जाकर उसका अध्ययन कर सकें? जवाब है— दिमाग़ के इस्तेमाल से। श्री शैलर ने ऐसी कारतूसें तैयार कीं, जिनमें गोली की जगह बेहोश करने वाली दवा भरी होती थी। वे इस बेहोश करने वाली कारतूस को एक खास बंदूक में डालकर दागते तो वह शेर के पास पहुँचकर मिनटों में उसे बेहोश और सुस्त कर देती थी। उन्होंने इस तरीके से लगभग सौ शेरों को बेहोश करने वाली दवा का निशाना बनाकर सुला दिया और जब वे बेहोश होकर ज़मीन पर गिर पड़े, तो वे उनके पास जाकर उनकी हर चीज़ देखते और ग़ौर से उनका पूरा अध्ययन करते।

जिस तरह इंसान जंगल के खूनी जानवरों को क़ाबू में कर लेता है, उसी तरह वह इंसानी बस्ती के इंसानी चेहरे वाले भेड़ियों पर भी क़ाबू पा सकता है। शर्त यह है कि इन इंसानी भेड़ियों पर भी ईश्वर का दिया हुआ दिमाग़ उसी तरह इस्तेमाल किया जाए, जिस तरह जंगल के भेड़ियों पर इस्तेमाल किया जाता है।

अगर कोई शाख्स किसी लिहाज़ से आपसे बड़ा है और आपसे अपनी बड़ाई मनवाना चाहता है, तो आप उसकी बड़ाई मानकर उसे 'बेहोश' कर दीजिए यानी उसके अहंकार को शांत कर दीजिए और फिर अपनी ख़ामोश तरक्की में लग जाइए। अगर आप ऐसा करेंगे, तो आख़िरकार वह वक़्त आएगा कि खुद उस शाख्स को वह हकीक़त माननी पड़ेगी, जिसका दावा वह पहले आपसे कर रहा था।

खुद जानना पड़ता है



50 साल पहले दियासलाई और लाइटर का चलन नहीं था। गाँव के लोग एक-दूसरे के घरों से आग माँगकर अपना चूल्हा जलाया करते थे। यह उस ज़माने की बात है, जब एक औरत अपने पड़ोसी के घर गई और पूछा, “क्या आग है?” पड़ोसन बोली, “हाँ बहन, ताक पर रखी है।” यह औरत बुढ़ापे की वजह से बहुत

कम सुनती थी, इसलिए उसके लिए इस बेमतलब जवाब का बहाना था, मगर बहुत-से ऐसे लोग भी होते हैं, जिनकी आँखें और कान पूरी तरह ठीक होते हैं, फिर भी वे अकसर इससे ज्यादा बेहतर साबित नहीं होते।

जनरल जे.एन. चौधरी ने जनवरी, 1971 में 'राष्ट्रीय सुरक्षा की समस्याएँ' विषय पर भाषण देते हुए कहा था कि रक्षा में जासूसी जानकारी (इंटेलिजेंस) की बहुत अहमियत होती है। घटना से पहले सही जानकारी जरूरी है, ताकि दुश्मन की चाल को जिम्मेदार लोग अच्छी तरह समझ सकें और जो फ़ैसला करें, उसे अच्छी तरह सोच-समझकर करें। इंटेलिजेंस सेवा का ठीक न होना बहुत खतरनाक है। इस सिलसिले में उन्होंने इंटेलिजेंस की नाकामयाबी की एक दिलचस्प मिसाल दी। उन्होंने बताया कि 1961 में जब भारत ने गोवा में फ़ौजी कार्रवाई की, तो उस दौरान दक्षिणी कमान से वायरलेस पर पूछा गया, "क्या पुर्तगालियों के पास बख्तरबंद गाड़ियाँ और टैंक हैं?" वहाँ से जवाब आया, "टैंक तो ठीक हैं, मगर उनमें सिर्फ़ पंद्रह हजार गैलन पानी की जगह है।" सवाल लड़ाकू टैंकों के बारे में था और जवाब पानी के टैंकों के बारे में मिला।

कोई भी सामूहिक काम तभी सही तरीके से पूरा होता है, जब उससे जुड़े सारे लोग अपने-अपने हिस्से का काम ठीक-ठाक कर रहे हों। सामूहिक काम हमेशा मिली-जुली जिम्मेदारी पर होता है। अगर हर कोई अपनी अलग जिम्मेदारी ठीक से निभा रहा हो, तो गाड़ी कामयाबी के साथ चलती रहेगी। अगर उनमें से किसी एक ने भी अपने हिस्से का काम करने में लापरवाही की, तो वहीं गाड़ी अटक जाएगी, क्योंकि कोई भी शख्स दूसरे के हिस्से का काम नहीं कर सकता।

इसके अलावा हर बात बताई भी नहीं जा सकती। बहुत-सी ऐसी बातें होती हैं, जिन्हें जुड़े हुए शख्स को खुद ही जानना पड़ता है। हर शख्स इतना जिम्मेदार और जागरूक होना चाहिए कि बताए बिना ही समझ जाए कि किस मामले में उसे किस तरह की भूमिका निभानी है या किसी खास वक़्त पर सामूहिकता उससे किस चीज़ की माँग कर रही है यानी जब एक फ़ौजी अफ़सर अपने साथी से 'टैंक' के बारे में पूछे, तो साथी को बिना सफ़ाई दिए यह समझना चाहिए कि पूछने वाला लड़ाकू टैंक के बारे में पूछ रहा है, न कि पानी के टैंक के बारे में।



हालात का ख्याल



19 जुलाई, 1981 को दिल्ली अहमदाबाद मेल ट्रेन हमेशा की तरह अपने वक्रत पर चली, लेकिन मेहसाना स्टेशन पर वह 40 मिनट लेट हो गई। जब ट्रेन मेहसाना से आगे बढ़ी, तो ड्राइवर ने उसे आम रफ्तार से ज्यादा तेज दौड़ाना शुरू कर दिया, ताकि वह तय वक्रत पर अहमदाबाद पहुँच जाए। ट्रेन डुंगरवा से दो किलोमीटर दूर थी कि ड्राइवर ने देखा कि आगे की पटरी में कुछ फ़िश प्लेट्स गायब हैं। उसने फ़ौरन ब्रेक लगाए, ताकि ट्रेन रुक जाए और हादसा टल जाए, लेकिन तेज रफ्तार से दौड़ती ट्रेन अचानक ब्रेक लगने से क्राबू से बाहर हो गई। इंजन और उसके साथ लगी हुई बारह बोगियाँ पटरी से उछल पड़ीं और पूरी ट्रेन अपनी लाइन छोड़कर किनारे के गड्ढे में जा गिरी। काफ़ी लोग मर गए और बहुत-से घायल हो गए।

इस वाक्य में यह सबक है कि आप ऐसा नहीं कर सकते कि हालात को नज़र-अंदाज़ करके अपनी जिंदगी की गाड़ी तेज दौड़ाने लग जाएँ, क्योंकि इस दुनिया में सिर्फ़ आप ही नहीं हैं, बल्कि दूसरे लोग भी हैं। यहाँ सिर्फ़ आप ही सक्रिय नहीं हैं, बल्कि दूसरे लोग भी सक्रिय हैं। ऐसी दुनिया में केवल वही शाख्स या क्रौम कामयाब हो सकती है, जो बाहरी हालात को अच्छी तरह समझे और उनका ख्याल रखते हुए अपनी गाड़ी को आगे बढ़ाए। अगर यह समझदारी न बरती जाए, तो रास्ते में कोई भी बुरी घटना हमारी सारी योजना को तबाह कर देगी।

ज्यादातर लोगों के पास नाकामी की वजह सिर्फ़ एक होती है— “फ़लों की साज़िश ने उनकी योजना को बरबाद कर दिया,” मगर यह बहाना सिर्फ़ इस बात का सबूत है कि उस क्रदम में हालात का पूरा ख्याल शामिल नहीं था।

‘गाड़ी’ चाहे पूरी तरह आपकी हो, मगर जिस ‘सड़क’ पर आपको अपनी गाड़ी दौड़ानी है, वह पूरी तरह आपकी नहीं है। यह हकीकत चाहे किसी के लिए कितनी भी कड़वी हो, मगर वह है और यह मुमकिन नहीं कि उसे नज़र-अंदाज़ करके कोई शाख्स इस दुनिया में कामयाब हो सके।

जो लोग इस हकीकत को नज़र-अंदाज़ करके अपनी जिंदगी की गाड़ी दुनिया की सड़क पर दौड़ते हैं, उनके हिस्से में कभी मंज़िल नहीं आती। इस दुनिया में उनके लिए जो एक चीज़ तय है, वह यह है कि वे हर क्रदम के बाद

नाकाम हों और फिर किसी-न-किसी 'साज़िश' का पर्दाफ़ाश करके उसके ख़िलाफ़ शिकायत करते रहें।



पहले जागरूकता पैदा कीजिए



मस्जिद का मुअज़्ज़िन फ़ज़्र से कुछ पहले उठा। वह किसी ज़रूरत से मस्जिद के बाहर निकला, तो उसने देखा कि एक शख्स अपनी दुकान खोल रहा है, क्योंकि अभी अँधेरा था और इतने सवेंरे दुकान खोलना आम बात नहीं थी, तो वह रुककर देखने लगा। अचानक उसके दिमाग़ में सवाल आया— 'यह आदमी अँधेरे में दुकान के अंदर जाकर सबसे पहले क्या काम करेगा?' एक पल सोचने के बाद उसके दिल ने कहा कि यह शख्स सबसे पहले दुकान की लाइट जलाएगा, क्योंकि जब तक दुकान के अंदर अँधेरा है, वह कोई काम नहीं कर सकता। अब वह अपने अंदाज़े की पुष्टि के लिए वहीं रुककर दुकानदार को देखने लगा। मुअज़्ज़िन का अंदाज़ा सही निकला। दुकान का दरवाज़ा खोलते ही दुकानदार का हाथ सबसे पहले बिजली के बटन पर पहुँचा। फिर तभी दुकान के अंदर रोशनी हो गई।

इसी मिसाल से हम मज़हब और क़ौम के मामले को भी समझ सकते हैं। धार्मिक या सामुदायिक काम करने के लिए भी सबसे पहले 'रोशनी' जलाने की ज़रूरत है यानी लोगों की समझ और जागरूकता को जगाने की। अँधेरे मकान या दुकान को रोशन करने के लिए रोशनी की ज़रूरत होती है। ठीक उसी तरह मिल्लत के अंदर कोई असली और फ़ायदेमंद काम शुरू करने के लिए सबसे पहली ज़रूरत यह है कि मिल्लत के लोगों को मानसिक तौर पर जागरूक बनाया जाए। उनकी सोचने-समझने की क्षमता को जगाया जाए। लोगों के अंदर समझ की रोशनी जलाए बिना कोई असली काम नहीं किया जा सकता।

हाजियों का एक क़ाफ़िला ग़ार-ए-हिरा देखने के लिए रवाना हुआ। जिस पहाड़ पर ग़ार-ए-हिरा है, वहाँ तक सड़क जाती है। आदमी पहाड़ तक वाहन से जाता है और फिर वहाँ से पैदल पहाड़ पर चढ़ता है। जब क़ाफ़िले के लोग पहाड़ पर चढ़ने लगे, तो कुछ लोगों ने इज़्जत और पवित्रता के ज़ब्बे से सड़क

के पास अपनी चप्पलें उतार दीं। सुबह का वक्रत था, इसलिए नंगे पैर ऊपर जाने में कोई ख़ास तकलीफ़ नहीं हुई, मगर जब वे लोग वापस लौटे, तो दोपहर हो चुकी थी। पहाड़ के लाल पत्थर गर्म हो चुके थे। बिना चप्पल वाले लोग बहुत तकलीफ़ के साथ नीचे उतरे, उनके पैरों में छाले पड़ गए थे। इसकी वजह से वे कई दिनों तक परेशान रहे।

सफ़र चाहे पहाड़ का हो या ज़िंदगी का, हर एक की कामयाबी का एक ही नियम है और वह यह कि सफ़र की शुरुआत में ही सफ़र के अंत का पूरा अंदाज़ा लगा लिया जाए। जो शख्स सफ़र की शुरुआत में सफ़र के आखिरी हालात का अंदाज़ा नहीं लगा पाता, उसके हिस्से में अकसर ऐसी मुश्किलें आती हैं, जो उसके सफ़र के मक़सद को बेमानी कर देती हैं। ईश्वर का यह क़ानून इतना सख़्त है कि एक ईमानदार आदमी भी इस क्रिस्म की ग़लती करने के बाद उसके नतीजे से नहीं बच सकता। अगर वह अच्छी नीयत से ऐसा क़दम उठा बैठे, जिसके नतीजों पर उसने ग़ौर न किया हो, तो इस दुनिया में उसके बुरे नतीजों से वह भी उसी तरह दो-चार होगा, जिस तरह एक बुरी नीयत वाला शख्स इस तरह की ग़लती करके दो-चार होता है। किसी की अच्छी नीयत उसकी ग़लती के खिलाफ़ उसकी हिफ़ाज़त नहीं कर सकती।



आर्थिक हमला



हवाई (Hawaii) प्रशांत महासागर का एक द्वीप है। वहाँ के एक तटीय इलाक़े का नाम पर्ल हार्बर है। अमेरिका ने पर्ल हार्बर को एक नौसैनिक अड्डे के तौर पर विकसित किया। यह प्रशांत महासागर में अमेरिका का सबसे मज़बूत नौसैनिक ठिकाना बन गया। दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान 7 दिसंबर, 1941 को जापान ने पर्ल हार्बर पर बमबारी करने वाले हवाई जहाज़ों से हमला किया। उस वक्रत अमेरिका के लगभग सौ युद्धपोत वहाँ मौजूद थे; जापानी बमबारी ने उनमें से ज़्यादातर को तबाह कर दिया।

अमेरिका ने इसका बदला 6 अगस्त, 1945 को जापान पर दो परमाणु बम गिराकर लिया। इसके नतीजे में जापान के दो सबसे अहम औद्योगिक शहर पूरी

तरह तबाह हो गए। हालाँकि ये दोनों शहर (हिरोशिमा और नागासाकी) अब फिर से और भी शानदार तरीके से बनाए जा चुके हैं। 1945 में वे जापान की बरबादी की निशानी थे। 1985 में वे जापान की गैर-मामूली तरक्की की निशानी हैं।

दूसरे विश्वयुद्ध का अंत जापान की पूरी तरह हार पर हुआ था। इसके अलावा अमेरिका ने उस पर अपना फ़ौजी और सियासी दबदबा कायम कर लिया, मगर जापान ने हैरतअंगेज तरीके से यह साबित किया कि उसमें हालात के मुताबिक़ खुद को बदल लेने की कुव्वत है। दूसरे विश्वयुद्ध से पहले वह हथियारों पर यकीन रखता था, मगर युद्ध के बाद उसने खुद अपनी मर्ज़ी से हथियार अलग रख दिए और बिलकुल शांतिपूर्ण तरीके से अपना पुनर्निर्माण शुरू किया। जापान ने लड़ाई के मैदान को छोड़ दिया, जो उसके लिए बंद हो चुका था। उसने निर्माण के मैदान को अपना लिया, जो अब भी उसके लिए खुला हुआ था।

दूसरी तरकीब पहली तरकीब से ज़्यादा कामयाब रही। जापान उद्योग और व्यापार में इतना आगे बढ़ गया कि आज उसे दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी आर्थिक शक्ति माना जाता है। अमेरिका के मुक़ाबले उसका व्यापार अधिशेष (trade surplus) लगभग 37 अरब डॉलर है। युद्ध में जीतने वाले अमेरिका को हारे हुए जापान ने अर्थव्यवस्था के मैदान में हरा दिया।

इन हालात से अमेरिका के लोग बेहद परेशान हैं। वे जापान के मौजूदा हमले को 'आर्थिक पर्ल हार्बर' का नाम देते हैं। अमेरिका में एक किताब छपी है, जो इस वक्रत अमेरिका और जापान में सबसे ज़्यादा बिकने वाली किताब बन गई है। इस किताब का नाम है— 'जापान नंबर वन'।

इस किताब में दिखाया गया है कि जापान और अमेरिका के बीच व्यापार में जापान बहुत ज़्यादा आगे बढ़ गया है और जल्द ही वह ब्रिटेन से भी आगे निकलने वाला है। विदेशी संपत्ति के लिहाज़ से जापान आज दुनिया का सबसे ज़्यादा दौलतमंद मुल्क है। 1984 के आखिर में उसकी विदेशी संपत्ति 74 अरब डॉलर थी। (टाइम्स ऑफ़ इंडिया; 13 14 जून, 1985)

जापान ने अपनी फ़ौजी हार को आर्थिक जीत में कैसे बदला? इसका राज़ था कि जापान ने दोबारा वहाँ से अपना सफ़र शुरू किया, जहाँ हालात ने उसे पहुँचा दिया था। उसने गुस्से की जगह सब्र का तरीका अपनाया। उसने टकराव के मैदान से हटकर शांतिपूर्ण मैदान में अपनी ताकतों का इस्तेमाल किया। जो मौक़ा खत्म

हो गया था, वह उसका रोने वाला नहीं बना, बल्कि जो मौक़ा बच गया था, उसने उस पर अपनी सारी तवज्जोह लगा दी।

निष्कर्ष यह कि जापान ने दूसरों को दोष देने के बजाय खुद को दोष दिया और उसके बाद फ़ौरन उसका नया इतिहास बनना शुरू हो गया, जो तब तक नहीं रुका, जब तक वह पूर्णता की हद तक नहीं पहुँच गया।

आप इस दुनिया में अकेले नहीं हैं, बल्कि यहाँ दूसरे बहुत-से लोग भी हैं और वे सब आगे बढ़ने और हावी होने की कोशिश कर रहे हैं। इन हालात के सामने आपका तरीक़ा दो क्रिस्म का हो सकता है। एक यह कि जहाँ कोई दूसरा आपको अपने रास्ते में रुकावट नज़र आए, वहाँ आप उससे लड़ना शुरू कर दें। दूसरा तरीक़ा यह है कि टकराव से बचकर अपनी पॉज़िटिव तामीर करने की कोशिश करें।

इतिहास का तजुर्बा बताता है कि इस दुनिया में सिर्फ़ दूसरा तरीक़ा ही कामयाब तरीक़ा है। इसके उलट पहला तरीक़ा सिर्फ़ बरबादी का तरीक़ा है। समुद्री जहाज़ को अगर चलते हुए रास्ते में चट्टान मिल जाए, तो वह उससे बचकर निकल जाता है और जो जहाज़ उससे लड़कर जाना चाहे, वह टूटकर खत्म हो जाता है। ऐसे जहाज़ के लिए मंज़िल पर पहुँचना मुक़द्दर में नहीं है।



बिना जाने बोलना



यह 22 दिसंबर, 1985 की बात है। मैं कुछ साथियों के साथ दिल्ली का चिड़ियाघर देखने गया। अलग-अलग जानवर देखते हुए हम उस जगह पहुँचे, जहाँ एक सफ़ेद शेर लोहे के घेरे के अंदर रखा हुआ था। क्रिस्मत से उस वक़्त शेर अपनी गुफ़ा के बाहर टहल रहा था और देखने वालों को मौक़ा दे रहा था कि वे उसे अच्छी तरह देख सकें।

मैं घेरे के पास दूसरे देखने वालों के साथ खड़ा था कि अचानक एक साहब की जोशीली आवाज़ मेरे कान में आई— “ऐसा सफ़ेद शेर दुनिया में सिर्फ़ यही एक है। रीवा के महाराजा के पास दो सफ़ेद शेर थे, जो उन्होंने आज़ादी के बाद

भारत सरकार को दे दिए। उनमें से एक मर चुका है और एक बचा है, जिसे हम लोग अभी देख रहे हैं।”

उस वक़्त तक मुझे इस बारे में ज़्यादा जानकारी नहीं थी। मैं उनकी बात सुनकर आगे बढ़ गया, लेकिन मैं कुछ ही क़दम चला था कि घेरे के पास लगा हुआ एक बड़ा बोर्ड नज़र आया। उस पर चिड़ियाघर के अधिकारियों की तरफ़ से सफ़ेद शेर के बारे में डिटेल में जानकारी लिखी हुई थी। यह जानकारी दो भाषाओं (अंग्रेज़ी और हिंदी) में थी। मैंने उसे पढ़ा। उसमें बताया गया था कि इस वक़्त दुनिया में कुल 69 सफ़ेद शेर पाए जाते हैं, जिनमें से सिर्फ़ 25 सफ़ेद शेर भारत में हैं। बोर्ड पर 69 सफ़ेद शेरों के होने का ज़िक्र था और ठीक उसके पास एक साहब यह ऐलान कर रहे थे कि दुनिया में इस वक़्त सिर्फ़ एक ही सफ़ेद शेर है और यह इकलौता शेर दिल्ली के चिड़ियाघर की मिल्कियत है।

यह एक साधारण-सी मिसाल है, जो यह बताती है कि लोग हक़ीक़तों से कितने ज़्यादा बेख़बर होते हैं और फिर भी वे हक़ीक़तों के बारे में कितना ज़्यादा बोलते हैं। आज की दुनिया में यह आम आदत बन गई है कि इंसान बातों की पड़ताल नहीं करता। इसके बावजूद वह इसे अपना नेचुरल हक़ समझता है कि वह हर मुद्दे पर बिना रुके बोले, चाहे उसके बारे में उसे कुछ भी जानकारी न हो।

बोलने से पहले जान लीजिए। राय ज़ाहिर करने से पहले रिसर्च कीजिए। जानकारी के बिना बोलना अगर जहालत है, तो पड़ताल के बिना राय ज़ाहिर करना शरारत है और दोनों बराबर की बुराइयाँ हैं। अगर इनमें फ़र्क़ है, तो वह डिग्री का है, न कि क्रिस्म का।



ख़ुशी का राज



माग़रेट ली रनबेक (Margaret Lee Runbeck) ने कहा है— “ख़ुशी कोई ऐसी जगह नहीं है, जहाँ आप पहुँच जाएँ, बल्कि यह सफ़र करने का एक तरीक़ा है।”

हर इंसान ख़ुशी चाहता है, मगर आज की दुनिया में किसी को ख़ुशी नहीं मिलती। यह दुनिया इसलिए बनी ही नहीं है कि यहाँ इंसान अपनी ख़ुशियों का

घर बना सके। जो शख्स खुशी को अपनी मंज़िल समझे, वह कभी खुशी नहीं पा सकता। खुशी सिर्फ उसी के लिए है, जो बिना खुशी के भी खुश रहना सीख जाए।

अगर इंसान यह समझ ले कि इस दुनिया में गम टलने वाला नहीं है, तो वह गम के साथ रहना सीख जाएगा। अगर उसे नुक़सान होगा, तो वह रोना-पीटना नहीं करेगा, बल्कि उससे अपने लिए सबक़ की सीख लेगा। अगर उसकी उम्मीदें पूरी नहीं होंगी, तो वह निराशा में नहीं डूबेगा। उसे यह एहसास उसका सहारा बन जाएगा कि इस दुनिया में किसी की भी उम्मीदें पूरी नहीं होतीं, चाहे वह अमीर हो या गरीब, राजा हो या एक आम इंसान।

अगर खुशी और कामयाबी से इंसान को कुछ मिलता है, तो गम और नाक़ामयाबी से भी इंसान को बहुत कुछ मिलता है। गम और नाक़ामयाबी के तजुर्बे इंसान को गंभीर बनाते हैं। वे उसकी सोच में गहराई पैदा कर देते हैं। उनके ज़रिए वह नए-नए सबक़ सीखता है। गम और नाक़ामयाबी के तजुर्बे इंसान के पूरे अस्तित्व को बदलकर एक नया इंसान बना देते हैं। अगर दुनिया में सिर्फ़ खुशी और कामयाबी होती, तो दुनिया ऊपरी और बेज़ान इंसानों का क़ब्रिस्तान बन जाती। असल में यह गम और नाक़ामयाबी ही है, जिसकी वजह से दुनिया कभी ज़िंदादिल इंसानों से ख़ाली नहीं होती।

ज़िंदगी की कड़वाहट इंसान की ज़िंदगी के लिए वही अहमियत रखती है, जो सोने-चाँदी के लिए आग में तपाने की प्रक्रिया की होती है। तपाने की प्रक्रिया सोने-चाँदी को शुद्ध और चमकदार बनाती है। ठीक उसी तरह कड़वे तजुर्बे इंसान को निखारते हैं। वे एक फीके इंसान को चमकदार इंसान बना देते हैं।



बुराई की जड़



विलियम लॉ (1686-1761) एक मशहूर अंग्रेज़ लेखक हैं। नैतिकता के बारे में अपने विचार रखते हुए उन्होंने लिखा है— “बुराई की शुरुआत सिर्फ़ घमंड से हो सकती है और उसका अंत सिर्फ़ विनम्रता से ही हो सकता है।”

एक इंसान दूसरे इंसान के खिलाफ़ जो भी ज़ुल्म या बिगाड़ करता है, उन

सबकी जड़ में खुला या छुपा हुआ घमंड शामिल रहता है। घमंड की वजह से इंसान सच्चाई को नहीं मानता, क्योंकि वह समझता है कि सच्चाई को मान लेने से उसकी बड़ाई खत्म हो जाएगी। वह भूल जाता है कि सच्चाई को न मानकर वह सच्चाई के मुकाबले में खुद अपनी ज्ञात को ऊपर रख रहा है। हालाँकि इस दुनिया में सबसे बड़ी चीज़ सच्चाई है, न कि किसी की ज्ञात।

जिस इंसान के स्वभाव में घमंड हो, वह इस दुनिया में कभी कामयाब नहीं हो सकता, क्योंकि मौजूदा दुनिया में कामयाबी का असली राज यह है कि इंसान खुद को हकीकत के मुताबिक ढाल ले। वह वही करे, जो हकीकत के हिसाब से उसे करना चाहिए और वह न करे, जो हकीकत के हिसाब से उसे नहीं करना चाहिए, मगर घमंडी इंसान के बड़प्पन का स्वभाव उसके लिए इसमें रुकावट बन जाता है कि वह खुद को हकीकत के मुताबिक ढाले। वह चाहता है कि हकीकत खुद उसके मुताबिक ढल जाए।

चूँकि असल में ऐसा होना मुमकिन नहीं है, इसलिए ऐसे इंसान का इसी दुनिया में कामयाब होना भी मुमकिन नहीं है।



कामयाब तरकीब



जेल से फ़रार होना आजकल एक कला बन गया है। अखबारों में इसके उदाहरण आते रहते हैं। इस सिलसिले का एक दिलचस्प वाक्या वह है, जो 26 मई, 1986 को पेरिस में हुआ।

विकसित पश्चिमी देशों में हवाई जहाज़ और हेलीकॉप्टर आम इस्तेमाल की चीज़ बन गए हैं। वहाँ कोई भी शख्स एक हेलीकॉप्टर किराये पर ले सकता है। ठीक उसी तरह, जैसे भारत जैसे मुल्कों में मोटरकार किराये पर ली जाती है। उक्त तारीख़ को एक 30 साल की औरत ने एक कमर्शियल कंपनी, एयर कॉन्टिनेंट, से एक हेलीकॉप्टर किराये पर लिया। वह खुद इसे उड़ाती हुई पेरिस की ला सांते जेल के ठीक ऊपर पहुँची और पहले से तय प्रोग्राम के मुताबिक एक कैदी को लेकर फ़रार हो गई।

इस जेल में एक 34 साल का आदमी कैद था। उसका नाम मिशेल वोजर बताया गया है। उसे हथियारबंद डकैती के जुर्म में 8 मार्च, 1985 को 18 साल की सजा हुई थी। उक्त हेलीकॉप्टर सुबह साढ़े दस बजे जेल के ऊपर उड़ता हुआ पहुँचा। वह उसकी छत पर उतरा और उक्त कैदी को लेकर उड़ गया। यह पूरी कार्रवाई सिर्फ 5 मिनट के अंदर पूरी हो गई। जेल में हथियारबंद पुलिस मौजूद थी, लेकिन यह सारी कार्रवाई इतनी अचानक और इतने अंदाजे से हुई कि हथियारबंद पुलिस उस पर एक गोली भी नहीं चला सकी।

(टाइम्स ऑफ़ इंडिया, इंडियन एक्सप्रेस; 27 मई, 1986)

जब दो पक्षों के बीच मुकाबला हो, तो उसमें वही पक्ष कामयाब होता है, जो इस क्रिस्म की तरकीब इस्तेमाल करने की कुव्वत रखता हो। आज की दुनिया में कामयाबी का राज यह है कि मुकाबले वाले को बेखबरी में पकड़ लिया जाए। अचानक ऐसा क्रदम उठाया जाए कि दूसरा पक्ष तुरंत कुछ सोच न पाए। उसे तब होश आए, जब उसके खिलाफ़ कार्रवाई अपनी कामयाबी की आखिरी हद पर पहुँच चुकी हो।

बताई गई मिसाल में इस तरकीब को एक शख्स ने अपराधी हमले के लिए इस्तेमाल किया, मगर जायज़ बचाव के लिए भी यही तरकीब सबसे ज़्यादा कारगर तरकीब है।

एक की जगह दो

विल्हेम-II (1859-1941) जर्मनी का बादशाह था। वह अपने बाप सम्राट फ्रेडरिक के बाद 1888 में तख्त पर बैठा। वह उच्च शिक्षित था। उसने जर्मनी को फ़ौजी लिहाज़ से तरक्की देने में काफ़ी दिलचस्पी ली, मगर उसकी फ़ौजी ताक़त उसकी राजशाही को बचाने में कामयाब नहीं हुई। मुल्की हालात की वजह से उसे तख्त छोड़ना पड़ा। नवंबर, 1918 में वह हुकूमत छोड़कर हॉलैंड चला गया और वहाँ खामोशी के साथ ज़िंदगी गुज़ारकर मर गया। उसकी देशनिकाला में मौत गोया इस बात का सबूत थी कि फ़ौजी ताक़त के मुकाबले में हालात की ताक़त ज़्यादा अहम है।

यह पहले विश्वयुद्ध से कुछ पहले की बात है। जर्मनी का वह बादशाह विल्हेम-II स्विट्ज़रलैंड गया हुआ था। वह वहाँ की सुव्यवस्थित फ़ौज को देखकर बहुत खुश हुआ। उसने मज़ाकिया अंदाज़ में स्विट्ज़रलैंड के एक सिपाही से पूछा— “अगर जर्मनी की फ़ौज, जिसकी तादाद तुम्हारी फ़ौज से दोगुनी है, तुम्हारे मुल्क पर हमला कर दे, तो तुम उस वक्रत क्या करोगे?” उस उच्च शिक्षित सिपाही ने गंभीरता के साथ जवाब दिया—

“सर, हमें बस एक की जगह दो गोलियाँ चलानी पड़ेंगी।”

इसका मतलब यह है कि ज़िंदगी में असली अहमियत तादाद की नहीं, बल्कि मेहनत और कारगुजारी (performance) की है। अगर आपका मुक्काबला करने वाला तादाद में ज़्यादा हो, तो आपको घबराने की ज़रूरत नहीं। आप अपनी मेहनत और कारगुजारी बढ़ाकर कम तादाद के बावजूद ज़्यादा तादाद पर भारी पड़ सकते हैं।

दुनिया में अपनी जगह बनाने के दो तरीक़े हैं। एक यह कि जिस आसामी के लिए बी.ए. की क्राबिलियत की शर्त हो और बी.ए. वालों ने अर्जियाँ दे रखी हों, वहाँ आप भी बी.ए. की डिग्री लेकर पहुँच जाएँ और जब आपको न लिया जाए, तो शिकायत करें कि क्यों आपके मुक्काबले में दूसरे उम्मीदवार को तरजीह दी गई, जबकि दोनों बराबर ग्रेजुएट थे। दूसरा तरीक़ा यह है कि जहाँ लोग बी.ए. की डिग्रियाँ पेश कर रहे हों, वहाँ आप मास्टर डिग्री लेकर पहुँचें; जहाँ लोग माँगी गई क्राबिलियत के आधार पर अपना हक़ माँग रहे हों, वहाँ आप उससे बेहतर क्राबिलियत दिखाकर अपना हक़ मनवा लें।

यही दूसरा तरीक़ा ज़िंदगी का असली तरीक़ा है। सारी बड़ी तरक्की और कामयाबियाँ उन्हीं लोगों के लिए तय हैं, जो बेहतर क्राबिलियत लेकर ज़िंदगी के मैदान में दाखिल हों। जिन लोगों के पास सिर्फ़ कमतर क्राबिलियत या बराबर की क्राबिलियत का सरमाया हो, उनके लिए सिर्फ़ एक ही अंजाम तय है— मुक्काबले की इस दुनिया में दूसरों से पिछड़ जाना और उसके बाद बे-फ़ायदा एतराज़ में अपना वक्रत ज़ाया करते रहना।



ऊपर वाली जगह खाली है



कुछ नौजवान बैठे हुए आपस में बातें कर रहे थे। हर कोई माहौल की शिकायत कर रहा था— “दाखिले नहीं होते, नौकरी नहीं मिलती, काम नहीं मिलता वगैरह-वगैरहा!” एक उम्रदराज और तजुर्बेकार आदमी भी मज्लिस में बैठा हुआ था। वह चुपचाप सबकी बातें सुन रहा था। आखिर में उसने कहा—

“आप लोगों की शिकायतें बिलकुल बेजा हैं। आप वहाँ जगह ढूँढ रहे हैं, जहाँ जगहें पहले से भरी हुई हैं और जहाँ जगह खाली है, वहाँ पहुँचने की कोशिश नहीं करते। आप लोग ऊँची क्राबिलियत पैदा कीजिए। फिर आपके लिए निराशा का कोई सवाल ही नहीं रहेगा, क्योंकि आम जगहें भले ही भरी हों, मगर ‘टॉप’ की जगह हर तरफ़ खाली है।”

फ़र्क़ पैदा करना कामयाबी का राज़ है। आप चाहे छात्र हों या व्यापारी, वकील हों या डॉक्टर, आप चाहे जिस मैदान में हों, अपने अंदर एक खासियत पैदा करने की कोशिश कीजिए और यक्रीनन आप कामयाब रहेंगे। अगर आप सिर्फ़ चूहे पकड़ने का एक बेहतरीन पिंजरा बनाना जानते हों, तो लोग खुद आकर आपका दरवाज़ा खटखटाने लगेंगे। लोगों की ग़लती यह है कि जिस क्रिस्म के ‘पिंजरे’ बाज़ार में भरे पड़े हैं, उसी क्रिस्म का एक और पिंजरा बनाकर बाज़ार में बैठ जाते हैं और फिर शिकायत करते हैं कि ‘हमारा पिंजरा बिकता नहीं है।’ अगर आप मेहनत करें और अपने दिमाग़ का इस्तेमाल करके एक अलग और बेहतर पिंजरा बनाएँ, तो यक्रीनन लोग उसे ख़रीदने के लिए टूट पड़ेंगे।

हर माहौल में हमेशा भेदभाव और तंगदिली मौजूद रहती है। यह बिलकुल स्वाभाविक है, मगर भेदभाव और तंगदिली के असर की एक हद होती है। अगर आप उस हद को पार कर जाएँ, तो भेदभाव और तंगदिली होते हुए भी आपको कोई नुक़सान नहीं पहुँचेगा। अगर आपके नंबर 45 फ़ीसद हैं और आपके मुक़ाबले वाले के 40 फ़ीसद, तो यह बिलकुल मुमकिन है कि भेदभाव आपके रास्ते में रुकावट बन जाए और आपको न लिया जाए; लेकिन अगर ऐसा हो कि मुक़ाबले वाले के नंबर 40 फ़ीसद हों और आपके नंबर 80 फ़ीसद हों, तो भेदभाव और तंगदिली की सारी दीवारें गिर जाएँगी और यक्रीनन आप अपने मुक़ाबले वाले के खिलाफ़ कामयाब रहेंगे।

मामूली जगहें भरी हुई हैं, मगर ऊपर वाली जगह खाली है। फिर आप क्यों नहीं उस खाली जगह पर पहुँचने की कोशिश करते, जो आपका इंतजार कर रही है? अगर आप दूसरों से ज्यादा मेहनत करें, अगर आप आम मानक से ऊँचा स्तर पेश करें, अगर आप ज्यादा बड़ी हुई क्राबिलियत के साथ जिंदगी के मैदान में दाखिल हों, तो आपके लिए बेरोजगार या बेकार रहने का कोई सवाल ही नहीं है। हर जगह आपकी जगह है, क्योंकि वह अब तक किसी आने वाले के इंतजार में खाली पड़ी हुई है।

कामयाब इंसान

ली आयाकोका (Lee Iacocca) का जन्म 1924 में हुआ था। उनके माँ-बाप बहुत गरीब थे और वे रोजी-रोटी की तलाश में इटली छोड़कर अमेरिका चले गए। आयाकोका ने मेहनत से पढ़ाई की और इंजीनियरिंग में मास्टर की डिग्री हासिल की। पढ़ाई के बाद श्री आयाकोका को फोर्ड मोटर कंपनी में नौकरी मिल गई। वे तरक्की करते रहे, यहाँ तक कि वे फोर्ड कंपनी के प्रेसिडेंट बन गए। इसके बाद हेनरी फोर्ड-II से उनका मतभेद हो गया। 1978 में उन्हें फोर्ड कंपनी छोड़नी पड़ी।

आयाकोका को एक दूसरी कंपनी की प्रेसिडेंट की पोस्ट मिल गई, जिसका नाम क्राइसलर कॉर्पोरेशन है। यह कंपनी उस वक़्त पूरी तरह दीवालिया हो चुकी थी। आयाकोका ने तीन साल की ग़ैर-मामूली मेहनत से इसे कामयाबी के साथ चला दिया, यहाँ तक कि अब वे गर्व के साथ कहते हैं—

“मैं ही कंपनी हूँ।”

आयाकोका ने अपनी आत्मकथा लिखी है, जिसका नाम है— ‘आयाकोका : एक आत्मकथा’। इस आत्मकथा में बहुत-से कीमती तजुर्बे हैं। उन्होंने अपने एक तजुर्बे को इन शब्दों में बयान किया है—

“कामयाबी की चाबी जानकारी या डिग्रियाँ नहीं हैं। यह असल में लोग हैं और मैं अपनी कंपनी के बड़े ओहदों के लिए जिस क्रिस्म के लोगों

की तलाश में रहता हूँ, वे जोशीले और मेहनती लोग हैं। यह वे लोग हैं, जो उम्मीद से ज़्यादा काम करने की कोशिश करते हैं...”

(टाइम्स ऑफ़ इंडिया; 22 सितंबर, 1985)

उम्मीद से ज़्यादा काम करना एक सज्जन और मेहनती इंसान की पक्की पहचान है। जो लोग उम्मीद से ज़्यादा काम करने की कोशिश करते हैं, वही वे लोग हैं, जो अपनी जिंदगी में उम्मीद से ज़्यादा कामयाब होते हैं।



खुद पर भरोसे का राज़



हबीब भाई (हैदराबाद) ने 12 फ़रवरी, 1984 को अपना एक क्रिस्सा सुनाया। कुछ साल पहले वे यूरोप की एक सैर पर गए थे। इसी सिलसिले में वे लौज़ान (स्विट्ज़रलैंड) भी गए। वहाँ उन्होंने एक दुकान से एक कैमरा ख़रीदा। यह कैमरा उन्हें भारतीय क्रीमत के हिसाब से पाँच हजार रुपये में मिला। उन्होंने कैमरा ले लिया, मगर बाद में उन्हें एहसास हुआ कि उनसे ग़लती हो गई है। उन्हें यूरोप से वापसी में उमरा के लिए सऊदी अरब भी जाना था। उन्होंने सोचा कि सऊदी अरब में यह कैमरा तक़रीबन तीन हजार रुपये में मिल जाएगा। फिर मैं इसे यहाँ महँगे दाम पर क्यों ख़रीदूँ?

अब उन्होंने चाहा कि इस कैमरे को वापस कर दें, मगर फ़ौरन ख्याल आया कि जब मैं दुकान पर जाकर दुकानदार से वापसी के लिए कहूँगा, तो वह पूछेगा कि क्यों वापस कर रहे हो? वापसी को जायज़ ठहराने के लिए मुझे कैमरे में कोई ख़राबी बतानी होगी। चुनाँचे उन्होंने इधर-उधर देखकर कोशिश की कि कैमरे में कोई कमी ढूँढ़ लें, ताकि उसका हवाला देकर अपनी वापसी को सही साबित कर सकें, मगर तलाश के बावजूद कैमरे में कोई ख़राबी नहीं मिली।

हालाँकि उनका दिल अंदर से ज़ोर कर रहा था। चुनाँचे वे कैमरा लेकर दोबारा दुकान पर पहुँचे। वहाँ काउंटर पर एक महिला खड़ी थी। उन्होंने कहा, “यह कैमरा मैंने आपके यहाँ से ख़रीदा था। अब मैं इसे वापस करना चाहता हूँ।” जब उन्होंने यह बात कही, तो उनकी उम्मीद के उलट महिला ने वापसी की वजह नहीं

पूछी। उसने सिर्फ़ इतना पूछा, “आप अपने पैसे डॉलर में चाहते हैं या फिर यहाँ की करेंसी में?” उन्होंने कहा, “डॉलर में।” महिला ने फ़ौरन वापसी की पर्ची बना दी। वे उसे लेकर दूसरे काउंटर पर पहुँचे। वहाँ तुरंत उन्हें वे डॉलर वापस कर दिए गए, जैसे कि पैसे और माल में उनकी नज़र में कोई फ़र्क ही नहीं था।

स्विट्ज़रलैंड के दुकानदार ने ऐसा क्यों किया— बिना कुछ कहे फ़ौरन कैमरा वापस ले लिया और पूरी क्रीम लौटा दी? इसकी वजह यह थी कि उसे अपने माल की क्वालिटी पर पूरा भरोसा था। उसे यकीन था कि मेरा माल चूँकि अच्छी क्वालिटी का है, इसलिए ज़रूर कोई-न-कोई इसे ख़रीदेगा, चाहे वह कोई एक शख्स हो या कोई दूसरा।

क्राबिल बनिए

एम.ए. ख़ान ने हायर सेकेंडरी का इम्तिहान अच्छे नंबरों से पास किया था, मगर किसी वजह से वे वक़्त पर आगे दाखिला नहीं ले सके, यहाँ तक कि अक्टूबर का महीना आ गया। अब दिखने में कहीं भी दाखिला मिलने की कोई उम्मीद नहीं थी। हालाँकि पढ़ाई का शौक उन्हें हिंदू साइंस कॉलेज के प्रिंसिपल के ऑफ़िस तक ले गया।

“सर, मैं बी.एससी. में दाखिला लेना चाहता हूँ।” उन्होंने हिंदू प्रिंसिपल से कहा।

“यह अक्टूबर का महीना है, दाखिले बंद हो चुके हैं। अब आपका दाखिला कैसे होगा?”

“अगर आप दाखिला दे देंगे, तो बहुत मेहरबानी होगी, वरना मेरा पूरा साल बरबाद हो जाएगा।”

“हमारे यहाँ सारी सीटें भरी हुई हैं। अब और दाखिले की कोई जगह नहीं है।”

प्रिंसिपल इतने ठंडे अंदाज़ में बोल रहे थे कि लग रहा था कि वे बिलकुल दाखिला नहीं देंगे और अगला वाक्य जो छात्र को सुनना पड़ता, शायद यह होता— “कमरे से बाहर निकल जाओ,” मगर छात्र के ज़िद करने पर उन्होंने बेमन

से पूछा, “तुम्हारे कितने नंबर हैं?” प्रिंसिपल को लगा कि उसके नंबर शायद बहुत कम होंगे, इसीलिए उसे कहीं दाखिला नहीं मिला। अतः जब छात्र अपना खराब नतीजा बताएगा, तो उसकी अर्जी को रद्द करने का एक ठोस बहाना मिल जाएगा, मगर छात्र का जवाब उनकी उम्मीद के उलट था। उसने कहा, “85 परसेंट।”

इस वाक्य ने प्रिंसिपल पर जादू-सा असर किया। उनका मूड तुरंत बदल गया। उन्होंने कहा, “बैठो, बैठो।” इसके बाद उन्होंने छात्र के कागजात देखे और जब कागजात ने पुष्टि कर दी कि वह सचमुच 85 फ़ीसद नंबरों से पास हुआ है, तो उन्होंने तुरंत पिछली तारीख से एक अर्जी लिखवाई। उन्होंने एम.ए. खान को न सिर्फ़ देरी के बावजूद अपने कॉलेज में दाखिल कर लिया, बल्कि कोशिश करके उन्हें एक स्कॉलरशिप भी दिलवाई।

अगर यही छात्र ऐसे हालात में प्रिंसिपल के पास गया होता कि वह थर्ड डिवीज़न से पास होता और प्रिंसिपल ने उसका दाखिला नहीं लिया होता, तो छात्र का क्या रवैया होता? वह ऐसे लौटता कि उसके दिल में नफ़रत और शिकायत भरी होती। वह लोगों से कहता कि यह सब भेदभाव की वजह से हुआ है, वरना मेरा दाखिला ज़रूर होना चाहिए था। दाखिला न मिलने की वजह उसका खराब नतीजा होती, मगर वह इसका दोष हिंदू कॉलेज को देता। माहौल की प्रतिक्रिया अकसर खुद हमारी अपनी हालत का नतीजा होती है, मगर हम इसे माहौल पर थोप देते हैं, ताकि खुद को बरी कर सकें।

अगर इंसान ने खुद अपनी तरफ़ से कोई कमी न की हो, अगर उसने ज़माने के मुताबिक़ तैयारी करके ज़िंदगी में क़दम रखा हो, तो दुनिया उसे जगह देने पर मजबूर हो जाएगी। वह हर माहौल में अपनी जगह बना लेगा, वह हर बाज़ार से अपनी पूरी कीमत वसूल करेगा। इसके अलावा ऐसे हालात में उसके अंदर ऊँचे अख़्लाक़ पनपेंगे। वह अपने तजुबों से हिम्मत, आत्मविश्वास, उदारता, शराफ़त, दूसरों की कद्र, हक़ीक़त-पसंदी और हर किसी से सही इंसानी रिश्ते का सबक़ सीखेगा। वह शिकायत की मानसिकता से ऊपर उठकर सोचेगा। माहौल उसे मानेगा, इसलिए वह खुद भी माहौल की क़द्र करने पर मजबूर होगा।

इसके उलट अगर उसने खुद को क़ाबिल साबित करने में कमी की हो, अगर वह वक़्त के मानक पर खरा न उतरता हो, अगर उसने कमतर क़ाबिलियत के साथ ज़िंदगी के मैदान में क़दम रखा हो, तो वह दुनिया में अपनी जगह बनाने में नाकाम रहेगा और इसके नतीजे में उसके अंदर जो मिज़ाज पैदा होगा, वह बेशक़

निचले दर्जे का मिजाज होगा। वह शिकायत, चिड़चिड़ाहट, गुस्सा, यहाँ तक कि अपराधी मानसिकता का शिकार होकर रह जाएगा। जब इंसान नाकाम होता है, तो उसके अंदर गलत क्रिस्म की मानसिकता जाग उठती है। हालाँकि इंसान की नाकामी की वजह हमेशा उसकी अपनी कमजोरी होती है, मगर ऐसा बहुत कम होता है कि वह खुद को दोषी ठहराए। वह हमेशा अपनी नाकामियों के लिए दूसरों को दोषी ठहराता है। वह हालात का हकीकत-पसंदाना एनालिसिस करने में नाकाम रहता है। कमतर तैयारी इंसान को एक साथ दो क्रिस्म के नुकसान देती है— खुद के लिए नाजायज नाकामी और दूसरों के बारे में नाजायज शिकायत।

पत्थर हर किसी के लिए सख्त होता है। हालाँकि वह उस इंसान के लिए नरम हो जाता है, जिसके पास उसे तोड़ने का औजार हो। यही हाल हर मामले में होता है। अगर आपने क्राबिलियत के साथ जिंदगी के मैदान में कदम रखा है, तो आप अपनी असली हैसियत से भी ज्यादा हक हासिल कर सकते हैं। 'वक्रत' निकल जाने के बाद भी एक अनजान कॉलेज में आपका दाखिला हो सकता है, लेकिन अगर आपने बिना क्राबिलियत के जिंदगी के मैदान में कदम रखा है, तो आप अपना असली हक भी नहीं पा सकते।

अगर गैस नीचे नहीं दब सकती, तो वह ऊपर उठकर अपने लिए जगह बना लेती है। अगर ऊँचाई पानी को आगे बढ़ने नहीं देती, तो वह निचले इलाके से अपना रास्ता बना लेता है। अगर पेड़ ज़मीन के ऊपर नहीं टिक सकता, तो वह ज़मीन को फाड़कर उससे अपने जीने का हक हासिल कर लेता है। यह तरीका, जो गैर-इंसानी दुनिया में ईश्वर ने अपने सीधे इंतज़ाम के तहत क्रायम किया है, वही इंसान को भी अपने हालात के मुताबिक अपना है।

हर इंसान जो दुनिया में खुद को कामयाब देखना चाहता है, उसे सबसे पहले अपने अंदर कामयाबी की क्राबिलियत पैदा करनी चाहिए। उसे चाहिए कि वह खुद को जाने और फिर अपने हालात को समझे। अपनी ताकतों को सही तरह से संगठित करे। जब वह माहौल में दाखिल हो, तो इस तरह दाखिल हो कि उसके मुकाबले में अपनी क्राबिलियत साबित करने के लिए वह खुद को पूरी तरह लैस कर चुका हो। उसने हालात से अपनी अहमियत मनवाने के लिए ज़रूरी सामान जुटा लिया हो। अगर यह सब हो जाए, तो इसके बाद आपके काम का जो दूसरा लाज़िमी नतीजा सामने आएगा, वही वह चीज़ है, जिसे हमारी ज़बान में कामयाबी कहते हैं।

(24 नवंबर, 1967)

एक छोटी-सी तरकीब से



एक डॉक्टर ने अपना क्लिनिक शुरू किया और कुछ ही दिनों में कामयाब हो गया। उन्होंने यह खास बात दिखाई कि वे हर आने वाले मरीज को सलाम करने में पहल करते। आम तौर पर डॉक्टर लोग इसका इंतज़ार करते हैं कि मरीज उन्हें पहले सलाम करे। यहाँ डॉक्टर ने खुद मरीज को सलाम करना शुरू कर दिया। यह तरीका कामयाब रहा और जल्द ही उनका क्लिनिक खूब चलने लगा, हालाँकि वे पूरी तरह से सर्टिफ़ाइड डॉक्टर नहीं थे; वे सिर्फ़ एक 'आर.एम.पी.' (रजिस्टर्ड मेडिकल प्रैक्टिशनर) थे।

एक दुकानदार ने देखा कि अगर किसी ग्राहक के पास कई नोट हैं, तो वह आम तौर पर दुकानदार को गंदे और फटे हुए नोट देता है और अच्छे व साफ़ नोटों को बचाकर अपनी जेब में रख लेता है। इससे दुकानदार ने समझा कि ग्राहक साफ़ नोट पसंद करता है। उसने ग्राहक की इस मनोवृत्ति का फ़ायदा उठाने का फ़ैसला किया। उसने यह नियम बनाया कि जब कोई ग्राहक उससे सामान खरीदेगा और क्रीम चुकाने के लिए एक बड़ा नोट देगा, तो बचत (वापसी) देते वक़्त वह हमेशा ग्राहक को नए और साफ़ नोट वापस करेगा।

दुकानदार के बक्से में हर तरह के नोट होते थे, लेकिन जब वह ग्राहक को बचत देने के लिए अपना बक्सा खोलता, तो पुराने और फटे हुए नोटों को अलग करता जाता और नए नोट चुन-चुनकर ग्राहक को देता। नए नोट पाने के लिए उसने यह किया— वह अपने सारे पुराने नोट इकट्ठा करके अपने बैंक को दे देता और बदले में बैंक से छोटे, नए नोट ले लेता। वह इन नए नोटों को अपने बक्से के पुराने नोटों में मिला देता, ताकि ग्राहक के सामने दोनों तरह के नोट हों और ग्राहक यह देखे कि उसका दुकानदार बक्से के खराब नोटों को अलग कर रहा है और साफ़ नोटों को चुन-चुनकर उसे दे रहा है।

दुकानदार की यह तरकीब ऊपर से देखने में साधारण और बिना खर्च की थी, लेकिन इसने ग्राहकों को बेहद प्रभावित किया। उन्होंने समझा कि उनका दुकानदार उनकी बहुत परवाह करता है। धीरे-धीरे उसने इस छोटी-सी तरकीब से ग्राहकों के दिल जीत लिये। उसकी दुकान इतनी कामयाब हो गई कि हर वक़्त वहाँ भीड़ लगी रहती।

कामयाबी का राज़ यह है कि आप अपने अंदर कोई खास विशेषता पैदा करें; आप यह साबित करें कि आप लोगों के हितैषी हैं। यह काम किसी छोटी-सी तरकीब से भी हो सकता है, यहाँ तक कि सिर्फ़ कुछ शब्द बोलने या पुराने नोट के बदले नया नोट देने से भी।

कुछ भी नहीं से सब कुछ तक

जो इंसान छोटे-छोटे फ़ायदों से खुश रहता है, आखिरकार वह बड़ा फ़ायदा हासिल करता है। यह एक हमेशा रहने वाला, कभी ग़लत न होने वाला सिद्धांत है। किसी भी चीज़ में इसे आजमाकर देख लो, तुम्हें कामयाबी ज़रूर मिलेगी।

एक आदमी ने बाज़ार में एक छोटी-सी दुकान खोली। वह कपड़े धोने का साबुन और कुछ और चीज़ें बेचता था। उसकी दुकान जल्दी ही बहुत भीड़-भाड़ वाली हो गई; दिन के किसी भी वक़्त उसकी दुकान ग्राहकों से ख़ाली नहीं रहती थी। उसका राज़ यह था कि वह साबुन का एक टुकड़ा 1.75 रुपये में बेचता था, जबकि उसकी असल क़ीमत 2 रुपये थी। अगर कोई चार साबुन ख़रीदता, तो उसे मूल क़ीमत के मुक़ाबले एक रुपया बच जाता। एक आदमी ने पता लगाया और पाया कि 1.75 रुपये उस साबुन का थोक-भाव था। दुकानदार को फ़ैक्ट्री से साबुन 1.75 रुपये में मिलता था और वह उसे ग्राहकों को उसी क़ीमत पर बेच देता था।

उस आदमी ने दुकानदार से पूछा, “तुम साबुन उसी क़ीमत पर बेचते हो, जिस पर तुम्हें मिलता है। फिर इससे तुम्हें क्या फ़ायदा होता है?” दुकानदार ने जवाब दिया, “मेरी दुकान पर इतना साबुन बिकता है कि रोज़ 25 डिब्बे ख़ाली हो जाते हैं। मैं इन ख़ाली डिब्बों को एक-एक रुपये में बेच देता हूँ, जिससे मुझे 25 रुपये की कमाई हो जाती है। इस तरह मैं रोज़ 25 रुपये बचा लेता हूँ। इसके अलावा जब कोई आदमी मेरे पास से साबुन ख़रीदता है, तो अकसर वह कुछ और चीज़ें भी ख़रीद लेता है; यह फ़ायदा अलग से होता है।”

यह दुकानदार धीरे-धीरे आगे बढ़ता गया। उसका मुनाफ़ा, जो शुरुआत में 25 रुपये रोज़ का था, बढ़कर 50 रुपये रोज़ हो गया। फिर वह 100 और फिर

200 रुपये रोज तक पहुँच गया। उस आदमी ने पैसे बचाए और अपने बगल वाली दुकान खरीद ली, दोनों को मिलाकर एक काफ़ी बड़ी दुकान बना ली। अब उसका कारोबार और भी बढ़ गया, इतना कि दस साल में वह शहर का एक बड़ा दुकानदार बन गया।

इस घटना से पता चलता है कि इस दुनिया में सफलता की संभावनाएँ कितनी बड़ी हैं। यहाँ तो यह भी संभव है कि एक आदमी आज 'बिना मुनाफ़े' का व्यापार शुरू करे और कल बेहद फ़ायदे वाला व्यापारी बन जाए। आज वह 'कुछ नहीं' से संतुष्ट रहे और कल वही इंसान वह हो, जो 'सब कुछ' का मालिक हो, लेकिन दुनिया की इन अनगिनत संभावनाओं को अपने पक्ष में हकीकत में बदलने की ज़रूरी शर्त है— सन्न और समझदारी। जिसके पास सिर्फ़ बेसब्री और बेवकूफ़ी की पूँजी है, उसके लिए दुनिया के बाज़ार में कुछ भी नहीं है।

खास क्राबिलियत

कुछ समय पहले मैंने एक लेख पढ़ा था। उस लेख के लेखक ने बहुत-से महान लोगों की ज़िंदगी के क्रिस्से पढ़ने के बाद यह पता लगाने की कोशिश की थी कि वह कौन-सा खास गुण है, जो एक इंसान को महान बनाता है। अपनी रिसर्च के बाद उसने बताया कि जो लोग बहुत ऊँचे मुक़ाम तक पहुँचते हैं, उनमें दो खास बातें पाई जाती हैं— जिज्ञासा और असंतोष यानी जिज्ञासा हमेशा उन्हें काम में लगाए रखती थी और असंतोष ने उन्हें कभी किसी मुक़ाम पर रुकने नहीं दिया।

विल्टशायर की गणित सलाहकार श्रीमती अनीता स्ट्रैकर (Mrs. Anita Straker) ने स्कूल्स काउंसिल के लिए 108 पन्नों की एक शैक्षिक रिपोर्ट तैयार की है। इस रिपोर्ट में बताया गया है कि प्रतिभाशाली बच्चों के क्या गुण होते हैं। रिपोर्ट के शब्दों में, एक खास गुण यह है—

“जो छात्र दूसरे दर्जे की किसी भी चीज़ से बेचैन हो जाते हैं, वे शायद प्रतिभाशाली होते हैं।” (हिंदुस्तान टाइम्स; 2 फ़रवरी, 1983)

यह इंसान का एक बहुत ही बढ़िया गुण है कि वह सबसे अच्छी चीज़ से कम पर कभी संतुष्ट नहीं होता। यही गुण इंसान के लिए सारी अच्छाइयों और महानता की सीढ़ी है।

यह स्वभाव इंसान को मजबूर करता है कि वह पूरी सच्चाई की तरफ़ बढ़ता चला जाए और किसी आधे-अधूरे सच पर रुके नहीं। यह स्वभाव उसे निचले चरित्र से उठाकर ऊँचे चरित्र वाला बना देता है। यह स्वभाव उसे छोटी-मोटी कामयाबी पर खुश नहीं होने देता और लगातार उसे बड़ी उपलब्धियों की तरफ़ धकेलता रहता है। यह स्वभाव उसे इस लायक बनाता है कि वह अपना काम करते वक़्त सिर्फ़ बेहतरीन मानक को ही अपने सामने रखे और अपना काम पूरी तरह से करके ही खुशी महसूस करे। यह स्वभाव इंसान के अपने अंदर ही एक ऐसा जोश भर देता है, जो उसे लगातार उकसाता रहता है कि वह सिर्फ़ सर्वोत्तम भलाई पर ही टिका रहे, उससे कम किसी भी चीज़ पर खुद को राज़ी न करे।



स्व-निर्माता से इतिहास-निर्माता तक



इंसान दो क्रिस्म के होते हैं। एक वे, जो स्व-निर्माता यानी अपने आपको बनाने वाले होते हैं और दूसरे वे, जो इतिहास-निर्माता यानी इतिहास बनाने वाले होते हैं। अपने आपको बनाने वाले इंसान का ध्यान बस अपनी ही ज़ात पर टिका रहता है, जबकि इतिहास बनाने वाले इंसान का ध्यान पूरी इंसानियत पर होता है।

अपने आपको बनाने वाले इंसान की सोच उसके अपने फ़ायदों के इर्द-गिर्द घूमती रहती है। उसकी भावनाएँ तभी भड़कती हैं, जब उसके निजी फ़ायदे की बात हो और जिस बात का ताल्लुक उसके फ़ायदे से नहीं होता, उसके दिल में उसके लिए कोई जोश पैदा नहीं होता।

अपने आपको बनाने वाला इंसान अपने मुनाफ़े के लिए किसी भी चीज़ की कुर्बानी दे सकता है, चाहे वह कोई सिद्धांत हो, कोई वादा हो, कोई नैतिक ज़रूरत हो या कोई इंसानी ज़रूरत। वह अपने आपके लिए हर दूसरी चीज़ को भुला सकता है। वह अपनी ख्वाहिशों के आगे हर दूसरी माँग को अनदेखा कर सकता है।

इतिहास बनाने वाले इंसान का मामला इससे एकदम उलट होता है। वह अपनी ज्ञात के खोल से बाहर निकल आता है। वह एक बड़े मक़सद के लिए जीता है। वह सिद्धांतों को अहमियत देता है, फ़ायदों को नहीं। वह मक़सद के लिए तड़पने वाला इंसान होता है, न कि फ़ायदे के लिए तड़पने वाला। वह अपने अंदर रहते हुए भी अपने आपसे अलग हो जाता है।

इतिहास बनाने वाला इंसान बनने की एक ही शर्त है— सिर्फ़ अपने आपको बनाने की फ़िक्र को छोड़ देना। इंसान तभी इस क़ाबिल बनता है कि इतिहास बनाने वाला लोगों की फ़ेहरिस्त में शामिल हो, जब वह अपने आपको मिटा दे... भले ही उसके दिल को झटके लगें, फिर भी वह उन्हें सह ले। भले ही उसके फ़ायदे का महल टूट रहा हो, फिर भी वह उसे टूटने दे। भले ही उसकी बड़ाई उसकी आँखों के सामने मिटाई जा रही हो, फिर भी वह उस पर कोई प्रतिक्रिया न दिखाए।

इतिहास बनाने के लिए ऐसे लोग चाहिए, जो सिर्फ़ अपने आपको बनाने की ख्वाहिशों को अपने हाथों से कुर्बान करने को तैयार हों। जो सिर्फ़ अपने फ़र्ज को याद रखें और अपने अधिकारों के त्याग पर खुद अपने हाथों से दस्तखत कर दें।



एक रोल निभाना



‘गांधी’ नाम की एक फ़िल्म बनाई गई है, जिस पर 22 मिलियन डॉलर का खर्च आया है। यह फ़िल्म महात्मा गांधी की ज़िंदगी के बारे में है। इस फ़िल्म को बनाने वाले एक अंग्रेज़ हैं— सर रिचर्ड एटनबरो। वे 20 साल से इस फ़िल्म को बनाने की कोशिश कर रहे थे, लेकिन कामयाब नहीं हो पा रहे थे। कोई भी मूवी कंपनी इसमें पैसा लगाने के लिए तैयार नहीं थी, क्योंकि लोगों की राय थी कि यह फ़िल्म बिल्कुल भी कमर्शियल नहीं होगी। हालाँकि बेन किंग्सले ने गांधी का रोल इतनी कामयाबी से निभाया कि अब यह फ़िल्म सबसे कामयाब फ़िल्मों में गिनी जाती है।

बेन किंग्सले के पिता एक भारतीय गुजराती डॉक्टर थे, जिन्होंने एक अंग्रेज़ महिला से शादी की थी। बेन किंग्सले का असली नाम कृष्णा भांजी था। बाद में उन्होंने अपना नाम बदलकर बेन किंग्सले रख लिया। बेन किंग्सले को गांधी से

शारीरिक समानता की वजह से इस फ़िल्म में हीरो का रोल दिया गया था। उसके बाद उन्होंने लंबे समय तक बहुत मेहनत की।

बेन किंमसले शूटिंग शुरू होने से काफ़ी पहले ही भारत आ गए थे। उन्होंने अपने सिर के बाल मुँडवा लिये, ताकि उनका सिर गांधी की तरह गंजा दिखे। उनका वज़न ज़्यादा था, इसलिए उन्होंने लगातार कम खाना खाया और अपना वज़न 20 किलो कम करके खुद को पतला बना लिया। वे लंबे समय तक धूप में बैठते रहे, ताकि उनका रंग गांधी की तरह साँवला दिखे। उन्होंने फ़िल्म की पूरी कहानी याद कर ली। उन्होंने अपने कमरे की दीवारों को महात्मा गांधी की तस्वीरों से भर दिया। वे महात्मा गांधी पर बनी पाँच घंटे की एक डॉक्यूमेंट्री (वृत्तचित्र) को लगातार देखते रहे। वे गांधी की तरह पालथी मारकर (क्रॉस-लेग्ड) बैठने में सक्षम नहीं थे, इसलिए उन्होंने रोज़ दो घंटे योगा की एक्सरसाइज़ की, ताकि वे लंबे समय तक पालथी मारकर बैठने की आदत डाल सकें। इसके साथ ही उन्होंने रोज़ दो घंटे चरखा कातने का अभ्यास किया, ताकि शूटिंग के दौरान वे बिलकुल महात्मा गांधी की तरह चरखा कात सकें। (न्यूजवीक; 13 दिसंबर, 1982)

बेन किंमसले को एक फ़िल्म में एक खास रोल निभाना था। इसके लिए उन्होंने इतनी व्यापक तैयारी की। लंबी और कड़ी मेहनत के बाद ही वे इस रोल को सफलतापूर्वक निभाने में कामयाब हुए। फिर उन लोगों का क्या, जो खुद को सबसे अच्छा समुदाय (खैर-ए-उम्मत) कहते हैं? उन्हें इंसानी इतिहास में सबसे अहम रोल निभाना है। क्या बिना किसी तैयारी के वे इस मुश्किल रोल को सफलतापूर्वक निभा पाएंगे?



फ़र्क़ की वजह



सितंबर, 1986 में सियोल (साउथ कोरिया) में दसवें एशियाई खेल (10th Asian Games) हुए थे। इस 16 दिन की प्रतियोगिता में साउथ कोरिया को कुल सबसे ज़्यादा मेडल मिले। कुछ मुल्कों का हिसाब इस तरह है—

कामयाबी का राज

देश	गोल्ड	सिल्वर	ब्रॉन्ज	कुल
चीन	94	82	46	222
साउथ कोरिया	93	55	76	224
जापान	58	76	77	211
ईरान	6	6	10	22
भारत	5	9	23	37
फ़िलीपींस	4	5	9	18
थाईलैंड	3	10	13	26
पाकिस्तान	2	3	14	19

इस टेबल के मुताबिक, तीन देशों (चीन, कोरिया, जापान) ने कुल 270 गोल्ड मेडल में से 245 मेडल जीते। भारत साउथ कोरिया से काफ़ी बड़ा देश है, लेकिन ऊपर दी गई टेबल से साफ़ है कि भारत इस मुक़ाबले में साउथ कोरिया से बहुत पीछे रह गया।

इस पर टिप्पणी करते हुए अंग्रेज़ी अख़बार ‘द इंडियन एक्सप्रेस’ (नई दिल्ली; 6 अक्टूबर, 1986) ने लिखा कि कोरिया वालों ने अपने एथलीट्स को चुनने के लिए एक कंप्यूटर का इस्तेमाल किया और हर खेल के लिए उनकी ट्रेनिंग पर दो साल तक दस-दस लाख डॉलर खर्च किए। यह ट्रेनिंग का सिलसिला दो साल तक चला। भारत ने अपना पुराना तरीक़ा अपनाया— ‘कोशिश करो, चाहे हार जाओ’। यह तरीक़ा अपनी पुरानी बीमारियों यानी ‘छोटी सोच’ (पैरोकियलिज़्म) और ‘भाई-भतीजावाद’ (नेपोटिज़्म) से भी पूरी तरह साफ़ नहीं था।

दूसरे शब्दों में, कोरिया वालों ने अपने खिलाड़ियों को उनकी असली क्वालिफ़िकेशन के आधार पर चुना, जबकि भारत में ज़्यादातर खिलाड़ियों का चुनाव ‘तू-तू, मैं-मैं’ (रिश्ते-जान-पहचान) के आधार पर हुआ। कोरिया ने बहुत-से खिलाड़ियों की ज़रूरी जानकारी एक कंप्यूटर में डाली और फिर कंप्यूटर ने जो बिना किसी पक्षपात के फ़ैसला दिया, उसे मान लिया। इसके उलट भारत में चुनाव का आधार यह था— “यह मेरा रिश्तेदार है,” “यह मेरे इलाक़े का आदमी है”। जहाँ तरीक़े में इस तरह का फ़र्क़ हो, वहाँ नतीजे में फ़र्क़ आना तो तय है।

मिलकर काम करना



शहद बनाना एक बहुत ही मेहनत वाला काम है। बहुत सारी मक्खियाँ लगातार दिन-रात काम करती हैं, तब जाकर वह चीज़ बनती है, जिसे हम शहद कहते हैं। इसकी वजह यह है कि एक फूल में बहुत ही कम रस होता है। अनगिनत फूलों का रस इकट्ठा किया जाता है, तब जाकर शहद की एक अच्छी-खासी मात्रा तैयार हो पाती है।

सिर्फ़ एक पौंड (आधा किलो) शहद बनाने के लिए मधुमक्खियों को कुल मिलाकर कभी-कभी तीन लाख मील का सफ़र तय करना पड़ता है। देखा गया है कि एक मक्खी की उम्र कुछ महीनों से ज़्यादा नहीं होती, इसलिए कोई अकेली मक्खी एक पौंड शहद कभी नहीं बना सकती, भले ही वह अपनी पूरी ज़िंदगी फूलों का रस इकट्ठा करने में ही लगा दे।

मधुमक्खियों ने इस मुश्किल का हल ढूँढ़ लिया है— एक साथ मिलकर काम करने में यानी वह काम, जो एक मक्खी नहीं कर सकती, वह लाखों मक्खियाँ मिलकर लेती हैं। वह काम, जो 'एक' के लिए नामुमकिन है, वह तब मुमकिन हो जाता है, जब करने वाले 'लाखों' हो जाते हैं।

यह प्रकृति की तरफ़ से एक सबक्र है। ईश्वर के लिए यह मुमकिन था कि वह ज़मीन में ही शहद के बड़े-बड़े भंडार रख दे, जैसे पेट्रोल और पानी के बड़े-बड़े भंडार दुनिया में कई जगह मौजूद हैं, लेकिन ईश्वर ने शहद बनाने की प्रक्रिया को एक बहुत ही पेचीदा सिस्टम से जोड़ दिया। इस हैरतअंगेज सिस्टम में इंसानों के लिए बेशुमार सीखें हैं। उन्हीं में से एक सीख वह है, जिसका ज़िक्र ऊपर किया गया है।

इंसानी ज़िंदगी में कुछ काम ऐसे होते हैं, जो हर इंसान अपनी मेहनत से कम समय में कर सकता है, लेकिन कुछ काम ऐसे भी होते हैं, जिन्हें कोई अकेला इंसान पूरा नहीं कर सकता। ऐसे काम को सच्चाई में बदलने का एक ही तरीका है और वह वही है, जो मधुमक्खी की मिसाल में दिखता है यानी बहुत-से लोग मिलकर उसे अंजाम दें।

हालाँकि मिलकर काम करने की एक क्रीमत चुकानी पड़ती है और वह

क्रीमत है सब्र की। इंसान के अंदर उठने वाले विद्रोही जज़्बातों को क़ाबू करना ही वह चीज़ है, जो सामूहिक काम को मुमकिन बनाती है। इस कुर्बानी के बिना सामूहिक काम कभी हक़ीक़त नहीं बन पाता।

असली हल

एक फ़ारसी शायर ने कहा है—

सद बार जंग कर्दह बा ऊ सुलह कर दह ईम

ऊ ख़बर न बूदह ज़ा सुलह ओ ज़ा जंग-ए-मा

“हमने अपने दोस्त से सौ बार लड़ाई की और सौ बार ही सुलह भी कर ली, लेकिन उसे हमारी इस लड़ाई और सुलह का पता तक नहीं चला, क्योंकि यह सब हमने खुद अपने अंदर ही किया।”

यह बात दिखने में तो शायरी की दुनिया की लगती है, लेकिन यह असली दुनिया के लिए भी बहुत ज़रूरी है। किसी बड़े मक़सद को हासिल करने के लिए जो ख़ूबी लोगों में चाहिए होती है, वह ठीक वही है, जिसका ज़िक्र इस शेर में है— अपने अंदर पैदा होने वाली शिकायत को खुद ही अपने आपमें ख़त्म कर लेना।

कोई भी बड़ा मक़सद कोई इंसान अकेला हासिल नहीं कर सकता। हर बड़े मक़सद के लिए बहुत सारे लोगों के एकजुट होकर मेहनत करने की ज़रूरत होती है, लेकिन एकजुट होकर काम करने से हमेशा एक समस्या भी पैदा होती है और वह है लोगों के बीच आपसी मतभेद।

जब भी बहुत-से लोग मिलकर काम करते हैं, तो उनके बीच तरह-तरह की शिकायतें और कड़वाहट पैदा होना लाज़मी है। कभी बँटवारे में किसी को कम मिलता है, तो किसी को ज़्यादा। किसी को ऊँचा ओहदा मिलता है, किसी को नीचा। किसी की कोई बात दूसरे को दुख पहुँचा देती है। किसी का कोई काम दूसरे को अपने फ़ायदे के खिलाफ़ नज़र आता है। छोटी-बड़ी बातों से बार-बार उनके बीच ऐसी स्थिति बन जाती है, जो आपसी कड़वाहट पैदा कर देती है, जो एक इंसान को दूसरे के खिलाफ़ गुस्सा, जलन, बदला और दुश्मनी की भावना में डाल देती है।

ऐसे मौक़े पर सिर्फ़ एक ही ऐसा हल है, जो काम कर सकता है कि हर इंसान एक 'आत्म-सुधार मशीन' (Self-correcting machine) बन जाए। वह अपने अंदर पैदा होने वाली उठा-पटक को खुद ही शांत कर ले। वह अपनी शिकायत को खुद ही अपने अंदर सुलझा ले।

हज़रत मोहम्मद के साथी और दूसरे खलीफ़ा उमर फ़ारूक़ ने जब ख़ालिद बिन वलीद को सेनापति के ओहदे से हटाया, तो फ़ौरन ही ख़ालिद के दिल में एक तेज़ प्रतिक्रिया हुई, लेकिन फिर उसी पल उन्होंने खुद से यह कहकर अपने आपको शांत कर लिया— "मैं जो कुछ कर रहा था, वह ईश्वर से इनाम पाने की उम्मीद में कर रहा था। फिर मुझे उमर से नाराज़ होने की क्या ज़रूरत है?" उन्होंने उमर से शिकायत करने के बजाय खुद ही अपने आपको सही कर लिया।



सामूहिक काम



अमेरिका के जहाज़ बनाने वाले कारख़ाने 50,000 टन का एक टैंकर 16 महीने में बनाते हैं और स्पेन में वही टैंकर 24 महीने में तैयार होता है, लेकिन जापान के जहाज़ बनाने वाले उसी टैंकर को सिर्फ़ 8 महीने में बना लेते हैं।

इस जापानी करिश्मे का राज़ क्या है? पश्चिमी विशेषज्ञों ने पूरी जाँच के बाद बताया है कि इसकी खास वजह मिलकर काम करना है। जापान के मज़दूर, मैनेजर और अफ़सर सब बेहद एकजुट होकर काम करते हैं। काम के दौरान किसी भी चरण में उनकी यह एकजुटता नहीं टूटती। इसका नतीजा उन्हें कम समय में बढ़िया क्वालिटी का सामान बनाकर मिल रहा है।

जापानी संस्कृति और तरीक़ों में समूह की सद्भावना पूरी तरह से रची-बसी हुई है। परिवार में, कारख़ाने में, छोटे और बड़े संस्थानों के बीच— हर जगह सद्भावना जापानी चरित्र की एक खास पहचान बन चुकी है। जापानी मामलों के एक विशेषज्ञ विलियम ओउची (William Ouchi) के शब्दों में—

“जापान में हर गतिविधि सामूहिक गतिविधि होती है और यह व्यक्तिगत महिमा या निजी प्रचार का ज़रिया नहीं होती।”

(द हिंदुस्तान टाइम्स; 16 फ़रवरी, 1986)

जापानियों की यह खूबी उनकी राष्ट्रीय तरक्की का सबसे बड़ा राज है। सबसे ज्यादा तरक्की हमेशा तब ही हासिल होती है, जब बहुत बड़ी संख्या में लोग आपस में मिलकर काम करते हैं। मिलकर काम करने में सबसे बड़ी रुकावट यह है कि लोगों की अलग-अलग पहचान इसमें नहीं बन पाती। जिस क्रौम के लोगों में अपनी अलग पहचान बनाने की आदत हो, वह क्रौम कभी भी सामूहिक काम में कामयाब नहीं हो सकती, इसीलिए वह कोई बड़ी तरक्की भी नहीं कर सकती।

बड़ी तरक्की हासिल करने का सबसे आसान तरीका एकता है। एकता एक को कई बना देती है, यह कोशिश की ताकत को हजार गुना बढ़ा देती है।



एकता का तरीका



संयुक्त राष्ट्र महासभा का एक नियम है कि हर बार अलग-अलग क्षेत्रीय समूहों (regional groups) को बारी-बारी से प्रेसिडेंट बनने का मौका दिया जाता है। पिछली बार लैटिन अमेरिका की बारी थी, लेकिन जब संयुक्त राष्ट्र महासभा में चुनाव का मामला आया, तो लैटिन अमेरिका के देश किसी एक सदस्य देश के प्रेसिडेंट बनने पर राजी नहीं हो सके। नतीजा यह हुआ कि पूरी 158 सदस्यों वाली असेंबली में वोटिंग करवाई गई और आम वोटों के बहुमत से फ़ैसला किया गया। यह स्थिति अकसर बन जाती है।

इस बार अफ्रीका की बारी थी। जब यह मामला चर्चा में आया, तो अफ्रीकी देशों ने एकमत से मान लिया कि ज़ांबिया के प्रतिनिधि श्री पॉल लुसाका (Paul Lusaka) 39वीं महासभा के प्रेसिडेंट होंगे। संयुक्त राष्ट्र महासभा का 39वाँ सत्र सितंबर, 1984 में शुरू हो गया। साफ़ है कि अफ्रीकी देश विचारधारा के हिसाब से एक-दूसरे से काफ़ी अलग हैं, जैसे कि लीबिया बहुत जोशीला क्रांतिकारी देश है। मिस्र नरम पॉलिसी वाला देश है। मोज़ांबिक में मार्क्सवादी सरकार है। ज़ैयर एक रूढ़िवादी देश है। उनके बीच आपसी मामलों में काफ़ी मतभेद हैं। इसके बावजूद अंतरराष्ट्रीय मंच पर उन्होंने हैरतअंगेज़ एकमतता दिखाई।

यह अनोखा मामला कैसे बना? इस सिलसिले में न्यूयॉर्क टाइम्स के रिपोर्टर रिचर्ड बर्नस्टीन (Richard Bernstein) ने कुछ राजनयिकों के ये शब्द लिखे—

“अफ्रीक्री एकमतता सिर्फ़ इस तरह हासिल हुई है कि उन्होंने झगड़े वाले मसलों से परहेज़ किया।”

(टाइम्स ऑफ़ इंडिया; 29 जनवरी, 1984)

आज की दुनिया में एकता और सहमति का यही एकमात्र पक्का रास्ता है। इंसानों के रास्ते हमेशा अलग-अलग होते हैं। यह मुमकिन नहीं कि हर मामले में सभी लोग बिलकुल एक राय हो जाएँ। ऐसे हालात में आपसी एकता का सिर्फ़ एक ही तरीक़ा है कि एकता के लिए मतभेदों को दरकिनार कर दिया जाए। मतभेद ख़त्म करके एकता कायम नहीं होती। एकता हमेशा तभी कायम होती है, जब कुछ लोग अपने मतभेद को सब्र के डिब्बे में डालने के लिए राजी हो जाते हैं।



मिलकर काम करना



एक स्टीम इंजन चलाने वाला इंसान आग के सामने खड़ा होता है, तब जाकर वह मशीन चल पाती है। ठीक उसी तरह मिलकर काम करने वाले लोगों को सब्र की ज़मीन पर खड़ा होना पड़ता है। जो लोग सहनशील नहीं होते हैं, वे एक-दूसरे के साथ मिलकर काम भी नहीं कर सकते।

जब भी कुछ लोग मिलकर काम करते हैं, तो यह ज़रूर होता है कि एक को दूसरे से मतभेद हो जाता है। एक के दिल में दूसरे के खिलाफ़ शिकायत के जज़्बात पैदा होते हैं। यह हर हाल में होता ही है। चाहे लोग अलग-अलग कितने भी अच्छे क्यों न हों, लेकिन एक-दूसरे के खिलाफ़ इस तरह के नकारात्मक विचार ज़रूर आते हैं। इन्हें रोका नहीं जा सकता।

ऐसी हालत में मिलकर काम करने और सामूहिक प्रयास को कैसे मुमकिन बनाया जाए? इसका सिर्फ़ एक ही तरीक़ा है और वह यह कि मतभेद होते हुए भी साथ रहा जाए। लोगों को इतना जागरूक होना चाहिए कि वे हर शिकायत को पी जाएँ। हर भावनात्मक प्रतिक्रिया को अपने सीने में दफ़न कर दें। वे एकता को बनाए रखने के लिए हर अलग बात को सहते रहें।

यह बात किसी नामुमकिन चीज़ की माँग नहीं है। यह वही चीज़ है, जो हर इंसान अपने घर में अपनाता है। एक घर जहाँ कुछ परिवार के लोग साथ रहते हैं, उसमें रोज़ ही किसी-न-किसी बात पर नाराज़गी होती है। रोज़ एक के दिल में दूसरे के खिलाफ़ शिकायतें उठती हैं, लेकिन फिर खून का रिश्ता भारी पड़ता है। बार-बार नाराज़गी पैदा होती है और बार-बार आपसी प्यार की भावना उसे खत्म कर देती है। इस तरह घर में एकता बनी रहती है। हर घर मतभेद के बावजूद एक साथ रहने की एक जीती-जागती मिसाल है।

यही बात सामूहिक ज़िंदगी में समझदारी से लागू होती है। परिवार की ज़िंदगी में जो काम प्यार की भावना से होता है, वही काम सामूहिक ज़िंदगी में समझदारी के फ़ैसले से किया जाता है। घर के अंदर दिल का लगाव लोगों को एक साथ बाँधे रखता है और घर के बाहर लोगों का समझदारी भरा फ़ैसला उन्हें इस बात का पाबंद बनाता है कि वे एकता बनाए रखने के लिए हर नाराज़गी को सहते रहें।



एक प्रयोग



गुजरात में एक मुसलमान समुदाय है, जिसका नाम मेमन समुदाय है। आम तौर पर इसे 'चिलिया समुदाय' कहा जाता है। यह एक व्यापार करने वाला समुदाय है। इसके लोग अलग-अलग शहरों में फैले हुए हैं। बंबई में यह समुदाय लगभग 25 हजार की आबादी में रहता है।

व्यापार से इंसान के अंदर एक खास चरित्र बनता है। यह चरित्र इस समुदाय में पूरी तरह से मौजूद है, जैसे कि वे नौकरी करने के बजाय अपनी मेहनत से कमाना पसंद करते हैं। उनकी ज़िंदगी बहुत सादगी भरी होती है, यहाँ तक कि शादियों में भी उनके यहाँ दहेज का कोई रिवाज नहीं है। वे सियासी (राजनीतिक) झगड़ों से बिलकुल दूर रहते हैं। दूसरे वर्गों के मुकाबले उनके बीच आपसी मतभेद बहुत कम पैदा होते हैं और अगर कोई आपसी मतभेद हो भी जाए, तो वे अपने बड़ों के फ़ैसले को मानकर उसे खत्म कर देते हैं। वे अपने झगड़े कभी अदालत में नहीं ले जाते।

चिलिया समुदाय की इस आदत का एक और बड़ा फ़ायदा उन्हें एकता के रूप में मिला। इस समुदाय के लोगों की यह आदत है कि वे व्यापारिक साझेदारी को बहुत जल्दी क़बूल कर लेते हैं। उनके ज़्यादातर व्यापार आपस में मिली हुई पूँजी (शेयर्ड कैपिटल) से चलते हैं। उनका एक आदमी कहेगा कि फ़्लाँ होटल दस लाख रुपये में बिक रहा है। आओ, मिलकर उसे खरीद लें। उसे पूँजी लगाने वाले लोग बहुत आसानी से मिल जाएँगे और वे मिली-जुली पूँजी से होटल को खरीदकर उसे बढ़िया तरीक़े से चलाते रहेंगे और उनके बीच कभी कोई झगड़ा नहीं होगा।

आज के ज़माने में कोई बड़ा काम करने के लिए बड़ी पूँजी की ज़रूरत होती है। यह पूँजी आम तौर पर बैंक देते हैं। चूँकि इस्लाम में सूद (ब्याज़) को वर्जित ठहराया गया है, इसलिए बहुत-से 'तरक्कीपसंद' लोग कहते हैं कि इस्लाम आर्थिक तरक्की में रुकावट है, क्योंकि आर्थिक तरक्की बैंक के सूद वाले क़र्ज़ से होती है और सूद वाले क़र्ज़ पर व्यापार करने की इस्लाम में इजाज़त नहीं है।

बंबई का चिलिया समुदाय इस इल्जाम की जीती-जागती तस्वीर है। चिलिया समुदाय का उदाहरण बताता है कि आर्थिक काम के लिए सूद वाला फ़ाइनेंस ज़रूरी नहीं है। यहाँ सूद वाले फ़ाइनेंस का एक विकल्प मौजूद है और वह है साझेदारी वाला फ़ाइनेंस यानी हिस्सेदारी की बुनियाद पर मिली-जुली पूँजी देना और उसके ज़रिए कई लोगों का मिलकर व्यापार करना।

यह वही चीज़ है, जिसे आज के ज़माने में को-ऑपरेटिव सिस्टम (सहकारी प्रणाली) कहा जाता है। हकीकत यह है कि को-ऑपरेटिव सिस्टम सूद वाले सिस्टम की इस्लामी जगह है, मगर को-ऑपरेटिव सिस्टम के तहत आर्थिक काम चलाने के लिए एक ज़रूरी शर्त है और वह है एकता। चिलिया समुदाय में यह आदत पूरी तरह से पाई जाती है, इसलिए उनके बीच व्यापारिक साझेदारी कामयाब है। आम लोगों में यह आदत नहीं है, इसलिए उनके यहाँ व्यापारिक साझेदारी भी नहीं पाई जाती।

एकता और सद्भावना एक ऐसी चीज़ है, जो हर लिहाज़ से फ़ायदेमंद है— धर्म के लिहाज़ से भी और दुनिया के लिहाज़ से भी, मगर यही सबसे क्रामी चीज़ आज लोगों में सबसे कम पाई जाती है।

ज़िंदगी में सबसे ज़्यादा अहमियत क्रामी आदत (नेशनल कैरेक्टर) की होती है। अगर क्रामी के अंदर अच्छी आदतें (कंस्ट्रिक्टिव कैरेक्टर) हों, तो उसका हर

मामला अपने आप सही होता चला जाएगा। उसके अंदर वही नेतृत्व उभरेगा, जो सच्चा और सही नेतृत्व होगा। बुरा नेतृत्व उसके अंदर अपनी जगह नहीं बना पाएगा। उसके लोग किसी फ़ायदे के काम के लिए बहुत आसानी से एक हो जाएँगे। दूसरी क्रौमों से उसका ग़ैर-ज़रूरी टकराव अपने आप ख़त्म हो जाएगा।

क्रौम की सारी तरक्की उसकी अच्छी आदतों पर निर्भर करती है और अगर क्रौम की आदतें बिगड़ी हुई हों, तो ऐसी क्रौम को कोई चीज़ बरबादी से नहीं बचा सकती। अगर आपको क्रौम को सुधारना है, तो उसकी आदतों को सुधार दीजिए। उसके बाद बाक़ी सभी चीज़ों का सुधार अपने आप हो जाएगा।

एकता की क्रीमत

आज हर कोई एकता की बात कर रहा है। हर कोई एकता पर लिख रहा है, लेकिन एकता कहीं भी क्रायम नहीं हो रही है। इसकी वजह यह है कि हर चीज़ की एक क्रीमत होती है। ठीक उसी तरह एकता की भी एक क्रीमत होती है। लोग एकता की बातें तो करते हैं, मगर उसकी क्रीमत चुकाना नहीं चाहते। यही वजह है कि एकता कहीं क्रायम नहीं हो पाती।

जब एकता टूटती है, तो क्यों टूटती है? इसकी सिर्फ़ एक ही वजह है और वह है अपने अंदर पैदा होने वाली अलगाव की भावनाओं को ख़त्म न करना। यह दुनिया इम्तिहान की जगह है। यहाँ कई वजहों से एक-दूसरे के खिलाफ़ भावनाएँ पैदा होती रहती हैं। अगर आप इन भावनाओं को अपने अंदर ही दबा देंगे, तो एकता बनी रहेगी और अगर आप इन्हें दबाएँगे नहीं, तो ये बाहर निकलकर एकता को चकनाचूर कर देंगी।

कभी एक इंसान को दूसरे इंसान से शिकायत हो जाती है। कभी ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति आपको अपने फ़ायदे के रास्ते में रुकावट लगता है। कभी दूसरे की तरक्की देखकर उसके खिलाफ़ जलन की भावना दिल में जाग उठती है। कभी घमंड और अहंकार की भावना यह माँग करती है कि दूसरे को नीचा दिखाकर खुशी हासिल की जाए।

इस तरह के सभी मौके इंसान से एक क्रीमत माँगते हैं। यह क्रीमत यह है कि वह एकता और रिश्ते की फ़िज़ा को बनाए रखने के लिए खुद को रोके; वह शिकायत और कड़वाहट को सह ले; वह अपने फ़ायदे के नुक़सान पर रज़ामंद हो जाए; वह दूसरे की तरक्की पर खुश होने का हौसला पैदा करे; वह घमंड की भावनाओं को विनम्रता की भावनाओं में बदल ले। यही व्यक्तिगत कुर्बानी, सामूहिक एकता और सद्भाव का एकमात्र राज है।

इस तरह के मौकों का आना तय है। यह मुमकिन नहीं है कि इम्तिहान की इस दुनिया में ऐसे मौके न आएँ। यही मौके असल में तय करते हैं कि एकता रहेगी या फूट पड़ेगी। अगर इंसान ऐसा करे कि वह एकता को तोड़ने वाली भावनाओं को अपने सीने में दफ़न कर दे, तो वह समाज में एकता बनाए रखेगा। अगर वह इन भावनाओं को बाहर आने के लिए खुला छोड़ देगा, तो वह समाज की एकता को बरबाद कर देगा।

दूसरों से न लड़ने के लिए खुद से लड़ना पड़ता है। चूँकि लोग खुद से लड़ने के लिए तैयार नहीं हैं, इसलिए दूसरों से उनकी लड़ाई भी ख़त्म नहीं होती।



एकता का राज



चिड़ियाघर में सैकड़ों लोग मौजूद थे। कोई खुले हरे मैदान में बैठा खा-पी रहा था। कोई तरह-तरह के जानवरों को देख रहा था। कोई इधर-उधर बेफ़िक्र घूम रहा था।

इतने में एक दहाड़ की आवाज़ आई और उसी के साथ यह ख़बर फैल गई कि एक शेर अपने पिंजरे से बाहर आ गया है। यह सुनते ही सारे लोग बाहर वाले गेट की तरफ़ भागे। जो लोग अब तक 'अलग-अलग' नज़र आ रहे थे, वे सब-के-सब 'एकजुट' होकर एक ही दिशा में चल पड़े। हर तरह की अलग-अलग हरकतें ख़त्म होकर एक ही बिंदु पर केंद्रित हो गईं।

यह एक मिसाल है, जिससे अंदाज़ा होता है कि कैसे बहुत ज़्यादा डर लोगों के अलग-अलग विचारों को ख़त्म कर देता है। ऐसे वक़्त में हर इंसान उसी एक चीज़ पर टिक जाता है, जो सबसे ज़्यादा ध्यान देने लायक़ होती है। हर इंसान उसी एक

चीज़ से डरने लगता है, जो सबसे ज़्यादा डरावनी होती है। हर इंसान का दिमाग उसी एक चीज़ पर लग जाता है, जिस पर दूसरे इंसान का दिमाग लगा हुआ था।

आखिरी और सबसे अहम चीज़ हमेशा एक ही होती है। आखिरी चीज़ में कोई बहुलता (plurality) नहीं होती। लोगों के बीच मतभेद इसलिए होते हैं, क्योंकि लोग आखिरी चीज़ पर नहीं होते। जब इंसान पर सबसे ज़्यादा डर का माहौल छा जाता है, तो दूसरे और तीसरे दर्जे की सारी चीज़ें अपने आप खत्म हो जाती हैं। उस वक़्त ज़रूर ऐसा होता है कि सभी लोगों का ध्यान 'आखिरी सबसे अहम चीज़' की तरफ़ लग जाता है। इससे कम दर्जे की सारी चीज़ें अपने आप हट जाती हैं और जहाँ आखिर से पहले की सारी चीज़ें हट जाएँ, वहाँ एकता के सिवा और कुछ नहीं बचेगा।

मतभेद उस हालत का नाम है, जब लोगों की नज़रें आखिरी सबसे अहम चीज़ पर नहीं लगी होती हैं। इसलिए एकता की एकमात्र कामयाब तरकीब यह है कि लोगों की नज़रों को कम अहम या फ़ालतू चीज़ों से हटा दिया जाए। किसी मुल्क पर दुश्मन के हमले के वक़्त भी यही चीज़ होती है, इसीलिए ऐसे मौक़े पर पूरी क्रौम एकजुट हो जाती है। दुश्मन के ख़तरे से भी बड़ा ख़तरा ईश्वर की पकड़ का ख़तरा है। इसलिए जिस क्रौम में ईश्वर का डर पैदा हो जाए, वह ज़रूर दुनिया की सबसे ज़्यादा एकजुट क्रौम बन जाएगी।

अध्ययन से पता चलता है कि दुश्मन के ख़तरे के वक़्त जानवर भी एकजुट हो जाते हैं। ख़तरनाक बाढ़ में कुत्ता और बिल्ली या नेवला और साँप दोनों को एक ही जगह चुपचाप बैठे हुए देखा गया है, लेकिन यह एकता का जानवरों वाला स्तर है। इंसानी एकता वह है, जो ईश्वर के डर और परलोक की चिंता से पैदा हो। यह दूसरी एकता ज़्यादा बेहतर है और ज़्यादा टिकाऊ भी है।

शिकायतें



यह बात भारत की आज़ादी से पहले की है। एक गाँव का आदमी शहर आया और अपने एक जान-पहचान वाले के घर ठहरा। उसकी मेहमाननवाज़ी के लिए

घर के अंदर से तरबूज भेजा गया। एक बड़ी प्लेट में तरबूज के साथ एक चाकू भी रखा हुआ था। उन्होंने जब यह देखा, तो बहुत हैरान हुए। उन्होंने कहा, “मेरी समझ में नहीं आता कि तरबूज और चाकू का क्या मेल है?” यहाँ तक कि उन्होंने तरबूज खाए बिना ही वापस कर दिया।

बाद में जब एक आदमी ने पूछा, तो उन्होंने बताया, “हम तो यही जानते हैं कि तरबूज खाने का तरीका यह है कि उसे दोनों हाथों से दबाकर तोड़ा जाए और फिर खाया जाए। फिर यह चाकू किसलिए? मैं तो यही समझा कि यह कोई जादू-टोना है, इसलिए मैंने इसे नहीं खाया।”

इसी तरह का एक और किस्सा उसी शख्स के साथ रात में हुआ। रात को जब उनके सोने के लिए बिस्तर लगाया गया, तो उनके बिस्तर पर एक तकिया भी था। वे सारी रात तकिये को देखते रहे और सो नहीं सके। बाद में इस बारे में उन्होंने बताया, “मैं तो यही समझा कि इसमें पैसे या कोई क्रीमती चीज है। मैं समझ नहीं पा रहा था कि इस ‘गठरी’ की रखवाली करूँ या सो जाऊँ।”

अक्सर ऐसा होता है कि एक इंसान के मन में दूसरे के बारे में शिकायत पैदा हो जाती है, यहाँ तक कि वह उसके खिलाफ बहुत नाराज हो जाता है। अपनी तरफ से वह समझता है कि उसकी शिकायत और गुस्सा बिलकुल ठीक है। हालाँकि इसकी असली वजह सिर्फ उसकी अधूरी जानकारी होती है। पूरी सच्चाई से अनजान होने की वजह से वह खुद ही एक राय बना लेता है और उस पर जोर से अड़ा रहता है, जबकि असल हकीकत के हिसाब से उसकी शिकायत की कोई सच्चाई नहीं होती।

इस बुराई से बचने का तरीका कुरआन में यह बताया गया है कि जब भी कोई बात सुनो, तो उसकी पूरी जाँच-पड़ताल कर लो। अगर कोई इंसान वाकई में ईमानदार है, तो वह दो में से एक रवैया अपनाएगा— या तो वह सुनी हुई बात को भूल जाएगा और उसकी कोई चर्चा नहीं करेगा और अगर किसी वजह से वह उसका जिक्र करना चाहता है, तो सबसे पहले वह उस बारे में संबंधित व्यक्ति से पूछेगा और जाँच के बाद जो बात सामने आएगी, उसे मान लेगा। बिना जाँच के शिकायतों को फैलाना जितना गलत है, उतना ही गलत यह भी है कि जाँच के बाद भी इंसान अपनी राय पर अड़ा रहे। संबंधित व्यक्ति के इनकार करने के बावजूद वह उसे बार-बार दोहराता रहे।



अलग हो गए, तो लोहे के भाव बिकोगे



श्री हरदेव सिंह मस्त (1927-1983) अंग्रेजी और पंजाबी दोनों भाषाओं के शायर थे। वे अकसर साधारण उदाहरणों के ज़रिए बहुत गहरी बातें कहा करते थे।

एक बार श्री मस्त जी ने अपना एक गीत सुनाया। यह गीत पंजाबी भाषा में था। इस गीत में एक मोटरकार के हिस्सों को संबोधित किया गया था। शायर ने अपने खास अंदाज़ में कहा था— “ऐ पुर्जो, अपने इंजन के साथ जुड़े रहो। तुम्हारी क्रीमत इसी में है। अगर तुम अपने इंजन से अलग हो गए, तो याद रखना, इस दुनिया में तुम बेकार लोहे के भाव बिकोगे।”

यह उदाहरण बहुत मायने रखता है। एक मशीन के अंदर बहुत सारे पुर्जे होते हैं, लेकिन एक पुर्जे की अहमियत अपनी मशीन से जुड़े रहने में है। मशीन से जुड़कर ही एक पुर्जा इंजन का हिस्सा बनता है। पूरे तौर पर उसे इंजन कहा जाता है, लेकिन अगर कोई पुर्जा अपनी मशीन से अलग हो जाए, तो वह अपनी सारी अहमियत खो देता है। अब वह कबाड़खाने का हिस्सा बन जाएगा, मशीन का हिस्सा नहीं। अब उसकी क्रीमत ‘कबाड़े वाले लोहे’ जैसी होगी, जबकि इससे पहले उसकी क्रीमत मशीन जितनी थी।

इंसान के साथ भी ठीक यही मामला है। जब इंसान किसी पूरे समूह का हिस्सा होता है, तो वह एक बड़ी चीज़ का हिस्सा होता है। एकजुट होने की हालत में एक व्यक्ति की भी वही क्रीमत हो जाती है, जो पूरे समूह की होती है, लेकिन जो व्यक्ति एकता के बंधन से अलग हो जाता है, वह बस एक अकेला व्यक्ति रह जाता है। उसकी मिसाल उस पुर्जे जैसी है, जो अपने इंजन से अलग हो गया हो। ऐसा पुर्जा कबाड़खाने में जाकर लोहे के भाव बिकता है। ठीक इसी तरह एक व्यक्ति भी समूह से अलग होकर अपनी क्रीमत खो देता है।

एक पुर्जे को इंजन का हिस्सा बनने के लिए अपनी अलग पहचान खोनी पड़ती है। ठीक उसी तरह एक व्यक्ति को भी एकजुट समूह का हिस्सा बनने के लिए अपनी अलग पहचान को छोड़ना पड़ता है। यक्रीनन एक व्यक्ति के लिए यह एक भारी क्रीमत है, लेकिन इस दुनिया में कोई भी चीज़ बिना क्रीमत चुकाए नहीं

मिलती। व्यक्ति की तसल्ली के लिए यह सोचना ही काफ़ी है कि उसने एकता के लिए जो क्रीमत चुकाई, उसके बदले में उसे उससे कहीं बड़ी चीज़ मिली।

अगर 'लोहा' अपनी अलग पहचान खोकर 'मशीन' का दर्जा हासिल कर लेता है, तो यह उसका नुक़सान नहीं, बल्कि सबसे बड़ी चीज़ पाना है, जिसकी कोई इस दुनिया में ख़्वाहिश कर सकता है।



नफ़रत का तेज़ाब



पश्चिम के एक मनोवैज्ञानिक ने कहा है कि नफ़रत एक क्रिस्म के तेज़ाब जैसी होती है। अगर उसे एक आम बरतन में रखा जाए, तो वह अपने उस बरतन को उससे ज़्यादा नुक़सान पहुँचाती है, जिस चीज़ पर उसे डाला जाने वाला होता है।

“Hatred is like an acid. It can cause more damage to the vessel in which it is contained than to the object upon which it is poured.”

अगर आपको किसी के ख़िलाफ़ बैर और नफ़रत हो जाए और आप उसे नुक़सान पहुँचाने पर तुल जाएँ, तो जहाँ तक आपकी अपनी बात है, आपके सीने में दिन-रात हर वक़्त नफ़रत की आग जलती रहेगी; लेकिन दूसरे व्यक्ति पर उसका असर तभी पहुँचता है, जब आप असल में उसे नुक़सान पहुँचाने में कामयाब हो जाते हैं, मगर ऐसा बहुत ही कम होता है कि इंसान किसी को वह नुक़सान पहुँचा पाए, जो वह पहुँचाना चाहता है। नफ़रत के आधार पर काम करने वाले की योजना ज़्यादातर हालात में नाकाम रह जाती है।

जहाँ तक नफ़रत करने वाले की अपनी बात है, उसके लिए दो में से एक अज़ाब हर हाल में तय है। जब तक वह अपनी बदला लेने की योजना में कामयाब नहीं होता, बदले की आग में जलते रहना और अगर कभी कामयाब हो भी जाए, तो उसके बाद उसका ज़मीर उसका पीछा करता है। वह अपने मुक़ाबले वाले को मारकर खुद भी अपनी खुशहाली को हमेशा के लिए खत्म कर लेता है। बदले के जुनून में उसकी इंसानी भावना दबी रहती है, मगर जब मुक़ाबले वाले पर

कामयाबी मिलने के बाद उसका बदले का जोश ठंडा पड़ता है, तो उसके बाद उसका ज़मीर जाग उठता है और पूरी ज़िंदगी उसे यह कहकर डाँटती रहती है कि तुमने बहुत बुरा किया।

एक फ़ौजदारी वकील ने एक बार मुझसे कहा कि मेरा सामना ज़्यादातर ऐसे लोगों से होता है, जिन पर क्रल का इल्जाम होता है, लेकिन मैंने अपनी ज़िंदगी में जितने भी क्रातिल देखे, मैंने पाया कि क्रल के बाद वे सभी अपने किए पर पछतावा कर रहे थे। वक्रती जोश में आकर उन्होंने क्रल कर दिया, मगर जब जोश ठंडा हुआ तो उनका दिल उन्हें डाँटने लगा। हर अपराधी का यही हाल है। कोई भी अपराधी खुद को अपने पछतावे (remorse) से आज़ाद नहीं कर पाता। अपराध के बाद हर अपराधी का सीना एक मानसिक जेल बन जाता है, जहाँ वह लगातार सज़ा भुगतता रहता है।

हकीकत यह है कि नकारात्मक कार्रवाई सबसे पहले खुद अपने खिलाफ़ कार्रवाई है। नकारात्मक कार्रवाई का नुक़सान इंसान की अपनी ही ज़ात को पहुँचकर रहता है, चाहे वह दूसरों को पहुँचे या न पहुँचे।



मिज़ाज की अहमियत



टोयोटा मोटर कंपनी जापान की एक कार बनाने वाली कंपनी है। पिछले लगभग 30 सालों में काम के एक दिन को भी बरबाद किए बिना इसने अपना उत्पादन का काम लगातार जारी रखा है। यह सिर्फ़ एक मिसाल है, जिससे अंदाज़ा होता है कि जापान में औद्योगिक तरक्की की इतनी तेज़ रफ़्तार की वजह क्या है। अमेरिका की जनरल मोटर्स कॉर्पोरेशन और फोर्ड मोटर कंपनी दुनिया की सबसे बड़ी मोटर बनाने वाली कंपनियाँ मानी जाती हैं, लेकिन इन अमेरिकी कंपनियों में हर मज़दूर का सालाना उत्पादन का औसत 11 कारें हैं, जबकि जापान की इस मोटर कंपनी में हर मज़दूर का सालाना उत्पादन का औसत 33 कारें हैं।

जापान की इस अनोखी औद्योगिक तरक्की का राज़ इसके मज़दूर ही हैं। जापानी मज़दूर का तामीरी मिज़ाज (constructive temperament) ही जापान

की सबसे बड़ी दौलत है। यही वजह है कि जापान में कोयला, लोहा, पेट्रोल और दूसरी धातुएँ या तो बिलकुल पैदा नहीं होतीं या बहुत कम पैदा होती हैं, फिर भी जापान की औद्योगिक तरक्की की रफ़्तार दुनिया में सबसे ज़्यादा है।

जापानी मज़दूर के मिज़ाज में वह कौन-सी बात है, जो जापान के लिए सबसे बड़ी दौलत बन गई है? एक परखने वाले के शब्दों में वह यह है—

“जापानियों का यह राष्ट्रीय स्वभाव कि वे हमेशा समझौते और सहयोग के लिए तैयार रहते हैं और राष्ट्र, कंपनी या परिवार के बड़े फ़ायदे के लिए वे छोटे-मोटे नुक़सान को सहने के लिए राज़ी हो जाते हैं।”

(हिंदुस्तान टाइम्स; 25 अगस्त, 1981)

किसी भी क्रौम (राष्ट्र) की तामीर में सबसे अहम चीज़ उसके लोगों का मिज़ाज है। अगर लोगों का मिज़ाज बिगड़ा हुआ है, तो क्रौम को बरबाद होने से कोई नहीं बचा सकता और अगर लोगों का मिज़ाज ठीक है, तो ऐसी क्रौम ज़रूर कामयाब होकर रहती है, चाहे उसके दुश्मनों की तादाद कितनी भी ज़्यादा क्यों न हो।

क्रौम की तामीर में लोगों की हैसियत वही है, जो किसी इमारत में ईंटों की होती है। कच्ची ईंटों से बनी इमारत एक बे-एतिबार इमारत होती है। कोई भी हादसा उसे गिरा सकता है। इसके उलट जो इमारत पक्की ईंटों से बनी हो, उस पर पूरा भरोसा किया जा सकता है। वह बाढ़ और तूफ़ान के बावजूद ज़मीन पर डटी रहती है। हर आँधी जो आती है, उससे टकराकर वापस चली जाती है; वह उसका कुछ बिगाड़ने में कामयाब नहीं हो पाती।



अपने लिए कुछ, दूसरों के लिए कुछ



सर रिचर्ड डॉब्सन इंग्लैंड के एक कामयाब उद्योगपति हैं। उन्होंने 31 साल तक ब्रिटिश अमेरिकन टोबैको में एक बड़े अधिकारी के तौर पर काम किया। वे एक साल तक ब्रिटिश लीलैंड के चेयरमैन भी रहे। यह कंपनी डबल-डेकर बसें बनाने के लिए बहुत मशहूर है।

सर रिचर्ड डॉब्सन इन दिनों लंदन के एक खास इलाके— रिचमंड में—

मार्चमोंट रोड पर रहते हैं। यह लंदन की एक बहुत ही शांत सड़क है और सिर्फ़ करोड़पति क्रिस्म के लोग ही यहाँ रहते हैं।

हाल ही में ऐसा हुआ कि रिचमंड इलाके की एक सड़क खराब हो गई और उस पर दोबारा निर्माण का काम शुरू करना पड़ा। इस सड़क पर लंदन की बस नंबर-65 चला करती थी। चूँकि निर्माण-कार्य की वजह से यह सड़क इस्तेमाल के लायक नहीं रह गई थी, इसलिए अस्थायी तौर पर इसका रास्ता बदल दिया गया और कुछ दिनों के लिए इसे मार्चमोंट रोड से होकर ले जाया जाने लगा।

हालाँकि सर रिचर्ड डॉब्सन एक बहुत बड़े मकान में रहते हैं, फिर भी अपने मकान के सामने वाली सड़क से धुआँ छोड़ने वाली बस का गुज़रना उन्हें बिलकुल पसंद नहीं आया। अखबार 'द गार्जियन' (14 अगस्त, 1983) ने बताया कि उन्होंने लंदन के एक अखबार में अपना एक विरोध पत्र छपवाया, जिसमें उन्होंने लिखा था कि डीज़ल ईंधन की महक अकेले ही एक अपमान और स्वास्थ्य के लिए खतरा है।

सर रिचर्ड डॉब्सन सिगरेट और बसों के व्यापारी हैं। ये दोनों ही चीज़ें ऐसी हैं, जो धुआँ छोड़कर हवा को खराब करती हैं। उन्होंने अपनी पूरी ज़िंदगी धुएँ का कारोबार किया। जब तक यह धुआँ दूसरों के घरों में पहुँच रहा था, उन्हें इसका नुक़सान महसूस नहीं हुआ; लेकिन एक बार जब यह संयोग से उनके अपने घर के अंदर पहुँच गया, तो वे चीख उठे।

हर इंसान अपने लिए कुछ और चाहता है और दूसरों के लिए कुछ और, वह भी बिना शक, यह इंसान की सबसे बड़ी कमज़ोरी है।



काम या नाम



एक बार किसी ने मौलाना शिबली नोमानी से पूछा, “बड़ा आदमी बनने का आसान तरीक़ा क्या है?” उन्होंने जवाब दिया, “किसी बड़े आदमी पर कीचड़ उछालना शुरू कर दो।”

असल बात यह है कि काम दो तरह के होते हैं। एक वह काम, जो मशहूर

मैदानों में होता है और दूसरा वह, जो गुमनाम मैदान में किया जाता है। जो इंसान मशहूर मैदान में जोर दिखाता है, वह तुरंत लोगों की नज़रों में आ जाता है। इसके उलट गुमनाम मैदान में मेहनत करने से इंसान को न शोहरत मिलती है और न ही लोकप्रियता। जिस चीज़ की आम लोगों में चर्चा होती है, उसके साथ अपने आपको जोड़ने से आपकी चर्चा भी बढ़ेगी और जिस चीज़ की आम लोगों में चर्चा नहीं होती, उसके साथ जुड़ने से आप भी चर्चा से वंचित रह जाएँगे।

अगर आप किसी माने-जाने व्यक्ति के खिलाफ़ बोलने लगे, किसी मशहूर मामले को अपना निशाना बनाएँ, किसी सरकार से टकराव शुरू कर दें, कोई ग्लोबल नारा उठाकर जुलूसों और रैलियों का हंगामा खड़ा कर दें, तो आप तुरंत अखबारों के पहले पन्ने पर छपने लगेंगे। लोग आपके बारे में टिप्पणी करने लगेंगे। आप बहुत-से लोगों की राय का केंद्र बन जाएँगे। आप अगर एक सभा का ऐलान करेंगे, तो वहाँ भीड़ जमा हो जाएगी। आप अगर चंदे की माँग करेंगे, तो लोग आपको पैसों से तौल देंगे, लेकिन अगर आप खामोश रचनात्मक कामों में अपने आपको लगाएँ, 'गुंबद' के बजाय नींव से अपने काम की शुरुआत करें, क्रांतिकारी पोस्टर छापने के बजाय खामोश संघर्ष को अपना नारा बनाएँ, समुदाय का झंडा लहराने के बजाय एक-एक इंसान के सुधार पर मेहनत करें और राजनीतिक हंगामा खड़ा करने के बजाय गैर-राजनीतिक मैदान में खुद को व्यस्त रखें, तो आप हैरानी से देखेंगे कि आपके आस-पास न साथियों की भीड़ है और न चंदा देने वालों की क़तारें। आपका नाम न अखबारों की सुर्खियों में जगह पाएगा और न ही रौनक भरी सभाओं के मंच की शोभा बनेगा।

वैसे यही दूसरा तरीक़ा असली काम है। इसी के जरिए किसी वास्तविक नतीजे की उम्मीद की जा सकती है। इसके उलट पहला तरीक़ा तो काम के नाम पर शोषण है। इससे व्यक्तिगत नेतृत्व तो जरूर चमकते हैं, मगर देश और समुदाय को इससे कुछ हासिल नहीं होने वाला। एक अगर काम है, तो दूसरा सिर्फ़ नाम (शोहरत) है।



संतुष्ट बनो



एक शख्स ने अपनी जिंदगी की शुरुआत एक मामूली नौकरी से की थी और अब उनका काफ़ी बड़ा कारोबार हो गया है। एक मुलाक़ात में उन्होंने कहा, “जब मैं दो सौ रुपये का नौकर था, तो मैं खुद को सौ रुपये का आदमी समझता था। अब जबकि मेरा कारोबार दो करोड़ रुपये तक पहुँच चुका है, तब भी मैं खुद को सिर्फ़ एक करोड़ रुपये का आदमी समझता हूँ।” यह वही चीज़ है, जिसे धार्मिक भाषा में ‘संतोष’ कहा जाता है। इसका रिश्ता व्यक्तिगत मामलों से भी है और सामूहिक मामलों से भी।

यह बात जो एक आदमी ने सीधे-सादे ढंग से कही, यही जिंदगी की कामयाबी का सबसे बड़ा राज़ है। ज़्यादातर हालात में इंसान सिर्फ़ इसलिए नाकाम रह जाता है, क्योंकि वह खुद के बारे में ज़्यादा अंदाज़ा लगा लेता है। वह अपनी असली क़ाबिलियत से ज़्यादा बड़ा क़दम उठा देता है। वह ‘कम’ पर संतोष न करते हुए ‘ज़्यादा’ की तरफ़ दौड़ पड़ता है। अगर इंसान उस व्यापारी के क़ायदे पर चले, तो वह कभी नाकामी का सामना नहीं कर सकता।

जो आदमी ज़्यादा ख़र्च करने की हैसियत रखते हुए भी कम ख़र्च करे, वह कभी आर्थिक मुश्किल का शिकार नहीं होगा। जो आदमी दौड़ने की ताक़त रखते हुए भी आहिस्ता चले, उसके साथ कभी यह हादसा नहीं होगा कि वह रास्ते में थककर बैठ जाए। जो अपने मुक़ाबले वाले से बदला लेने की पोज़ीशन में होते हुए भी सब्र कर जाए, वह कभी अपने मुक़ाबले वाले से हार नहीं सकता। जो बड़े काम के क़ाबिल होते हुए भी खुद को छोटे काम में लगा दे, वह कभी अपनी कोशिशों को बेकार जाने वाला साबित नहीं होगा। जो सियासी मुक़ाबले का मौक़ा रखते हुए भी ग़ैर-सियासी काम में खुद को लगा ले, उसका यह अंजाम कभी नहीं होगा कि शोर-शराबे भरे काम के बाद आख़िरकार उसके हिस्से में सिर्फ़ एतराज़ और फ़रियाद आए। जिसके लिए शोहरत का मैदान खुला हुआ हो, मगर वह खुद को गुमनामी के मैदान में काम करने पर राज़ी कर ले, वह कभी इस हालत में दुनिया से नहीं जा सकता कि उसने अपने पीछे अपनी शानदार क़ब्र तो छोड़ी हो, मगर उसके काम के शानदार नतीजों का कहीं पता न हो।

एक व्यक्ति का कथन है— “छोटे और क़रीबी फ़ायदे को बड़े और दूर-दराज फ़ायदे के लिए कुर्बान किया जा सकता है।”

इसमें शक नहीं कि यह तरक्की का एक बहुत अहम क़ायदा है, मगर इस क़ायदे को वही लोग अपना सकते हैं, जो दूर तक सोचकर क़दम उठाना जानते हों, न कि वे, जो फ़ौरन भड़ककर उठ खड़े हों।

पागलपन

एक मज़ाक़िया क़िस्सा है कि एक वकील साहब ने क़ानून की प्रैक्टिस में काफ़ी पैसा कमाया था। जब उनके मरने का वक़्त आया, तो उन्होंने वसीयतनामा लिखवाया। अपनी वसीयत में उन्होंने कहा था कि मेरी सारी दौलत और जायदाद मेरे मरने के बाद पागल लोगों में बाँट दी जाए। किसी ने इस भलाई की वजह पूछी, तो वकील साहब ने जवाब दिया—

“मेरे पास जो कुछ है, वह पागलों से ही तो मुझे मिला है।”

यह एक हक़ीक़त है कि ‘क़ानून’ का धंधा पागल इंसानों के ज़रिए दुनिया में चल रहा है। इंसान बदले के जोश में आकर किसी को मार देता है। कोई शख्स किसी की जायदाद हड़प लेता है। कोई जलन और दुश्मनी का शिकार होकर किसी को परेशान करना चाहता है और खुद को बेबस पाकर उसे अदालत के फंदे में फँसाने के लिए उसके ऊपर झूठे मुक़दमे दायर करता है। यही वे लोग हैं, जिनके ज़रिए वकीलों का व्यापार चलता है।

इस क़िस्म के लोग हालाँकि खुद को अक्लमंद और होशियार समझते हैं, मगर हक़ीक़त यह है कि वे सबसे बुरी क़िस्म के पागल हैं। आम पागल सिर्फ़ अपने लिए पागल होते हैं, मगर ये होशियार पागल अपने साथ सारी इंसानियत के लिए पागल हैं। उन्हें उनकी आख़िरी सज़ा भले ही ईश्वर के यहाँ मिलेगी, मगर अकसर ऐसा होता है कि मौजूदा दुनिया में भी आख़िरकार वे बुरे अंजाम का शिकार होते हैं। जिस इंसान को उन्होंने अपने पागलपन का शिकार बनाना चाहा था, वह तो ईश्वर की मदद से बच जाता है, मगर ये लोग खुद उसी गड्ढे में डाल दिए जाते हैं, जहाँ वे दूसरों को डालना चाहते थे।

हर इंसान जो कुछ करता है, वह अपने फ़ायदे के लिए करता है। अपना फ़ायदा इंसान का सबसे बड़ा आराध्य (लक्ष्य) है। इंसान अगर संतुलित हालत में हो, तो वह कभी जान-बूझकर ऐसी कार्रवाई नहीं करेगा, जो उसे खुद अपने नुक़सान की तरफ़ ले जाने वाली हो; मगर गुस्सा और बदला वे चीज़ें हैं, जो इंसान को अंधा कर देती हैं। वह दूसरे की ज़िद में ऐसी हरकतें करने लगता है, जिसका नुक़सान आख़िरकार खुद उसे ही उठाना पड़े। ऐसी हर कार्रवाई यक़ीनन पागलपन है। मशहूर पागल अगर चिकित्सीय (मेडिकल) पागल होते हैं, तो ऐसे लोग साइकोलॉजिकल पागल हैं।



नक़ली इज़ाफ़ा



एक पश्चिमी देश की एक संस्था ने एक विज्ञापन छापा। उन्हें एक महिला कर्मचारी की ज़रूरत थी। संस्था को महिला में जो अलग-अलग ख़ूबियाँ चाहिए थीं, उनमें से एक ख़ास और तय किया हुआ क़द भी था।

विज्ञापन छपने के बाद संस्था के पास बहुत सारे आवेदन आए। जब जाँच हुई, तो एक महिला सारी ज़रूरी ख़ूबियों में बेहद अच्छी निकलने लगी। हालाँकि लंबाई के मामले में वह रद्द कर दी गई। उसकी लंबाई ज़रूरी नाप से आधा इंच कम थी, जिसे उसने अपनी जूते की ऊँची एड़ी (हील) में आधा इंच जोड़कर पूरा किया था। जर्जों ने लिखा—

“सामान्य न होना हर हाल में नामंजूर है, चाहे वह लंबाई में आधा इंच कम होना हो या एड़ी में आधा इंच ज़्यादा होना।”

यह छोटा-सा क्रिस्सा ज़िंदगी के एक क़ायदे को बताता है। यह क़ायदा कहता है कि नक़ली चीज़ में किया गया इज़ाफ़ा असली चीज़ में कमी का बदल नहीं है। अगर आपका अपना ‘शरीर’ छोटा है, तो ‘मंच’ को ऊँचा करके आप कभी भी ऊँचाई वाली जगह हासिल नहीं कर सकते।

जब भी इंसान ज़िंदगी की दौड़ में पीछे रह जाता है, तो उसकी वजह हमेशा उसकी अपनी कोई कमी ही होती है। इंसान को चाहिए कि वह इस कमी को

पहचाने। वह अपना सारा ध्यान अपनी कमी को दूर करने में लगा दे। अपनी कमी को दूर करके इंसान दोबारा अपनी खोई हुई जगह हासिल कर सकता है, लेकिन दूसरी चीजों पर हंगामा करके वह बस वक्रत बरबाद करता रहेगा।

अगर आपके काम की गुणवत्ता कम है, तो माँग बढ़ाकर आप उसकी भरपाई नहीं कर सकते। अगर आपकी योजना बनाने की क्राबिलियत कम है, तो शोर-शराबा बढ़ाकर आप उसकी भरपाई नहीं कर सकते। अगर आपके कहने में कोई वजन नहीं है, तो शब्द बढ़ाकर आप उसकी भरपाई नहीं कर सकते। अगर आप मुक्ताबले की दौड़ में पीछे रह गए हैं, तो विरोध और शिकायतें बढ़ाकर आप जिंदगी की अगली क्रतारों में जगह नहीं पा सकते।

एक असली कमी को सिर्फ एक असली चीज से ही पूरा किया जा सकता है, न कि किसी नकली और बे-मतलब चीज से।



सबका फ़ायदा



एक क्रिस्सा है कि बादशाह अकबर ने एक दिन अपने खास दरबारी बीरबल से कहा, “बीरबल, अगर एक बादशाह की बादशाहत हमेशा कायम रहती, तो कितना अच्छा होता।” बीरबल ने जवाब दिया, “आला हज़रत, आपने बिलकुल ठीक फ़रमाया, लेकिन अगर ऐसा होता, तो आज आप बादशाह क्योंकर होते?”

अकबर ने बादशाहत को अपने आपको सामने रखकर समझा। उसने सोचा कि अगर दुनिया में यह कायदा लागू हो कि एक बादशाह हमेशा बना रहे, तो मैं हमेशा इसी तरह बादशाह बना रहूँगा। अकबर यह भूल गया कि बादशाहत का सिलसिला तो दुनिया में तब से चला आ रहा है, जब वह पैदा भी नहीं हुआ था। ऐसे हालात में अगर अकबर का पसंदीदा कायदा दुनिया में लागू होता, तो उसकी बारी ही नहीं आती कि अकबर बादशाह बनकर तख़्त पर बैठे।

अकसर ऐसा होता है कि इंसान अपनी ज़ात को सामने रखकर सोचता है। वह सिर्फ अपने फ़ायदे के हिसाब से अपने आस-पास एक नक्शा बना लेता है। वह यह भूल जाता है कि इस दुनिया में वह अकेला नहीं है, इसलिए बहुत जल्द

बाहरी हक्रीकतें उससे टकराती हैं और उसके बनाए नक्रशे को तोड़ देती हैं। उस वक्त इंसान को पता चलता है कि उसका अपना फ़ायदा भी इसी में था कि वह सबके मिले-जुले फ़ायदे (collective benefit) का ख़्याल रखता।

अगर आप अपना फ़ायदा चाहते हों, तब भी आपको सबका फ़ायदा चाहना चाहिए। सबके फ़ायदे में आपका अपना फ़ायदा भी शामिल है। इस दुनिया में हर इंसान एक सामूहिक नाव (collective boat) में सवार है। नाव के बचाव में उसकी अपनी जान का बचाव भी अपने आप शामिल है।

जिन लोगों को इस दुनिया में कुछ मौक़े मिलते हैं, वे अकसर यह ग़लती करते हैं कि अपनी ज़ात के लिहाज़ से क़ायदे और नियम बनाने लगते हैं। वे जिस तरीक़े में अपना फ़ायदा देखते हैं, उसे लागू करने लगते हैं, मगर यह तरीक़ा अकसर उल्टा पड़ जाता है, क्योंकि इस दुनिया में कोई शख्स हमेशा एक ही हालात पर नहीं रहता। मौक़े कभी एक शख्स के हाथ में आते हैं और कभी वे दूसरे के हाथ में चले जाते हैं। ऐसी हालत में सिर्फ़ अपनी ज़ात को सामने रखकर नियम बनाना अक़्लमंदी नहीं है, क्योंकि बिलकुल मुमकिन है कि हालात बदल जाएँ और जो चीज़ पहले आपको अपने अनुकूल नज़र आती थी, वह बाद में आपके खिलाफ़ बन जाए। अपनी आपको केंद्र में रखकर सोचना हक्रीकत के लिहाज़ से न तो अपने लिए फ़ायदेमंद है और न ही बाक़ी इंसानियत के लिए।



ग़लतफ़हमी



कॉलिन विल्सन अंग्रेज़ी भाषा का एक शायर था। उसके विचार बहुत सख्त थे। उसे बीसवीं सदी के सारे पश्चिमी साहित्य का इंसान हारा हुआ, लकवाग्रस्त और निराशावादी नज़र आता था। उसके मुताबिक़, आज का इंसान उस दिमागी बीमारी में है, जिसे वह 'फ़ैलसी ऑफ़ इनसिग्निफ़िकेंस' यानी 'अपनी अहमियत न समझने की ग़लतफ़हमी' कहता है, मगर हक्रीकत यह है कि इंसान की सबसे बड़ी दिमागी बीमारी वह है, जो इसके उलट मनोवैज्ञानिक सोच पैदा करती है और

वह है 'अपने आपको ज़रूरत से ज़्यादा अहम समझने की गलतफ़हमी' (फ़ैलसी ऑफ़ सिग्निफ़िकेंस)। कुछ लोग कुछ ऐतिहासिक या ग़ैर-ऐतिहासिक वजहों से अपने आपको बेवजह ज़रूरत से ज़्यादा अहम समझ लेते हैं। नतीजा यह होता है कि वे न तो अपने आपको सही तरह से समझ पाते हैं और न ही दूसरों के बारे में हकीकतपसंद राय बनाने में कामयाब होते हैं।

अपनी अहमियत न समझने की गलतफ़हमी एक दिमागी बीमारी है। हालाँकि इस दिमागी बीमारी का नुक़सान सिर्फ़ खुद इंसान को ही होता है। जो शख्स अपने आपको काल्पनिक रूप से कमतर समझ लेता है, वह कोई क़दम उठाने से घबराएगा। वह कोई बड़ा काम करने के लिए खुद को नाक़ाबिल समझेगा। वह अपनी सक्रियता खो देगा और चलती-फिरती दुनिया में बेजान और निष्क्रिय पड़ा रहेगा, मगर ये सब निजी नुक़सान की बातें हैं। अपनी अहमियत न समझने की गलतफ़हमी की क्रीमत इंसान को खुद ही चुकानी पड़ती है।

इसके उलट गलतफ़हमी की दूसरी क्रिस्म इससे ज़्यादा गंभीर है। अपनी अहमियत न समझने की गलतफ़हमी अपनी ज़ात के लिए ज़हर है और अपने आपको ज़रूरत से ज़्यादा अहम समझने की गलतफ़हमी पूरे समाज के लिए ज़हर।

अपने आपको ज़रूरत से ज़्यादा अहम समझने की गलतफ़हमी में फँसा हुआ इंसान अपने आपको उससे ज़्यादा समझ लेता है, जितना कि वह असल में होता है। वह असलियत से दूर जाकर खुद को बड़ा समझने लगता है। इसका नतीजा यह होता है कि दूसरे लोग उसे जो दर्जा देते हैं, वह उसे उससे कम नज़र आता है, जो उसकी अपनी नज़र में उसका दर्जा है। इसलिए बाक़ी सारे लोग उसे ज़ालिम नज़र आने लगते हैं। वह खुद को छोड़कर हर किसी को बुरा समझने लगता है। वह हर किसी का दुश्मन बन जाता है।

अगर अपनी अहमियत न समझने की गलतफ़हमी इंसान के अंदर हीनभावना (inferiority complex) पैदा करती है, तो अपने आपको ज़रूरत से ज़्यादा अहम समझने की गलतफ़हमी इंसान को आक्रामक बना देती है और आक्रामकता बिना शक़ समाज के लिए हीनभावना से ज़्यादा ख़तरनाक है।



मुश्किलें और मौक़े



अंग्रेज़ी की एक कहावत है— “मुश्किलों को भूखा रखो, मौक़ों को खिलाओ।”

यह एक बहुत ही मायने रखने वाली बात है, बल्कि यह कहना सही होगा कि आज की दुनिया में कामयाबी का सबसे बड़ा राज़ यही है। जो शख्स इस गहरे ज्ञान को समझे और उसे इस्तेमाल करे, वही इस दुनिया में कामयाब होता है। जो शख्स इस ज्ञान को न समझे और उसे इस्तेमाल न कर सके, उसके लिए नाकामी के सिवा और कुछ नहीं लिखा है।

असल बात यह है कि मौजूदा दुनिया में इंसान हमेशा दो तरह की चीज़ों के बीच रहता है। एक, मुश्किलें और दूसरी, मौक़े। हमेशा ऐसा होता है कि इंसान कुछ मुश्किलों से घिरा रहता है। इसी के साथ हमेशा यह भी होता है कि इंसान के आस-पास के माहौल में कुछ क्रीमती मौक़े मौजूद होते हैं, जिनका पूरा इस्तेमाल करके वह कामयाबी तक पहुँच सकता है। यह हालत एक इंसान के साथ भी पेश आती है और एक पूरी क़ौम के साथ भी।

यही वह जगह है, जहाँ मौजूदा दुनिया लोगों की परीक्षा ले रही है। जो शख्स सिर्फ़ अपनी मुश्किलों को देखे और उनमें उलझ जाए, वह अपने मौक़ों को खो देगा। इसके उलट जो शख्स मौक़ों को देखे और उनका भरपूर इस्तेमाल करे, वह मुश्किलों पर ज़्यादा ध्यान नहीं दे पाएगा। मुश्किलों को ‘खिलाना’ मौक़ों को ‘भूखा’ रखने की क्रीमत पर होता है। ठीक इसी तरह जो शख्स मौक़ों को खिलाएगा, वह इस क्रीमत पर होगा कि उसकी मुश्किलें भूखी रह जाएँ। यह एक हकीकत है कि मौक़ों का इस्तेमाल करने के लिए हमेशा मुश्किलों को नज़र-अंदाज़ करना पड़ता है।

तजुर्बा बताता है कि मुश्किलों में उलझना कभी किसी के लिए फ़ायदेमंद नहीं होता। आखिरी नतीजे के तौर पर यह सिर्फ़ वक़्त बरबाद करने जैसा है, मगर जो शख्स खुद को मौक़ों के इस्तेमाल में लगाता है, वह न सिर्फ़ मौक़ों का फ़ायदा हासिल करता है, बल्कि उसकी कामयाबी अपने आप उन चीज़ों को भी हल कर देती है, जिन्हें मुश्किलें कहते हैं।



एक बड़ा इंसान



मिस्टर डेल कार्नेगी की एक किताब है, जिसका नाम है—

हाउ टू स्टॉप वरीइंग एंड स्टार्ट लिविंग

(How to Stop Worrying and Start Living)

यह किताब पहली बार 1948 में छपी थी। लेखक लिखते हैं कि जब मैंने पहली बार इस किताब को लिखने का फ़ैसला किया, तो मैंने ऐलान किया कि जो शख्स इस विषय पर सबसे बढ़िया असली कहानी पेश करेगा, उसे दो सौ डॉलर का इनाम दिया जाएगा। इस सिलसिले में मिली दो सबसे अहम कहानियों में से एक कहानी वह थी, जिसका एक हिस्सा इस तरह है—

मिस्टर सी.आर. बर्टन ने लिखा कि जब मैं नौ साल का था, तो मेरी माँ का देहांत हो गया। बारह साल की उम्र में मैंने अपने पिता को भी खो दिया। इसके बाद मैं बेसहारा होकर रह गया। लोग मुझे अनाथ कहने लगे।

बाद में मिस्टर और मिसेज़ लॉफिटन ने दया खाकर मुझे अपने पास रख लिया। उन्होंने कहा, “तुम जब तक चाहो, हमारे साथ रह सकते हो।” जब मैं स्कूल जाने लगा, तो स्कूल के बच्चे मेरी उभरी हुई नाक का मज़ाक़ उड़ाते। वे मुझे ताने के तौर पर ‘अनाथ बच्चा’ (Orphan Brat) कहने लगे। मुझे उनकी बातों से बहुत दुःख होता था, यहाँ तक कि मैं उनसे लड़ने का मन बना लेता, लेकिन जिस चीज़ ने मुझे लड़ाई से रोका, वह मिस्टर लॉफिटन का यह वाक्य था—

“हमेशा याद रखो कि लड़ाई से दूर हट जाने वाला इंसान लड़ाई में झगड़ने वाले इंसान से कहीं बड़ा होता है।”

अगर तुम एक कुएँ में पत्थर फेंकोगे, तो उसका पानी उबलने लगता है, लेकिन अगर तुम समंदर में एक पूरा पहाड़ भी डाल दो, तब भी वह वैसा-का-वैसा ही रहेगा। ठीक इसी तरह छोटे दिल वाला इंसान एक सख़्त बात सुनकर बिगड़ उठता है, मगर बड़े दिल वाला इंसान तूफ़ानों के गुज़र जाने पर भी शांत रहता है।



उल्टा नतीजा



सुभाष एक डाकू था, जो डकैती के 20 मामलों में शामिल था। पुलिस ने उसे ज़िंदा या मरा पकड़ने के लिए पंद्रह हजार रुपये के नक़द इनाम का ऐलान किया था।

यह घटना 13 दिसंबर, 1983 की है। दिल्ली की एक पुलिस टीम माता सुंदरी इनकम टैक्स ऑफ़िस के पास सड़क पर थी। उन्होंने देखा कि सामने से एक सफ़ेद फ़िएट कार आ रही है। पुलिस की गाड़ी के पास आकर अचानक उसने यू-टर्न ले लिया यानी घूमकर पीछे की तरफ़ वापस हो गई। पुलिसवालों को शक हुआ और उन्होंने कार का पीछा किया। जब पुलिस की गाड़ी बिलकुल करीब पहुँच गई, तो कार के सवारों ने पुलिस की गाड़ी पर फ़ायरिंग शुरू कर दी।

अब पुलिस टीम को यकीन हो गया कि उसके अंदर कोई अपराधी बैठा है, इसलिए पुलिसवालों ने भी जवाब में कार पर गोलियाँ चला दीं, मगर कार आगे की तरफ़ भागती रही और आखिरकार नज़रों से ओझल हो गई। हालाँकि उसी शाम शाहदरा अस्पताल के पास सड़क पर एक लाश पड़ी मिली। यह बताए गए डाकू सुभाष की लाश थी। पुलिस की गोलियों से घायल होकर वह जल्द ही मर गया, तो उसके बाक़ी चार साथियों ने उसे कार से निकालकर बाहर सड़क पर फेंक दिया और खुद आगे की तरफ़ रवाना हो गए।

(टाइम्स ऑफ़ इंडिया, हिंदुस्तान टाइम्स; 14 दिसंबर, 1983)

यह एक मिसाल है, जिससे अंदाज़ा होता है कि कभी-कभी बचाव का क़दम उल्टा पड़ जाता है। अगर सफ़ेद कारवाले अपने रास्ते से सामान्य तरीक़े से गुज़र गए होते, तो मुमकिन था कि वे पुलिस की नज़र से बच जाते, लेकिन जब उन्होंने अपने बचाव के लिए हमलावर क़दम उठाया, तो वे मौत के मुँह में जा पड़े।

इस दुनिया में हर इंसान की समझदारी की परीक्षा ली जा रही है। जिन लोगों की आदत यह हो कि वे जो भी विरोध या मुश्किल देखें, उससे लड़ने के लिए तैयार हो जाएँ, तो वे इस दुनिया में कभी कामयाब नहीं हो सकते। इस दुनिया में कामयाब होने के लिए कभी मुक़ाबला करना पड़ता है और कभी बचकर निकलना पड़ता है। कभी सामने वाले रास्ते से चलना पड़ता है और कभी ज़रूरत होती है कि इंसान दाएँ या बाएँ से हटकर आगे बढ़ जाए। यह

दुनिया होशियारी की परीक्षा है। यहाँ वही शख्स कामयाब होता है, जो इस नाज़ुक इम्तिहान में खरा उतरे।

कामयाबी का राज यहाँ है

यह मद्रास की एक घटना है। दो जवान समुद्र के किनारे नहा रहे थे। दोनों दोस्त थे और अच्छी तैराकी जानते थे। वे पानी की सतह पर भी तैरते थे और गोता लगाकर पानी के अंदर भी दूर तक चले जाते थे। दोनों तैरते-तैरते दूर निकल गए। इसके बाद लहरों का एक ज़ोरदार झटका आया और दोनों उसकी चपेट में आ गए।

एक जवान ज़्यादा माहिर था। उसने कहा, “मैं लहरों से लड़कर पार निकल जाऊँगा,” और लहरों के सामने अपनी तैराकी का हुनर दिखाने लगा, लेकिन लहरों का ज़ोर ज़्यादा था; अपनी ताकतवर बाज़ुओं के बावजूद वह उनसे निकलने में कामयाब नहीं हो सका और डूबकर मर गया।

दूसरा जवान भी तूफ़ान की ज़द में आ गया। कुछ देर तक उसने अपने साथी का तरीक़ा अपनाया। फिर उसे एहसास हुआ कि लहरों की तीव्रता इतनी ज़्यादा है कि उसकी बाज़ुओं के लिए उनसे लड़कर निकल पाना मुमकिन नहीं है। अचानक उसे एक बात याद आई। उसने सुना था कि लहरें चाहे कितनी भी तेज़ क्यों न हों, उनका ज़ोर ऊपरी सतह पर ही रहता है। पानी की निचली परत फिर भी शांत रहती है। इसके बाद उसने अपनी रणनीति बदल दी। ऊपरी लहरों से लड़ने के बजाय उसने नीचे की ओर गोता लगाया और पानी की निचली सतह पर पहुँच गया। यहाँ पानी उम्मीद के मुताबिक़ स्थिर था और उसके लिए अपने तैराकी के हुनर को सफलतापूर्वक इस्तेमाल करना मुमकिन था। उसने किनारे की ओर तैरना शुरू कर दिया। हालाँकि वह काफ़ी थक चुका था, फिर भी हाथ-पैर चलाते हुए आखिरकार वह समुद्र के किनारे पहुँच गया। किनारे पहुँचते-पहुँचते वह बेहोश हो चुका था। समुद्र के किनारे कुछ मल्लाह अपनी नावों के साथ मौजूद थे। उन्होंने तुरंत उसे देखा, उठाया और सूखी ज़मीन पर ले गए। इसके बाद उसे अस्पताल

पहुँचाया गया। वह कुछ दिनों तक इलाज के बाद ठीक हो गया। जिसने लहरों से लड़ने को तैराकी समझा, वह मारा गया और जिसने लहरों से बचकर निकलने का तरीका अपनाया, वह कामयाब रहा।

यही बात पूरी ज़िंदगी के बारे में है। ज़िंदगी में तरह-तरह के तूफ़ान आते हैं, लेकिन समझदारी यह नहीं है कि जो भी झटका सामने आए, इंसान उससे लड़ने लगे। समझदारी यह है कि इंसान जायज़ा लेकर देखे कि कामयाबी के साथ किनारे तक पहुँचने का ज़्यादा संभव रास्ता कौन-सा है और जो रास्ता संभव हो, उसे ही चुने, चाहे वह लहरों की सतह से उतरकर नीचे-नीचे से अपना रास्ता बनाना ही क्यों न हो। यह प्रकृति का इंतज़ाम है कि नदियों और समुद्रों में जो तेज़ लहरें उठती हैं, लेकिन वे पानी की ऊपरी सतह पर ही रहती हैं। पानी की निचली सतह शांत रहती है, इसलिए भँवर के समय मछलियाँ निचली सतह पर चली जाती हैं। यह प्रकृति का सबक है। इस तरह प्रकृति हमें बताती है कि तूफ़ानी लहरों के समय हमें क्या कार्यवाही अपनानी चाहिए। ज़िंदगी में कभी-कभी तूफ़ान से लड़ना भी पड़ता है, लेकिन अकसर कामयाबी का राज यह होता है कि इंसान तूफ़ानी सैलाब से बचकर निकल जाए, वह तूफ़ान की चपेट से बचते हुए अपना रास्ता बनाए।



शेर का सबक



जिम कॉर्बेट को शेरों के अध्ययन का माहिर माना जाता है। भारत में उनके नाम पर एक जानवरों का पार्क (वाइल्ड लाइफ़ पार्क) बना हुआ है। जिम कॉर्बेट ने लिखा है कि कोई भी शेर इंसान पर तब तक हमला नहीं करता, जब तक कि उसे भड़काया न जाए।

जो लोग जंगल के इलाकों में रहते हैं, वे जानते हैं कि अगर कभी उनका सामना किसी शेर से हो भी जाए, तो घबराने की कोई बात नहीं है, क्योंकि शेर बस अपना रास्ता चलता हुआ निकल जाएगा, बशर्ते कि उसे छेड़ा न जाए।

हकीकत यह है कि शेर अपनी फ़ितरत के हिसाब से इंसानों का दुश्मन नहीं है। शेर के लिए 'आदमख़ोर' शब्द सिर्फ़ एक संयोग वाली बात में ही सही है। शेर

पैदाइशी तौर पर आदमखोर नहीं होता, बल्कि कुछ नादान इंसानों की हरकतें ही किसी शेर को आदमखोर बना देती हैं। जो लोग किसी शेर को आदमखोर बनाते हैं, वे अकसर अनाड़ी शिकारी होते हैं, जो पूरे यक्रीन के बिना ही शेर पर गोली चला देते हैं। शेर को मारने के शौक में वे उस पर गोली चलाते हैं, मगर महारत न होने की वजह से उनकी गोली सही निशाने पर नहीं लगती और चूक जाती है। शेर हल्का-सा ज़ख्मी हो जाता है, मगर मरता नहीं है। इस तरह का ज़ख्मी शेर इंसान का दुश्मन बन जाता है। वह जहाँ कहीं भी इंसानी चेहरा देखता है, उसे अपना दुश्मन समझ लेता है और उस पर हमला करके उसे मार देता है। ज्यादातर शिकारी जानवरों का यही हाल है।

इस मिसाल में हमारे लिए दो बहुत बड़े सबक हैं। पहला यह कि किसी को पहले से ही अपना 'दुश्मन' समझ लेना ठीक नहीं है, यहाँ तक कि किसी दरिंदे स्वभाव वाले इंसान को भी नहीं। कोई शाख्स सिर्फ़ उसी से दुश्मनी का बरताव करता है, जिसे वह अपना दुश्मन समझ ले। अगर हम खुद को दुश्मन के रूप में पेश न करें, तो दूसरा भी हमसे दुश्मनी का बरताव नहीं करेगा।

दूसरा सबक यह है कि बिना पूरी तैयारी के कभी किसी के खिलाफ़ कार्रवाई नहीं करनी चाहिए। अगर आप अपने मुक्काबले वाले पर ऐसी हरकतें करेंगे, जो पूरी तैयारी के बिना की गई हों और इस वजह से फ़ैसलाकुन न बन सकें, तो ऐसी कार्रवाई आपके मुक्काबले वाले को पहले से ज्यादा गुस्सा दिलाकर आपकी मुश्किल को और भी गंभीर बना देगी।

हर शाख्स अपनी अंदरूनी ज़रूरतों के मुताबिक़ अपनी ज़रूरतों को पूरा करने में लगा रहता है और अगर ज़रूरतें पूरी हो जाएँ, तो अपनी इच्छाओं को पूरा करने में। यह एक कुदरती इंतज़ाम है, जो लोगों को एक-दूसरे से अलग रखता है। आप दूसरे को न छेड़ें और आप दूसरे के ज़ुल्म से महफूज़ रहेंगे, क्योंकि यहाँ हर कोई अपने आपमें इतना मशगूल है कि उसे दूसरे के खिलाफ़ सोचने की फ़ुर्सत ही नहीं है।



जवाब देने का तरीका



एक आदमी ने एक बुजुर्ग की तारीफ़ की। उसने कहा कि वे इतने बड़े सूफ़ी संत थे कि नमाज़ की हालत में ही उनकी मौत हुई यानी उनकी मौत ईश्वर की गोद में हुई।

सुनने वाला कुछ देर चुप रहा, फिर बोला, “ईश्वर के पैग़ंबर की वफ़ात हुई, तो वे अपनी बीवी की गोद में थे और इस बुजुर्ग की मौत ईश्वर की गोद में हुई। इसका मतलब तो यह हुआ कि यह बुजुर्ग ईश्वर के पैग़ंबर से भी ज़्यादा बड़े थे।”

यह जवाब इतना वज़नदार था कि इसे सुनकर वह आदमी चुप हो गया।

सुनने वाले ने उस बुजुर्ग की जीवनी पढ़ी थी। उसमें उसे यह बात कहीं नहीं मिली थी कि बुजुर्ग की मौत नमाज़ की हालत में हुई। हालाँकि उसने सोचा कि अगर वह यह कहे कि “यह बात कहाँ लिखी है?” या “यह कैसे साबित होती है?” तो बेकार की बहस शुरू हो जाएगी और ख़त्म ही नहीं होगी। इसलिए उसने यह सवाल नहीं उठाया। उसने ऐसी बात कही, जो न सिर्फ़ पक्की थी, बल्कि अपने सामान्य पहलू की वजह से उस आदमी को चुप कर देने वाली थी। इस तरह लंबी बहस की नौबत नहीं आई और एक ही वाक्य पूरे सवाल का जवाब बन गया।

ऐसे मामलों में जवाब देने का यही सही तरीका है। अगर कोई आदमी ऐसा करे कि सामने वाले की बात सुनते ही फ़ौरन उससे उलझने न लगे, बल्कि रुककर सोचे कि इसका सही और असरदार जवाब क्या हो सकता है, तो यकीनन वह हर सवाल का ऐसा जवाब ढूँढ़ लेगा, जो इतना फ़ैसलाकुन हो कि लंबी बहस-तकरार की ज़रूरत ही न पड़े और सिर्फ़ एक वाक्य पूरे सवाल के लिए काफ़ी हो जाए।

सबसे बुरा जवाब वह है, जिसमें सवाल पूछने वाला और जवाब देने वाला दोनों उलझ जाएँ और आख़िरकार ऐसे अलग हों कि दोनों में से कोई हार मानने को तैयार न हो और सबसे अच्छा जवाब वह है, जब जवाब देने वाला ऐसा सोचा-समझा, वज़नदार जवाब दे कि उसके बाद सवाल पूछने वाले की समझ में ही न आए कि उसके आगे वह क्या कह सकता है।



भड़काओ मत



एक शख्स हैं। वे दिखने में तो साधारण लगते हैं, मगर मिजाज के लिहाज से बहुत धार्मिक हैं। वे एक पढ़े-लिखे आदमी हैं और कुरआन व हदीस के मसलों पर कई किताबें लिख चुके हैं।

एक दिन जुमे की नमाज के बाद मस्जिद में उनकी मुलाक़ात एक बुजुर्ग से हुई। उनके साथी ने उनका परिचय देते हुए कहा कि यह फ़लाँ साहब हैं और उन्होंने कुरआन व हदीस पर कई किताबें लिखी हैं। जब बुजुर्ग ने उनकी तरफ़ देखा, तो उन्होंने देखा कि वे एक साधारण कमीज़ पहने हैं, सिर पर गांधी टोपी है और दाढ़ी भी एक मुट्ठी से कम है। यह देखकर बुजुर्ग ने कहा—

“तुम्हारे रूप-रंग से तो यह बात नहीं झलकती।”

बुजुर्ग की ज़ुबान से यह अपमानजनक बात सुनकर उस शख्स को गुस्सा आ गया। हालाँकि उन्होंने सब्र कर लिया। वे एक पल के लिए चुप रहे और फिर बोले—

“आपकी बात ठीक है, मगर ईश्वर कभी-कभी गुनाहगारों से भी अपना काम ले लेते हैं।”

यह ठंडा जवाब उस बुजुर्ग के लिए इतना कड़वा साबित हुआ कि उसके बाद वे कुछ बोल नहीं सके और चुपचाप वापस चले गए।

यह एक मिसाल है, जो दिखाती है कि गुस्सा भड़कने के वक़्त इंसान को कैसा जवाब देना चाहिए। जब भी कोई आपकी आलोचना करता है, आपके खिलाफ़ कोई सख़्त बात कह देता है, तो आपके शरीर में आग-सी लग जाती है। आप चाहने लगते हैं कि उसे जलाकर राख कर दें, जैसे उसने आपको जला रखा हो; मगर यह तरीक़ा शैतान का तरीक़ा है। सही तरीक़ा यह है कि आप उस कड़वाहट को पी जाएँ जो झटका आपको लगा है, उसे दूसरे पर डालने के बजाय खुद ही सह लें। जब आप ऐसा करेंगे, तो आपको एक नई ताक़त हासिल होगी। आप उस हिक़मत को जान जाएँगे कि कड़वे शब्दों का जवाब मीठे शब्दों से देना ज़्यादा ताक़तवर जवाब होता है।

यह एक हकीकत है कि गुस्सा भड़कने के वक़्त जो शाख्स सब्र कर ले और सोच-समझकर बोले, वह ज़्यादा ताक़तवर अंदाज़ में अपनी बात कहने के क़ाबिल हो जाता है। वह इस क़ाबिल हो जाता है कि भड़काऊ शब्दों का जवाब ठंडे शब्दों से दे और ठंडक आग को ज़्यादा बुझाने वाली होती है। वह इस क़ाबिल हो जाता है कि अपने मुक़ाबले वाले को माफ़ कर दे और माफ़ कर देना यक़ीनन सबसे बड़ा बदला है।

झगड़े से बचकर

दो किसानों के खेत आपस में लगते थे। उनके बीच एक मेड़ (सीमा) को लेकर झगड़ा हो गया। हर कोई कहता था कि मेड़ उसकी है। दोनों खेत की मेड़ पर लड़ पड़े। यह झगड़ा पहले 'मेड़' का था, फिर वह इज़्जत का मसला बन गया। हर एक को लगने लगा कि मेड़ से हटना लोगों की नज़र में ख़ुद को बेइज़्जत करना है। इसलिए झगड़ा बढ़ता रहा। वह यहाँ तक बढ़ा कि दोनों तरफ़ मौतें हुईं, फ़सलें काट दी गईं। दोनों ने एक-दूसरे की चीज़ें जला दीं। इसके बाद मामला और बढ़ा। वह पुलिस और अदालत का मामला बन गया। मुक़दमेबाज़ी की लंबा सिलसिला शुरू हो गया। ये मुक़दमे सिर्फ़ तब ख़त्म हुए, जब उनके खेत, बाग़, ज़ेवर सब बिक गए। एक मामूली मेड़ को पाने के लिए दोनों ने अपना सब कुछ खो दिया।

यही मेड़ का झगड़ा एक दूसरे किसान के साथ पैदा हुआ, मगर उसने गुस्से में तुरंत कार्रवाई करने के बजाय इस पर ग़ौर किया। समझदार लोगों से सलाह ली। आख़िरकार उसकी समझ में यह बात आई कि मेड़ का झगड़ा मेड़ पर थमता नहीं है। झगड़े को सुलझाने की जगह दूसरी है। यह सोचकर उसने झगड़े वाली मेड़ छोड़ दी।

उसने यह किया कि मसले पर 'आज' से सोचने के बजाय 'पीछे' से सोचना शुरू किया। मेड़ के वाक़ये से उसके दिल को भी चोट लगी। उसे भी अपने नुक़सान और अपनी बेइज़्जती से वही तकलीफ़ हुई, जो हर इंसान को ऐसे वक़्त

पर होती है, मगर उसने अपने जज़्बात को क़ाबू किया। तुरंत जोश में कार्रवाई करने के बजाय सोच-समझकर क़दम उठाने का फ़ैसला किया।

“मेरे मुक़ाबले वाले को मेरी मेड़ पर क़ब्ज़ा करने की हिम्मत क्यों हुई?” इस सवाल पर ग़ौर करते-करते वह इस राय पर पहुँचा कि इसकी वजह मुक़ाबले वाले के मुक़ाबले में उसकी ख़ुद की कमज़ोरी है। मेरा और मुक़ाबले वाले का असली मामला मेड़ का मामला नहीं है, बल्कि असली मामला यह है कि मेरी हैसियत मेरे मुक़ाबले वाले के मुक़ाबले इतनी मज़बूत नहीं है कि वह मुझसे डरे और मेरे हक़ पर हाथ डालने की हिम्मत न करे। ठंडे दिमाग़ से सोचने के बाद उसकी समझ में यह बात आई कि अगर वह अपनी ताक़त और हैसियत को बढ़ा ले, तो वह अपने मुक़ाबले वाले के खिलाफ़ ज़्यादा बेहतर तरीक़े से कामयाब हो सकता है, क्योंकि इसके बाद उसके मुक़ाबले वाले को उस पर हाथ डालने की हिम्मत ही नहीं होगी।

अब उसने अपने खेतों पर पहले से ज़्यादा मेहनत शुरू कर दी। जो ताक़त वह मुक़ाबले वाले को बरबाद करने की कोशिशों में लगाता, उसी ताक़त को उसने ख़ुद अपनी तरक्की में लगाना शुरू कर दिया। इस नई सोच ने उसके अंदर नया हौसला जगा दिया। वह न सिर्फ़ अपने खेतों में ज़्यादा मेहनत करने लगा, बल्कि खेती के साथ कुछ और छोटे-मोटे कारोबार भी शुरू कर दिए। उसकी नई समझ का नतीजा यह हुआ कि उसने अपनी ज़िंदगी को फिर से सँभाला। वह खर्च घटाने और आमदनी बढ़ाने के क़ायदे पर सख़्ती से चलने लगा। इसी के साथ अपने बच्चों को पढ़ाई की राह पर लगा दिया। उसने तय कर लिया कि वह अपने हर बच्चे को उच्च शिक्षा दिलाएगा।

इस दूसरे शरख़ को भी अपनी कोशिशों में ठीक वैसे ही बीस साल लग गए, जैसे पहले शरख़ को लगे थे, मगर पहले शरख़ के लिए बीस साल बरबादी के मायने थे, जबकि दूसरे शरख़ के लिए बीस साल तरक्की के मायने बन गए। इन बीस सालों में उसके बच्चे पढ़-लिखकर अच्छे ओहदों पर पहुँच चुके थे। उसने अपनी खेती इतनी बढ़ा ली थी कि उसके यहाँ हल-बैल की जगह ट्रैक्टर चलने लगा था। जिस किसान से उसका मेड़ का झगड़ा हुआ था, उसका वह पूरा खेत उसने मेड़ समेत ख़रीद लिया।

जिस आदमी ने मेड़ का झगड़ा मेड़ पर सुलझाने की कोशिश की, वह बरबाद हो गया। इसके उलट जिसने मेड़ को छोड़कर दूसरे मैदान में मेहनत की,

वह आखिरकार न सिर्फ़ मेड़ का मालिक बना, बल्कि मुक्काबले वाले का पूरा खेत भी उसके कब्जे में आ गया।

बिजली का बल्ब जलते-जलते बुझ जाए या पंखा चलते-चलते रुक जाए, तो हम बल्ब को तोड़कर नहीं देखते या पंखे से नहीं उलझते, क्योंकि हम जानते हैं कि बल्ब के बुझने और पंखे के रुकने की वजह बल्ब और पंखे के अंदर नहीं, उनके बाहर है और फिर जहाँ से फ़र्क पड़ा हो, वहाँ ठीक करके अपने बल्ब और पंखे को दोबारा चला लेते हैं। इंसानी मामले भी अकसर इसी क्रिस्म के होते हैं, मगर अजीब बात है कि बल्ब और पंखे के मामले में जो बात इंसान कभी नहीं भूलता, उसी बात को वह इंसानी मामले में हमेशा भूल जाता है।

इंसान की यह आम कमजोरी है कि जब भी उसकी जिंदगी में कोई मसला पैदा होता है, तो वह उसी जगह अपना सिर पीटने लगता है, जहाँ मसला पैदा हुआ है। हालाँकि ज्यादातर हालात में ऐसा होता है कि मसला कहीं पैदा होता है और उसकी वजह कहीं और होती है। 'वर्तमान' की एक घटना अकसर 'अतीत' की किसी घटना का नतीजा होती है। एक मामले में किसी की ज्यादाती अकसर किसी दूसरे मामले में मौजूद किसी हालात की वजह से होती है। ऐसे हालात में सबसे बेहतरीन समझदारी यह है कि इंसान मसले की जगह पर सिर न पीटे, बल्कि असली वजह को पहचानकर बात को वहाँ बनाने की कोशिश करे, जहाँ बात बिगड़ने की वजह से उसके साथ वह हादसा पेश आया है, जिसमें वह आज खुद को फँसा हुआ पाता है।

डी-गॉलवाद

कभी-कभी ऐसा होता है कि क्रौम को जिंदा करने के लिए एक शख्स को खुद को कुर्बान करना पड़ता है। मौजूदा वक़्त में फ्रांस के चार्ल्स डी-गॉल (1890-1970) ने इसकी शानदार मिसाल पेश की।

डी-गॉल दिसंबर, 1958 में फ्रांस के राष्ट्रपति चुने गए। उस वक़्त अफ्रीका में फ्रांस के करीब एक दर्ज़न उपनिवेश (कॉलोनी) थे, जहाँ आज़ादी की लहर चल

रही थी। खास तौर पर अल्जीरिया में यह लहर बहुत तेज़ हो चुकी थी। फ्रांस ने इसे कुचलने के लिए करीब ढाई लाख लोग मार डाले। इसके बावजूद अल्जीरिया में आज़ादी की लहर दबती नज़र नहीं आ रही थी। ये हालात चार्ल्स डी-गॉल के लिए बेहद चिंता का सबब बन गए। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के मुताबिक, अल्जीरिया की जंग की मुश्किलें उनके लिए इतनी बड़ी रुकावट बन गईं कि वे भविष्य की बेहतर नीतियों के बारे में सोचने के अलावा ज़्यादा कुछ नहीं कर पाए।

फ्रांस अपने अफ्रीकी उपनिवेशों को 'फ्रांस का प्रांत' कहता था। वह वहाँ की भाषा और संस्कृति को इस क़दर बदल देना चाहता था कि वहाँ के लोग खुद को फ्रांसीसी समझने लगें, मगर यह योजना फ्रांस पर बहुत भारी पड़ी। असल में ये देश फ्रांस के प्रांत नहीं बन सके और इस अव्यावहारिक कोशिश ने फ्रांस को ही कमज़ोर बना दिया। फ्रांस की सारी बेहतरीन ताक़त उपनिवेशों में आज़ादी की लहरों को दबाने में खर्च होने लगी और फ्रांस ने यूरोप की एक महाशक्ति होने का दर्जा खो दिया।

सबसे बड़ा नुक़सान यह हुआ कि अफ्रीका पर क़ब्ज़ा बनाए रखने की कोशिश में फ्रांस परमाणु हथियारों की दौड़ में पिछड़ गया। ब्रिटानिका के लेखक ने लिखा है कि चार्ल्स डी-गॉल ने महसूस किया कि उपनिवेशों की जंग लड़ने की कोशिश ने फ्रांस को परमाणु हथियार बनाने से रोक दिया था, इसलिए डी-गॉल ने अल्जीरिया को आज़ाद कर दिया और इसके बाद मज़बूत परमाणु ताक़त बनाने की कोशिश शुरू कर दी, ताकि फ्रांस का महान दर्जा फिर से क़ायम हो सके।

डी-गॉल ने इस मामले को राष्ट्रीय शान या निजी नेतृत्व से अलग होकर देखा। ठंडे दिमाग़ से सोचने के बाद वे इस नतीजे पर पहुँचे कि इस मसले का एक ही वास्तविक हल है— अफ्रीकी उपनिवेशों को आज़ाद कर दिया जाए। हालाँकि फ्रांस के लिए यह कोई मामूली बात नहीं थी। यह फ्रांस की राष्ट्रीय प्रतिष्ठा का मसला था और राष्ट्रीय प्रतिष्ठा ऐसी चीज़ है कि क़ौमों लड़-लड़कर मर जाती हैं, मगर अपनी प्रतिष्ठा खोना बरदाश्त नहीं करतीं। यह तय था कि जो शख्स इस मामले में राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के खिलाफ़ फैसला करेगा, वह फ्रांस में अपनी लोकप्रियता पूरी तरह खो देगा, मगर डी-गॉल ने यह खतरा मोल ले लिया। ब्रिटानिका के शब्दों में, “डी-गॉल ने अल्जीरिया का मसला तब सुलझाया, जब उनके अलावा कोई दूसरा शख्स इसे सुलझा नहीं सकता था।”

जनरल डी-गॉल ने इसके बाद अल्जीरिया के नेताओं को बातचीत के लिए बुलाया। इस बातचीत का नतीजा पहले से तय योजना के मुताबिक अल्जीरिया के पक्ष में हुआ यानी फ्रांस सरकार इस बात पर राजी हो गई कि अल्जीरिया में जनमत संग्रह कराया जाए और लोगों से पूछा जाए कि वे फ्रांस के अधीन रहना चाहते हैं या आज़ाद होना चाहते हैं। जनमत संग्रह हुआ। अंदाजे के मुताबिक अल्जीरिया के लोगों ने आज़ाद अल्जीरिया के पक्ष में वोट दिए और इसका सम्मान करते हुए फ्रांस सरकार ने जुलाई, 1962 में अल्जीरिया की आज़ादी का ऐलान कर दिया।

इसके नतीजे में चार्ल्स डी-गॉल की सख्त आलोचना हुई। उन पर क्रातिलाना हमले किए गए। इसके बाद जनता के दबाव में डी-गॉल ने फ्रांस में एक जनमत संग्रह कराया, जिसमें डी-गॉल को हार मिली। आखिरकार उन्होंने 28 अप्रैल, 1969 को राष्ट्रपति पद से इस्तीफ़ा दे दिया। 9 नवंबर, 1970 को उन्हें दिल का दौरा पड़ा और उनका निधन हो गया। डी-गॉल को एक मामूली क्रिस्तान में इस तरह दफ़नाया गया कि उनके जनाजे में उनके कुछ रिश्तेदारों और दोस्तों के सिवा कोई और शामिल नहीं था। डी-गॉल खुद तो मर गए, मगर उन्होंने मरकर अपनी क्रौम को दोबारा ज़िंदगी दे दी।

डी-गॉल की इस घटना से अगर 'डी-गॉलवाद' शब्द बनाया जाए, तो कहा जा सकता है कि डी-गॉलवाद यानी अपने नेतृत्व की क्रीमत पर क्रौम को बचाना। ब्रिटानिका (1984) के शब्दों में, "डी-गॉल अकेले ऐसे शख्स थे, जिनमें यह हिम्मत थी कि वे ऐसे नाज़ुक फ़ैसले ले सकें, जिनसे गंभीर क्रिस्म के राजनीतिक और निजी ख़तरे जुड़े होते हैं।"

डी-गॉलवाद राष्ट्रीय ज़िंदगी का राज है, मगर बहुत कम ऐसा होता है कि किसी क्रौम को एक डी-गॉल मिल पाए।



कहानी बन गई



विंस्टन चर्चिल, जो बाद में ब्रिटेन के प्रधानमंत्री बने, अफ्रीका के बोअर युद्ध (1899) के दौरान ब्रिटिश अख़बार 'मॉर्निंग पोस्ट' के युद्ध संवाददाता (वार

करेस्पॉन्डेंट) थे। इस दौरान एक वाक्या हुआ, जिसे दक्षिण अफ्रीका के पूर्व प्रधानमंत्री जान स्मट्स ने चर्चिल के चरमोत्कर्ष के दिनों में सुनाया। वे चर्चिल की मौजूदगी में व्हाइट हाउस (वॉशिंगटन) के डिनर के मौके पर भाषण दे रहे थे।

उन्होंने बताया कि बोअर युद्ध के दौरान मिस्टर चर्चिल ब्रिटिश सिपाहियों के एक दस्ते के साथ बोअरों के हाथों पकड़े गए। बोअरों ने सिपाही और अखबारी संवाददाता में कोई फ़र्क नहीं किया। उन्होंने सबको एक साथ जेल में डाल दिया।

मिस्टर चर्चिल ने जेल से इस घटना की रिपोर्ट मुझे भेजी और अपनी तुरंत रिहाई पर ज़ोर दिया, क्योंकि अंतरराष्ट्रीय रिवाज के मुताबिक अखबारी रिपोर्टर को कैद नहीं किया जा सकता। मैंने उस खत पर कार्रवाई शुरू की, मगर इससे पहले कि इस केस का फ़ैसला होता, मिस्टर चर्चिल किसी-न-किसी तरह जेल से भागने में कामयाब हो गए।

इस घटना के काफ़ी समय बाद मेरी मुलाकात मिस्टर चर्चिल से हुई, जो उस वक़्त ब्रिटिश कैबिनेट के सदस्य थे। मैंने वह वाक्या याद दिलाया, तो मिस्टर चर्चिल बोले, “आपने अच्छा किया कि मेरे खत पर मेरी दरख्वास्त के बावजूद तुरंत कार्रवाई नहीं की। अगर आप जल्दबाज़ी में मेरी रिहाई का इंतज़ाम करा देते, तो मेरा नौ हज़ार पाउंड का नुक़सान हो जाता।”

“वह कैसे?” मैंने हैरान होकर पूछा।

“वह इस तरह कि मैंने अपनी जेल से भागने की दास्तान एक मैगज़ीन के लिए लिखकर नौ हज़ार पाउंड में बेच दी।”

अगर मिस्टर चर्चिल आसानी से रिहा हो जाते, तो यह वाक्या एक साधारण घटना होती, वह कहानी नहीं बनती; मगर गिरफ़्तारी और उसके बाद जेल से फ़रार होने ने उसे कहानी बना दिया।

ज़िंदगी में कभी ऐसा होता है कि एक घटना घटती है, जो दिखने में नाखुशगवार लगती है। इंसान उसे देखकर हिम्मत हारने लगता है, मगर बाद में जब आखिरी नतीजा सामने आता है, तो पता चलता है कि शुरुआती अंदाज़ा बिलकुल ग़लत था। नाखुशगवार पहलू में एक खुशगवार पहलू छुपा हुआ मौजूद था। जो घटना अपनी शुरुआत में नुक़सान की घटना नज़र आती थी, वह अपने अंत में फ़ायदे की घटना बन जाती है।



बुनियाद



किसी भी इमारत की शुरुआत उसकी बुनियाद से होती है। एक इंजीनियर को अगर 'आसमान छूती इमारत' (स्काइस्क्रेपर) भी बनानी हो, तो भी वह उसकी शुरुआत बुनियाद से ही करेगा। बुनियाद से शुरुआत करना, दूसरे शब्दों में, इस हकीकत को स्वीकार करना है कि इंसान जहाँ खड़ा है, वही वह बिंदु है, जहाँ से वह अपनी मंज़िल की तरफ़ बढ़ सकता है।

इस दुनिया में हम अकेले नहीं हैं। यहाँ एक तरफ़ कुदरत है, जो अपने खुद के क्रायदों पर चलती है। इसके साथ ही यहाँ दूसरे इंसान भी हैं। उनमें से हर एक के सामने अपना-अपना मक़सद है और हर कोई अपना मक़सद हासिल करना चाहता है। ऐसे हालात में ज़रूरी है कि हम इन हकीकतों को पहचानें और इनका ख़्याल रखते हुए ही अपना लक्ष्य पाने की कोशिश करें।

ज़िंदगी का सबसे बड़ा राज़ हकीकत को स्वीकार करना है। जो इंसान हकीकत को स्वीकार करता है, वह साबित करता है कि जिस तरह वह अपनी 'है' (मौजूदा हालात) को जानता है, उसी तरह वह अपनी 'नहीं' (कमियों और सीमाओं) से भी वाकिफ़ है। एक तरफ़ अगर वह जानता है कि कौन-सी चीज़ उसके लिए हासिल करने लायक है, तो साथ ही वह यह भी जानता है कि कौन-सी चीज़ उसके लिए हासिल करने लायक नहीं है। वह शुरुआत और अंत के फ़र्क़ को जानता है। उसे पता है कि उसे अपना पहला क़दम कहाँ से उठाना है और वह कौन-सी जगह है, जहाँ वह आख़िरकार पहुँचना चाहता है।

हकीकत को स्वीकार करना बुज़दिली नहीं है; हकीकत को स्वीकार करना सबसे बड़ी बहादुरी है। हकीकत स्वीकार करके इंसान बेइज़्जत नहीं होता, बल्कि इज़्जत की सबसे ऊँची मंज़िल पा लेता है। जो शाख्स हकीकत को नहीं स्वीकार करता, वह ग़लतफ़हमियों और ख़्याली पुलावों में जी रहा होता है। इसके उलट जो शाख्स हकीकत को स्वीकार करता है, वह साबित करता है कि उसने इन ख़्याली दुनिया के जाल को तोड़ दिया है। वह असल हकीकत की दुनिया में जी रहा है। वह चीज़ों को वैसे ही देख रहा है, जैसी कि वे वास्तव में हैं।

चीज़ों को उनकी असली शक़्ल में देखना ही समझदारी की शुरुआत है।

जिस इंसान में यह क्राबिलियत होती है, वही कामयाबी की आखिरी सीढ़ी तक पहुँच पाता है। जिस इंसान में यह क्राबिलियत नहीं होती, वह या तो अपनी मंज़िल की तरफ़ बढ़ना ही शुरू नहीं कर पाता और अगर बढ़ना शुरू भी कर दे, तो बीच रास्ते में ही अटक जाता है। वह कभी भी अपनी आखिरी मंज़िल तक नहीं पहुँच पाता।



इंसान की शख्सियत



एक बरतन में पानी है। उसमें से एक बूँद टपकी। अगर यह बूँद बदबूदार है, तो इसका मतलब है कि बरतन का सारा पानी बदबूदार है। पानी की एक बूँद पानी के पूरे भंडार की प्रतिनिधि है। पानी की एक बूँद जैसी है, समझ लीजिए कि सारा पानी वैसा ही होगा।

यही मामला इंसान का भी है। हर इंसान मानो पानी का एक भंडार है। इस भंडार से बार-बार उसकी बूँदें टपकती रहती हैं। इन बाहर दिखने वाली बूँदों में आप देख सकते हैं कि अंदर का इंसान कैसा होगा।

अगर आप किसी आदमी से बात करें और बातचीत के दौरान उसकी जुबान से एक कड़वा बोल निकल जाए; अगर आप किसी के साथ कोई लेन-देन करें और उसमें वह कोई कमजोरी दिखाए; अगर आपका किसी के साथ सफ़र पर हों और सफ़र में उसकी तरफ़ से कोई बुरा बरताव सामने आए, तो यह इस बात का पक्का सबूत है कि वह आदमी अच्छा इंसान नहीं है।

इंसान एक पूरा-का-पूरा संग्रह है, जैसे बरतन का पानी एक पूरा संग्रह होता है। अगर किसी इंसान से कोई कमजोरी ज़ाहिर होती है, तो वह उसकी शख्सियत की कोई अलग या अपवाद वाली घटना नहीं होगी, बल्कि वह उसकी पूरी शख्सियत का इज़हार होगी। वह एक ऐसा अक्स होगा, जिसमें उसकी पूरी शख्सियत झलक रही होगी। अगर कोई आदमी एक मामले में कमजोर साबित होता है, तो समझ लीजिए कि वह हर मामले में कमजोर है। एक मामले में भरोसे के लायक नहीं रहने के बाद एक इंसान खुद को हर मामले में भरोसे के लायक नहीं साबित कर देता है।

इस क्रायदे में सिर्फ़ एक अपवाद है और वह है उस इंसान का, जो खुद का हिसाब-किताब करता हो। जिसके अंदर अपने कर्मों का लेखा-जोखा रखने की क्राबिलियत ज़िंदा हो। जो बार-बार अपने अंदर झाँककर देखता हो कि उसने क्या सही किया और क्या ग़लत किया। उसकी जुबान ने किस मौक़े पर इंसान की बात बोली और किस मौक़े पर वह इंसान से हट गई।

अगर कोई शाख्स किसी अनुभव में ग़लत साबित होता है, उसके बाद उसे अपनी ग़लती का एहसास होता है और वह आपसे माफ़ी माँगता है, तो समझ लीजिए कि वह सही इंसान है। वह ग़लती करके उसे सुधारना जानता है, लेकिन अगर किसी का हाल यह हो कि उससे कोई ग़लत बोल या काम हो जाए, उसके बाद उसकी अंतरात्मा उसे न सताए, उसके अंदर आत्म-निरीक्षण की भावना न जागे और उसकी जुबान माफ़ी माँगने के लिए न खुले, तो ऐसा इंसान बिलकुल बेकार इंसान है। वह इस लायक नहीं है कि उस पर किसी भी मामले में भरोसा किया जा सके।



ग़लती-पर-ग़लती



अगर कोई इंसान अपनी ग़लती नहीं मानता, तो वह हमेशा दूसरे को ग़लत साबित करने की कोशिश करता है, ताकि दूसरे को बुरा दिखाकर अपनी बुराई पर पर्दा डाल सके।

एक आदमी बेरोज़गार था। उसके दोस्त ने कहा, “तुम कोई कारोबार शुरू करो।” आदमी ने कहा, “मेरे पास पूँजी नहीं है।” दोस्त ने कहा, “अगर तुम किसी तरह पाँच हजार रुपये का इंतज़ाम कर लो, तो मैं तुम्हें पाँच हजार रुपये उधार दे दूँगा। फिर तुम दस हजार रुपये से अपना काम शुरू कर लेना।” आदमी ने कहीं से पाँच हजार रुपये जुटा लिये। इसके बाद जब उसने दोस्त से वादे के मुताबिक़ पैसे माँगे, तो दोस्त ने बहाना बना दिया। इसके बाद उस दोस्त का यह हाल हो गया कि वह उस आदमी की हमेशा बुराई करता रहता। हर मौक़े पर उसे ग़लत साबित करने की कोशिश करता।

दोस्त ऐसा क्यों करता था? जवाब यह है कि अपने अपराध-बोध को दूसरे पर थोपने के लिए। यह दिखाने के लिए कि “मैं पैसे देने के लिए तैयार तो था, मगर यह आदमी इस लायक नहीं था ही कि उसे पैसे दिए जाते। उसकी अपनी नाकामी ने उसे पैसों से महरूम रखा, मेरी कोताही ने नहीं।” इंसान या तो अपनी गलती मानेगा या दूसरे को गलत कहेगा। वह एक साथ दोनों से बच नहीं सकता।

ऐसा आदमी खुद समझता है कि वह होशियारी कर रहा है, जबकि हकीकत यह है कि वह अपने एक गुनाह को दो गुनाह बना रहा है। पहले दौर में दोस्त सिर्फ वादा-खिलाफी का मुजरिम था, अब वह झूठा इल्जाम लगाने का भी मुजरिम बन गया।

जब भी इंसान से कोई गलती हो, तो सबसे अच्छी बात यह है कि वह उसे कुबूल कर ले। गलती कुबूल करने से बात वहीं खत्म हो जाती है, मगर जब इंसान गलती कुबूल नहीं करता, तो जरूर ऐसा होगा कि वह दूसरे को गलत साबित करने की कोशिश करेगा और इस तरह गलती पर गलती करता चला जाएगा। इंसान या तो खुद को गलत मानकर शांत होता है या दूसरे को गलत साबित करके। अगर वह पहला काम नहीं करेगा, तो उसे दूसरा काम जरूर करना पड़ेगा और दूसरा काम पक्के तौर पर उसके लिए पहले से ज्यादा बुरा होगा।

गलती करना इंसानी कमजोरी है, मगर झूठा इल्जाम लगाना बगावत है और कमजोरी के मुकाबले में बगावत यकीनन ज्यादा बड़ा गुनाह है।

गलती मान लेने से

एक प्रिंटिंग प्रेस ने एक बार एक बड़े संस्थान के लिए किताब छापी। किताबों की संख्या पाँच हजार थी। जब किताब छपकर तैयार हो गई और संस्थान में पहुँची, तो संस्थान के मैनेजर का फ़ोन आया। वे कह रहे थे, “आप तुरंत यहाँ आकर मुझसे मिलिए।” प्रेस का मालिक जब पहुँचा, तो संस्थान का मैनेजर उस पर बरस पड़ा। उसने छपी हुई किताब की कुछ कॉपी दिखाते हुए कहा, “यह देखिए, इसकी कटिंग कितनी गलत हुई है!”

प्रेस के मालिक ने देखा, तो सचमुच कटिंग तिरछी हो गई थी, जिसकी वजह से एक तरफ़ का कोना ज्यादा निकला हुआ था। प्रेस के मालिक ने देखा और चुप रहा। दूसरी ओर संस्थान का मैनेजर लगातार गुस्सा होता जा रहा था। आखिरकार जब उसने अपने सारे शब्द खत्म कर दिए, तो प्रेस के मालिक ने

गंभीरता से कहा, “आप इतना परेशान क्यों हैं? नुक़सान तो हमारा हुआ है, हमें परेशान होना चाहिए।”

“क्या मतलब, आपका नुक़सान कैसा?”

“ज़ाहिर है, मैं आपको किताब इस हालत में नहीं दे सकता। मैं इसे वापस ले जाऊँगा और दोबारा आपके लिए दूसरी किताब छापकर दूँगा। यह मेरी ज़िम्मेदारी है। चाहे मुझे कितना भी नुक़सान क्यों न हो, मुझे आपको सही काम देना है।”

प्रेस के मालिक के मुँह से ये शब्द निकलते ही संस्थान के मैनेजर का लहजा अचानक बदल गया। वही शख्स जो पहले गुस्से में बोल रहा था, अब उसका रवैया हमदर्दी-भरा हो गया। ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि प्रेस वाले ने अपनी ग़लती मान ली थी। संस्थान के मैनेजर को आम रिवाज के मुताबिक़ इसकी उम्मीद नहीं थी, लेकिन जब उसने देखा कि वह न सिर्फ़ अपनी ग़लती मान रहा है, बल्कि उसकी पूरी भरपाई करने के लिए तैयार है, तो उसका प्रभावित होना बिलकुल स्वाभाविक था।

“नहीं, आप इतना नुक़सान क्यों उठाएँ?” उसने अपना अंदाज़ बदलते हुए कहा।

जब प्रेस के मालिक ने देखा कि मैनेजर का दिल नरम पड़ चुका है, तो उसने मैनेजर से कहा, “एक उपाय समझ में आता है। आप मुझे कुछ किताबें दे दीजिए। मैं कोशिश करता हूँ। अगर कामयाबी मिल गई, तो सब किताबें दोबारा छापने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी।”

मैनेजर ने कहा, “बड़े शौक़ से, आप ज़रूर कोशिश कीजिए।”

इसके बाद प्रेस का मालिक किताब की दस कॉपी लेकर वापस आ गया। उसने एक अच्छी मशीन में ध्यान से कटिंग करवाकर किताब के चारों कोने दोबारा ठीक करवाए। अब प्रेस का मालिक इसे लेकर संस्थान के मैनेजर के पास गया। मैनेजर उसे देखकर खुश हो गया। उसने कहा, “बिलकुल ठीक है, आप सभी किताबें इसी तरह ठीक करा दीजिए।”

“ग्राहक की नज़र में जो ग़लती एक इंच की होती है, मैं उसे एक फुट के बराबर मानने के लिए तैयार रहता हूँ,” प्रेस के मालिक ने कहा, “यह दरअसल किसी भी कारोबार में कामयाबी के लिए बेहद ज़रूरी है। ग्राहक को संतुष्ट करके आप ग्राहक को हर चीज़ पर राज़ी कर सकते हैं।”

“बल्कि मेरा तो यह हाल है कि अगर मेरे काम में कोई गलती हो गई है और वह मेरी नज़र में आ जाती है, तो मैं खुद ही ग्राहक को बता देता हूँ कि मुझसे फ़र्लाँ गलती हो गई है। अब भरपाई का जो भी तरीक़ा बताइए, मैं उसके लिए तैयार हूँ।” प्रेस के मालिक ने आगे कहा, “इसका नतीजा यह होता है कि ग्राहक को हमदर्दी हो जाती है और बिना किसी नाखुशगवारी के मामला ख़त्म हो जाता है।”

वजह खुद अपने अंदर

नई दिल्ली में संसद के सेंट्रल हॉल में एक क्रिस्सा सुनाया गया कि भारत के राष्ट्रपति ज्ञानी ज़ैल सिंह अपने ऑपरेशन के लिए अमेरिका गए। वे टेक्सास के उसी अस्पताल में थे, जहाँ उनके पहले राष्ट्रपति संजीवा रेड्डी का भी इलाज हुआ था। जब उन्हें ऑपरेशन थिएटर में ले जाया गया, तो मुख्य सर्जन ने उनसे पूछा, “क्या आप तैयार हैं?” ज्ञानी ज़ैल सिंह ने जवाब में कहा, “नहीं, मैं रेड्डी नहीं हूँ मैं ज़ैल सिंह हूँ।” (हिंदुस्तान टाइम्स; 4 दिसंबर, 1982)

पूरी तरह मुमकिन है कि यह कोई असली वाक़या न हो, बल्कि सिर्फ़ एक मज़ाक़ हो, मगर सवाल यह है कि किसी शख्स ने उनके बारे में ऐसा मज़ाक़ बनाने की हिम्मत कैसे की? इसकी वजह सिर्फ़ यह है कि ज्ञानी ज़ैल सिंह के बारे में यह मशहूर है कि उन्हें अंग्रेज़ी भाषा कम आती है। अगर टेक्सास के ऑपरेशन टेबल पर राधाकृष्णन या जवाहरलाल नेहरू होते, तो किसी मज़ाक़िया को ऐसा मज़ाक़ गढ़ने की हिम्मत नहीं होती।

बाहर की दुनिया आपको उतना ही जानती है, जितना आपने उसे बताया है और आपकी जो तस्वीर उसके दिमाग़ में है, उसी के मुताबिक़ वह आपके साथ सलूक करती है। अगर दूसरों से आपको बुरे बरताव का सामना करना पड़े, तो दूसरों को बुरा समझने के बजाय खुद अपने अंदर उसकी वजह ढूँढिए, क्योंकि अपनी कमी को दूर करके आप ज़्यादा बेहतर तरीक़े से दूसरों के बुरे बरताव से बच सकते हैं।

यूनान के एक कलाकार के बारे में एक कहानी मशहूर है कि उसने एक

आदमी की तस्वीर बनाई, जिसके हाथ में अंगूर का एक गुच्छा था। उसने यह तस्वीर बाज़ार में रख दी। उसके दोस्त ने बाद में उसे बधाई देते हुए कहा, “तुमने अंगूर का गुच्छा इतना असली जैसा बनाया है कि चिड़ियाँ उसे सचमुच का समझकर उस पर चोंच मारती हैं।” कलाकार ने जवाब दिया, “मैंने आदमी की तस्वीर बनाने में ग़लती कर दी, नहीं तो चिड़ियाँ इस क्रूर हिम्मत ही नहीं करतीं।”

फिर कलाकार ने दूसरी तस्वीर बनाई। इस तस्वीर में भी एक आदमी अंगूर का गुच्छा लिये हुए था। अंगूर का गुच्छा फिर से इतना हक्रीक्री लग रहा था कि चिड़ियाँ उसे देखकर उसके पास आतीं, मगर अब उनमें उन्हें चोंच मारने की हिम्मत नहीं होती थी, क्योंकि जो आदमी अंगूर का गुच्छा लिये हुए था, उसकी आँखें इतनी डरावनी और गुस्से वाली थीं कि उन्हें देखते ही चिड़ियाँ वापस लौट जाती थीं।

कनफेशन नहीं

नई दिल्ली के एक परिवार को एक तार (टेलीग्राम) मिला। उसका मेसेज था— ‘नानी एक्सपायर्ड’ यानी नानी का देहांत हो गया। यह तार पढ़कर परिवार के सभी लोग बहुत दुखी हो गए। पूरा परिवार तुरंत उस जगह के लिए रवाना हो गया, जहाँ नानी रहती थीं और जहाँ से तार आया था। ये लोग घबराए हुए और काफ़ी पैसा खर्च करके जब उस जगह पहुँचे, तो वहाँ नानी जीवित और तंदुरुस्त मिलीं।

पता चला कि तार का असल मेसेज ‘नानी रीचर्ड’ (नानी पहुँच गई) था, लेकिन मिलने वाले क्लर्क की ग़लती से यह ‘नानी एक्सपायर्ड’ (नानी का देहांत हो गया) बन गया। (टाइम्स ऑफ़ इंडिया; 6 दिसंबर, 1983)

तारघर (टेलीग्राम ऑफ़िस) को इस दुखद ग़लती के बारे में आगाह किया गया, लेकिन नतीजा, अखबार के शब्दों में, यह हुआ—

“डाक-तार विभाग ने अपनी लापरवाही नहीं मानी। उसने सिर्फ़ इतना कहा कि अगर इसकी वजह से कोई तकलीफ़ हुई हो, तो उसे इसका अफ़सोस है।” (द टाइम्स ऑफ़ इंडिया; 7 दिसंबर, 1985)

ऊपर वाला उदाहरण सिर्फ़ तार विभाग का उदाहरण नहीं है। आज के वक्रत में लगभग सभी लोगों का यही हाल है। “मैंने ग़लती की”— यह सिर्फ़ तीन शब्दों का एक वाक्य है, मगर आज की दुनिया में इस तीन शब्द वाले वाक्य को बोलने वाले चार इंसान भी मुश्किल से मिलेंगे। लोगों की डिक्शनरी में सिर्फ़ ये शब्द हैं कि “तुम ग़लत हो।” लोगों की डिक्शनरी इन शब्दों से खाली है कि “मैं ग़लत हूँ।” आज का इंसान किसी भी क्रीमत पर अपनी ग़लती नहीं मानता, भले ही उसे इसके लिए हकीकत को ही झुठलाना पड़े। भले ही एक ग़लती न मानने की कोशिश में वह और अनगिनत ग़लतियाँ करता चला जाए।

ग़लती को मानना

एक उर्दू की क्लास में एक टीचर ग़ज़ल पढ़ा रहे थे। इस दौरान एक मिसरा (पंक्ति) आया, जो किताब में इस तरह छपा हुआ था—

पंज-ए-सुल से खुलेंगे उक्रद-ए-गेसू-ए-दोस्त

टीचर ने इस मिसरे की व्याख्या इन शब्दों में की— ‘पंज-ए-सुल’ का मतलब है— एक ‘सुल’ नाम के जानवर का पंजा। ‘खुलेंगे’ यानी खुल जाएँगे। ‘उक्रदा’ यानी गिरह (गाँठ)। ‘गेसू-ए-दोस्त’ यानी प्रेमिका के बाल। मिसरे का मतलब यह है कि माशूक के बाल ‘सुल’ के पंजे से खुल जाएँगे।

स्टूडेंट्स परेशान थे, क्योंकि टीचर की व्याख्या के बावजूद मिसरे का मतलब साफ़ नहीं हो पा रहा था। उन्होंने कविता के शब्दों को बस साधारण गद्य में दोहरा दिया था। इतने में क्लास का एक होशियार स्टूडेंट खड़ा हुआ। उसने कहा—

“सर, मैं एक बात कहना चाहता हूँ।”

“कहो।”

“सर, शायद यह प्रिंटिंग की ग़लती है। मेरे ख़याल से यह ‘पंज-ए-सुल’ नहीं, बल्कि ‘पंज-ए-शुल’ है और ‘शुल’ का मतलब होता है— बेजान। कंघी इंसानी हाथ/उँगलियों जैसी दिखती है। बेजान होने की वजह से शायर ने उसे ‘पंज-ए-शुल’ (बेजान हाथ) कहा है। शायर दुख जता रहा है कि हमारी जानदार उँगलियाँ

तो माशूक की जुल्फ को सँवार नहीं सकीं और उस कंधी की खुशकिस्मती देखो, जिसकी 'उँगलियाँ' बेजान हैं— वह यानी एक बेजान हाथ— उसने माशूक की जुल्फ के उलझे बालों को खोलकर सँवार दिया।”

स्टूडेंट की इस व्याख्या के बाद क्लास के सारे स्टूडेंट्स खुश हो गए। उन्हें लगा कि टीचर के समझाने के बाद भी जो मिसरा समझ में नहीं आ रहा था, उसे इस स्टूडेंट ने आसान बना दिया है, मगर टीचर साहब अपनी हार मानने वालों में से नहीं थे। उन्होंने फ़ौरन कहा—

“सही, सही। ‘पंज-ए-सुल’ और ‘पंज-ए-शुल’ एक ही बात है।”

जब कोई बात या हकीकत सामने आ जाए और इंसान उसे स्वीकार न करे, तो यह ऐसा है, जैसे वह खुद को बड़ा और हकीकत को छोटा साबित करना चाहता है; मगर चूँकि हकीकत उसके खिलाफ़ होती है, इसलिए असल में सिर्फ़ यही होता है कि इंसान खुद छोटा बनकर रह जाता है।



स्वीकार करना



एक जवान खिलाड़ी को एक फुटबॉल टीम में शामिल होकर मैच खेलना था। संयोग से उसकी टीम हार गई। हारने के बाद उस जवान ने अपने पिता को एक चिट्ठी लिखी—

“हमारे विरोधियों को हमारी डिफेंसिव लाइन में एक बहुत कमज़ोर कड़ी मिल गई था और वह कमज़ोर कड़ी मैं ही था।”

यह कनफेस (स्वीकार) करना किसी भी इंसान के लिए सबसे बड़ी बहादुरी है और यही सारी सामूहिक तरक्की की जान भी है। हर हार ‘डिफेंसिव लाइन में किसी कमज़ोरी’ की वजह से ही होती है और इसका सबसे अच्छा इलाज इसको स्वीकार करना है। स्वीकार करने से असली मसला बिना किसी और नुक़सान के सुलझ जाता है। जो इंसान स्वीकार करता है, वह या तो अपनी कमी को समझकर खुद को मैदान से हटा लेता है और इस तरह दूसरे बेहतर लोगों को काम करने का मौक़ा देता है या फिर वह अपनी हार को एक वक़्ती मामला समझकर और ज़्यादा तैयारी में जुट जाता है, यहाँ तक कि आखिरकार कामयाब हो जाता है।

जिंदगी की सबसे बड़ी हकीकत यह है कि इंसान स्वीकार करने का मिजाज पैदा करो। ईश्वर को मानना भी एक प्रकार से स्वीकृति ही है, क्योंकि ईश्वर को मानकर इंसान खुद के मुकाबले में ईश्वर की बड़ाई को स्वीकार करता है। लोगों के हक अदा करना एक प्रकार की स्वीकृति है, क्योंकि उन पर अमल करके एक शख्स इंसानों के बीच अपनी ज़िम्मेदारियों को स्वीकार करता है। पश्चाताप भी एक एक प्रकार की स्वीकृति है, क्योंकि इसके ज़रिए इंसान इस हकीकत को मानता है कि सही वह है, जो ईश्वर के नज़दीक सही है और ग़लत वह है, जो ईश्वर के नज़दीक ग़लत है। जिंदगी के हर तरह के सुधार का राज स्वीकृति में छुपा हुआ है, क्योंकि इंसान हमेशा ग़लती करता है। अगर वह स्वीकारेगा नहीं, तो उसकी ग़लतियों को सुधारने का कोई दूसरा तरीका नहीं है।

स्वीकार करना हर तरह की तरक्की का दरवाज़ा है, मगर बहुत कम ऐसा होता है कि इंसान खुद को स्वीकार करने के लिए तैयार कर पाता है। जब भी ऐसा कोई मौका आता है, तो इंसान इसे अपनी इज़्जत का सवाल बना लेता है। वह अपनी ग़लती मानने के बजाय उस पर पर्दा डालने की कोशिश करता है। इसका नतीजा यह होता है कि खराबी बढ़ती चली जाती है, यहाँ तक कि वह वक़्त आ जाता है कि जिस ग़लती की सिर्फ़ जुबानी स्वीकृति करने से काम बन रहा था, उस ग़लती को उसे अपनी बरबादी की कीमत पर स्वीकार करना पड़ता है।



दूसरी ग़लती मत करो



एक शख्स सरकारी नौकर था। शहर में उसका अपना मकान था। जिंदगी आराम से गुज़र रही थी। इसके बाद उसे अपनी बेटी की शादी करनी पड़ी। शादी के लिए उसने अपने डिपार्टमेंट से एक बड़ा क़र्ज़ा ले लिया। बेटी की शादी धूमधाम से हुई, मगर इसके बाद एक नई मुसीबत सामने आ गई। उसकी तनख्वाह से क़र्ज़ की किस्त कटने लगी। इसकी वजह से उसे महीने में मिलने वाली रक़म लगभग आधी रह गई। खर्च चलना मुश्किल हो गया।

मियाँ-बीवी ने सलाह की कि मकान का एक हिस्सा किराये पर दे दें और किराये से जो पैसा आए, उसे मिलाकर गुजारा करें। उन्होंने एक बड़ा कमरा और उससे जुड़ा बाथरूम अपने लिए रखा और बाक़ी का पूरा मकान किराये पर दे दिया।

इस तरह पाँच साल बीत गए। इसके बाद किरायेदार की नीयत ख़राब हो गई। उसने सोचा कि पूरे मकान पर क़ब्ज़ा कर ले। उसने शादी का बहाना बनाकर मकान मालिक से कहा, “आप दो हफ़्ते के लिए अपना कमरा हमें दे दीजिए, ताकि हम अपने मेहमानों को ठहरा सकें। दो महीने बाद हम आपका कमरा ख़ाली कर देंगे।” किरायेदार ने उनके लिए वक़्ती तौर पर रहने की जगह का इंतज़ाम भी कर दिया। मकान मालिक उसकी बात में आ गए और कमरा छोड़कर चले गए।

बाद में किरायेदार ने उनका सारा सामान उनके पास भिजवा दिया। दो हफ़्ते बाद जब मकान मालिक लौटे, तो उन्हें समझ में आया कि उन्हें धोखा दिया गया है।

यह कहानी हमें यह सिखाती है कि पहली ग़लती को समझदारी से सँभालना चाहिए, क्योंकि वही ग़लती अगर दोहराई जाए, तो दूसरी बड़ी समस्या बन जाती है।

देने के बाद पाना

अंग्रेज़ी की एक कहावत है— “देने में ही हमें पाना होता है।” इसकी एक मिसाल अक्टूबर, 1986 में ब्रिटेन की रानी का चीन का दौरा है। यह किसी ब्रिटिश शाही परिवार के सदस्य की चीन की पहली ऐतिहासिक यात्रा थी। चीन और ब्रिटेन एक सौ साल से पारंपरिक प्रतिद्वंद्वी (rival) बने हुए थे। इस दौर से ब्रिटेन को यह कामयाबी मिली कि चीन के साथ डेढ़ अरब डॉलर सालाना के एक व्यापार समझौते की पुष्टि हो गई।

यह फ़ायदा देने के बाद ही मिला। ‘टाइम’ मैगज़ीन (17 अक्टूबर, 1986) ने इस दौर की रिपोर्ट करते हुए ये महत्वपूर्ण शब्द लिखे—

“क्वीन एलिज़ाबेथ-II बहुत समय से पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ़ चाइना की यात्रा की इच्छा जता रही थीं, लेकिन जब तक ब्रिटेन चीन के एक हिस्से क्राउन कॉलोनी हांगकांग पर शासन करता रहा, ऐसी यात्रा

असंभव बनी रही। 1984 के चीन-ब्रिटेन समझौते, जिसके तहत 1997 में हांगकांग चीन को वापस किया जाना था, ने प्रवेश की क्रीमत चुका दी।”

ब्रिटेन ने हांगकांग के मामले में चीन की माँग मान ली। इसके बाद ही यह मुमकिन हुआ कि उसके लिए चीन में व्यापार का दरवाज़ा खुले। हालाँकि हांगकांग को चीन को वापस करना एक बेहद मुश्किल मामला था। ‘टाइम’ मैगज़ीन के शब्दों में, इसका मतलब यह था कि ब्रिटेन के ताज से एक हीरा हमेशा के लिए अलग हो जाएगा। यही मौजूदा दुनिया का क्रानून है। यहाँ दूसरों से लेने के लिए दूसरों को देना पड़ता है। जो लोग बिना दिए सिर्फ़ एकतरफ़ा तरीके से दूसरों से लेना चाहते हैं, उनके लिए इस मौजूदा दुनिया में कुछ भी पाना मुक़द्दर में नहीं है।

रचनात्मक अल्पसंख्यक



अर्नाल्ड टॉयनबी (1852-1983) एक अंग्रेज़ इतिहासकार थे। सन् 1954 में उन्होंने अपनी मशहूर किताब ‘ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री’ छापी। यह किताब बारह जिल्दों में है और इसमें 21 सभ्यताओं का दार्शनिक अध्ययन किया गया है।

इस किताब में टॉयनबी ने दिखाया है कि किसी क्रौम का उभरना इस बात पर निर्भर नहीं करता कि वह किसी श्रेष्ठ नस्ल से है या उसे बेहतर भौगोलिक हालात मिले हैं, बल्कि इसका असर किसी क्रौम की उस क्राबिलियत पर निर्भर करता है कि आने वाली चुनौती का जवाब वह कैसे देती है। इतिहास बताता है कि इस दुनिया में हमेशा वही क्रौम उभरती हैं, जो ख़ास मुश्किलें पैदा होने पर ख़ास कोशिश कर सकें। सभ्यताओं के उभरने के बारे में टॉयनबी की व्याख्या इस सिद्धांत पर आधारित है कि जो चीज़ लोगों को सभ्यता की कामयाबी हासिल करने के क्राबिल बनाती है, वह मुश्किल हालात हैं, न कि आसान हालात—

“किसी सभ्यता का उदय ऐसे कारकों का नतीजा नहीं था, जैसे कि श्रेष्ठ नस्ली गुण या भौगोलिक वातावरण, बल्कि यह लोगों की उस चुनौती के प्रति प्रतिक्रिया थी जो विशेष कठिनाई की स्थिति में उन्हें एक अभूतपूर्व प्रयास करने

के लिए प्रेरित करती है। आसान के बजाय मुश्किल परिस्थितियों ने ही लोगों को सांस्कृतिक उपलब्धि के लिए प्रेरित किया।” (4/659)

टॉयनबी का कहना है कि सभ्यता हमेशा एक रचनात्मक अल्पसंख्यक (creative minority) पैदा करती है। यह असल में चुनौती का जवाब देने की प्रक्रिया (challenge-response mechanism) है, जो किसी क्रौम को आगे बढ़ाती है और उसे दुनिया का नेता बनाती है। दूसरे शब्दों में, इस दुनिया में वंचित होना कोई बुरी बात नहीं है, क्योंकि वंचित होना इंसान के अंदर हासिल करने की चाह जगाता है और इस तरह उसे ज़्यादा सक्रिय बनाकर उसके लिए ज़्यादा बड़ी कामयाबी का मौक़ा पैदा कर देता है। मुश्किल हालात में फँसी हुई एक क्रौम अगर प्रतिक्रिया की मानसिकता में फँस जाए, तो वह अपने हालात से सिर्फ़ शिकायत और विरोध की भावना में जियेगी, लेकिन अगर वह हालात से ऊपर उठकर सकारात्मक तरीक़े से सोचे, तो उसे नज़र आएगा कि उसके मुश्किल हालात उसे नई शानदार कामयाबी की सीढ़ी मुहैया करा रहे हैं।



जानकारी नहीं, बल्कि मानसिक रुझान



नोबेल पुरस्कार पाना विज्ञान की दुनिया में सबसे ऊँचे दर्जे की कामयाबी का एक माना-मनाया पैमाना माना जाता है। यह इनाम किसी को कैसे मिलता है? रसायन विज्ञान के नोबेल पुरस्कार विजेता एच.ए. क्रेब्स ने इसका अध्ययन किया है। उनका कहना है कि एक श्रेष्ठ वैज्ञानिक बनने के लिए बेहतरीन उपकरणों वाली प्रयोगशालाओं और नवीनतम साहित्य वाली पुस्तकालयों से भी कहीं ज़्यादा ज़रूरी बात यह है कि कुछ समय के लिए किसी बड़े वैज्ञानिक व्यक्तित्व का साथ और सान्निध्य मिल जाए। वे लिखते हैं, “अगर मुझे अपनी जवानी के शुरुआती चार साल ओटो वार्बर्ग जैसे वैज्ञानिक का साथ नहीं मिलता, तो मेरे अंदर विज्ञान की सही रुचि पैदा हो पाना नामुमकिन था।”

क्रेब्स विभिन्न बड़े वैज्ञानिकों के कथन पेश करते हुए बताते हैं कि चोटी के वैज्ञानिकों की संगत जो सबसे बड़ी चीज़ किसी को देती है, वह वैज्ञानिक तथ्यों

और वैज्ञानिक तरीकों के बारे में जानकारी का ढेर नहीं है। ये दोनों चीजें तो कहीं से भी हासिल की जा सकती हैं। जो बात वास्तव में फ़र्क पैदा करती है, वह असल में 'दृष्टिकोण' है, जो एक शिक्षक अपने शिष्य को देता है। यही 'दृष्टिकोण', जिसे वह 'सामान्य वैज्ञानिक भावना' कहता है, किसी व्यक्ति को एक सच्चा विद्वान बनाती है। वे लिखते हैं—

“सबसे बड़ी बात यह है कि एक महान शिक्षक या वैज्ञानिक अपने शिष्य के दिमाग में तथ्यों के बारे में जानकारी से कहीं अधिक एक मानसिक रवैया स्थानांतरित करता है। इस मानसिक रवैये में विशेष रूप से दो बातें बहुत महत्वपूर्ण हैं। एक है विनम्रता और दूसरी है उत्साह।”

विनम्रता और उत्साह वे दो सबसे बड़े सीढ़ियाँ हैं, जिनसे गुजरकर इंसान ऊँची तरक्की के मुकाम तक पहुँचता है। उत्साह इंसान को उकसाता है कि वह कहीं रुके बिना अपनी यात्रा जारी रखे। उत्साह इंसान के अंदर जिज्ञासा की भावना जगाता है, जिसकी वजह से वह चीजों की हकीकत जानने की खोज में लगा रहता है। हालाँकि सिर्फ जिज्ञासा का उत्साह ही काफ़ी नहीं है। उसी के साथ विनम्रता भी बेहद ज़रूरी है। विनम्रता का मतलब है अपने आपको परम सत्य या वास्तविकता से छोटा समझना। ऐसा इंसान ग़लती का पता चलते ही फ़ौरन उसे स्वीकार कर लेता है। वह किसी बात को मानने से कभी इसलिए नहीं रुकता कि इससे उसकी प्रतिष्ठा कम हो जाएगी। वह सच को सबसे ज्यादा महत्व देता है, न कि किसी और चीज़ को।

एक के बाद दूसरा

एक मुसाफ़िर स्टेशन पहुँचा, तो पता चला कि उसकी ट्रेन जा चुकी है। उसकी घड़ी ठीक नहीं थी, इसलिए वह दस मिनट लेट हो गया। इतने में ट्रेन आकर चली गई। “बाबू जी, फ़िक्र न कीजिए,” एक कुली ने कहा, “दो घंटे बाद एक और गाड़ी आ रही है, आप उससे चले जाना। इतनी देर प्लेटफ़ॉर्म पर आराम कर लीजिए।” मुसाफ़िर ने कुली की सलाह मान ली और दो घंटे इंतज़ार करने के बाद अगली ट्रेन पर चढ़कर अपनी मंज़िल की तरफ़ रवाना हो गया।

हर मुसाफ़िर जानता है कि अगर एक ट्रेन छूट जाए, तो जल्दी ही दूसरी ट्रेन मिल जाती है, जिससे वह अपना सफ़र जारी रख सकता है। यह प्लेटफ़ॉर्म का सबक है, मगर ज़्यादातर लोग इस जाने-पहचाने सबक को तब भूल जाते हैं, जब ज़िंदगी की दौड़ में कोई मौक़ा उनके हाथ से निकल जाता है। पहली बार नाकामी का सामना करने के बाद वे निराश हो जाते हैं या विरोध और शिकायत में लग जाते हैं। जबकि सही बात यह है कि वे अपने मक़सद के लिए एक नई योजना बनाएँ; वे 'अगली ट्रेन' से चलकर अपनी मंज़िल पर पहुँच जाएँ।

अगर आपका किसी शख्स से विवाद हो गया हो और टकराव का तरीक़ा उसे 'सही' करने में नाकाम रहा हो, तो आप उसके बारे में अपना रवैया बदल दीजिए। उसे नरमी के तरीक़े से प्रभावित करने की कोशिश कीजिए। पूरी उम्मीद है कि पुराने तरीक़े ने जिसे आपका दुश्मन बना दिया था, नए तरीक़े के बाद वह आपका एक काम आने वाला दोस्त साबित हो। अगर आप कहीं नौकरी करते हैं और आपकी नौकरी छूट जाती है, तो आप उसके पीछे न पड़ें; बल्कि दूसरे किसी क्षेत्र में अपने लिए रोज़गार ढूँढने की कोशिश करें। हो सकता है कि नया काम आपके लिए पहले से ज़्यादा फ़ायदेमंद साबित हो। कोई आपका हक़ नहीं देता और आप उससे लड़ाई शुरू कर देते हैं। साल बीत जाते हैं और आप अपने हक़ हासिल करने में कामयाब नहीं होते। आप उस ख़याल को छोड़ दीजिए और अपनी मेहनत पर भरोसा कीजिए। बहुत मुमकिन है कि अपनी मेहनत को काम में लाकर आप खुद वह चीज़ हासिल कर लें, जो आप दूसरों से माँगकर पाना चाहते थे।

ज़िंदगी की ज़्यादातर मुश्किलें संकीर्ण सोच की वजह से पैदा होती हैं। अगर इंसान अपने दिमाग़ में खुलापन पैदा कर ले, तो उसे पता चलेगा कि यहाँ सफ़र के लिए एक से ज़्यादा 'गाड़ियाँ' मौजूद हैं। जो चीज़ वह टकराव के ज़रिए हासिल नहीं कर सका, उसे वह आपसी जुड़ाव के ज़रिए हासिल कर सकता था। जहाँ हक़ माँगने का तरीक़ा मक़सद तक पहुँचाने में नाकाम रहा, वहाँ वह मेहनत का तरीक़ा अपनाकर अपनी मंज़िल तक पहुँच सकता था। जिन लोगों की बातों पर गुस्सा होकर वह उन्हें जीत नहीं सका, वह उनकी बातों पर सब्र करके उन्हें जीत सकता था।



एक व्यापारिक राज



इलाके में कई होटल हैं। मैं दस साल से उन्हें देख रहा हूँ, मगर उनमें से सिर्फ एक ही होटल ऐसा है, जो इस दौरान लगातार आगे बढ़ता गया है। बाक़ी सारे होटल आज भी ठीक वही हैं, जहाँ दस साल पहले थे।

एक दिन मैंने उस कामयाब होटल के मालिक से पूछा कि उसकी तरक्की का राज क्या है? उसने बताया, “यह बहुत आसान है। दूसरे होटल वाले जो चीज़ किलो के हिसाब से ख़रीदते हैं, वही हम बोरियों के हिसाब से ख़रीदते हैं। हर बार ख़रीदारी करते समय हम पूरे बाज़ार का जायज़ा लेते हैं और वह चीज़ वहाँ से ख़रीदते हैं, जहाँ वह सबसे सस्ती मिलती है। बड़ी मात्रा में ख़रीदारी और नक़द भुगतान की वजह से वे चीज़ें हमारे लिए और भी सस्ती हो जाती हैं।” फिर वह हँसते हुए बोला, “आप ग्राहक से कमाई नहीं करते; आपकी कमाई बाज़ार से होती है।”

आम तौर पर दुकानदारों का यह रवैया होता है कि जब कोई ग्राहक दिखाई देता है, तो वे उसकी जेब से ज़्यादा-से-ज़्यादा पैसा निकाल लेना अच्छा धंधा समझते हैं। यह धंधा नहीं, बल्कि लूट है और अगर कोई दुकानदार लोगों को ‘लूटने’ के लिए मशहूर हो जाए, तो उसके पास ख़रीदारी करने कौन आएगा? यही वजह है कि ऐसे दुकानदार ज़्यादा तरक्की नहीं कर पाते।

सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि जब आप सामान ख़रीदें, तो उसे सबसे कम क़ीमत पर हासिल करने की कोशिश करें। इस तरह ग्राहक को उस चीज़ को आम दर पर देने के बाद भी आपको अच्छा मुनाफ़ा हो जाएगा।

यह नियम हर तरह के व्यापार के लिए सही है। हर धंधे में ऐसा होता है कि दुकानदार जो चीज़ अपने ग्राहक को बेचता है, वह वही चीज़ है, जो वह ख़ुद कहीं और से ख़रीदता है। यह ख़रीदारी एक चरण में हो सकती है या कई चरणों में। हमेशा कई विकल्प मौजूद होते हैं। अकसर मेहनत और दौड़-धूप से बचने के लिए दुकानदार अपना ज़रूरी सामान आसान या पास के किसी स्रोत से हासिल कर लेते हैं, लेकिन अगर कोई मेहनत और दौड़-धूप करने को तैयार हो, तो उसी चीज़ को कम क़ीमत पर हासिल किया जा सकता है, जबकि दूसरा व्यक्ति मेहनत से बचने के लिए उसे ऊँची क़ीमत पर ख़रीद रहा होता है।

औसत दुकानदार हमेशा अपनी कम मेहनत की भरपाई ग्राहक की जेब से ज्यादा पैसा वसूल करके करना चाहता है, लेकिन इस तरह का व्यापार कभी भी बड़ी कामयाबी की वजह नहीं बनता। सबसे अच्छी व्यापारिक चाल यह है कि ग्राहक को चीजें यथासंभव सबसे वाजिब कीमत पर दी जाएँ और कमाई बढ़ाने की कोशिश उस चरण में की जाए, जब वह चीज ग्राहक तक पहुँचने से पहले हो। ज्यादा कमाई बाज़ार से होनी चाहिए, ग्राहक से नहीं।

(17 अगस्त, 1980)

बेहतरीन कामयाबी

आज की दुनिया में 'सुपर अचीवर' (बेहद कामयाब इंसान) बनने के लिए किसी जादू-भरी सलाहियत की ज़रूरत नहीं है। एक औसत इंसान भी बेहद शानदार काम कर सकता है। बस ज़रूरत इस बात की है कि इंसान जिंदगी की साधारण सच्चाइयों को समझे और उन्हें इस्तेमाल करे।

(रीडर्स डाइजेस्ट; अक्टूबर, 1986)

एक अमेरिकी लेखक ने इस पर ठीक-ठाक रिसर्च की। उनका कहना है कि उन्होंने कारोबार, राजनीति, खेल और कला की दुनिया के 90 मशहूर लोगों से बात की। उनमें से ज्यादातर ने नाकामी को 'ग़लत शुरुआत' का नतीजा बताया। निराशा उनके लिए और ज्यादा ज़िद्दी इरादे का कारण बन गई। हालात चाहे कितने भी खराब क्यों न हों, सुपर अचीवर हमेशा यही महसूस करते हैं कि ऐसे और नए रास्ते हैं, जिन्हें वे तलाश सकते हैं। उनके पास हमेशा कोई नया ख्याल होता है, जिसका वे फिर से टेस्ट कर सकते हैं।

कारोबार, राजनीति, खेल और कला के 90 नेताओं के एक अध्ययन में कई लोगों ने 'ग़लत शुरुआत' के बारे में तो बात की, लेकिन 'नाकामयाबी' के बारे में कभी नहीं। निराशा ने हौसला और बढ़ा दिया। चीजें चाहे कितनी भी मुश्किल क्यों न हों, सुपर अचीवर हमेशा महसूस करते हैं कि उनके पास तलाशने के लिए और रास्ते हैं। उनके पास आजमाने के लिए हमेशा एक और नया ख्याल होता है।

अगर आप नाकाम हो जाएँ और इस नाकामी का दोष दूसरों को दें, तो आपमें काम करने का जोश टंडा पड़ जाएगा। आप सिर्फ दूसरों के खिलाफ़ शिकायत करते रहेंगे और खुद कुछ नहीं कर पाएँगे, लेकिन अगर आप अपनी नाकामी को अपने खुद के काम की कमी का नतीजा मानें, तो आपका दिमाग़ एक नई बेहतर योजना सोचने में लग जाएगा। आप सुस्त पड़ने के बजाय पहले से भी ज्यादा सक्रिय हो जाएँगे। आप फिर से कोशिश करके हारे हुए खेल को दोबारा और भी शानदार तरीके से जीतने में कामयाब हो जाएँगे।

नाकामी की जिम्मेदारी खुद लीजिए। अगर एक तरकीब काम नहीं कर रही है, तो दूसरी तरकीब आजमाइए। आप ज़रूर बेहतरीन कामयाबी तक पहुँच जाएँगे।



शिकायत



शिकायत एक ऐसी चीज़ है, जिसकी कोई हद नहीं है। सिर्फ़ आम इंसान ही नहीं, बल्कि पैंग्वर भी बड़ी-बड़ी शिकायतों का सामना कर सकते हैं, यहाँ तक कि ईश्वर भी— हम ईश्वर की पनाह माँगते हैं— शिकायतों से अलग नहीं है। ढेर सारे लोग हैं, जो अपनी मुसीबतों के लिए हमेशा ईश्वर से शिकायत करते रहते हैं। फ़्लसफ़े में एक हमेशा चलने वाली बहस है, जिसे 'बुराई की समस्या' (Problem of Evil) कहते हैं। इसके मानने वाले कहते हैं कि या तो ईश्वर है ही नहीं और अगर है भी, तो वह पूरी तरह परफ़ेक्ट नहीं है। अगर ईश्वर परफ़ेक्ट होता, तो दुनिया में बुराई क्यों होती?

शिकायत कभी असल वजह से होती है और कभी सिर्फ़ शिकायत करने वाले के दिमाग़ की उपज होती है, इसीलिए क़ुरआन में हुक्म दिया गया है कि जब तुम किसी के खिलाफ़ कोई बात सुनो, तो उसकी छानबीन करो (सूराह अल-हुजुरात, आयत 6)। छानबीन से पता चल जाएगा कि वह बात सही थी या नहीं।

शिकायत की बहुत-सी क्रिस्में हैं। उनमें सबसे बुरी वह है, जो हीनभावना (inferiority complex) से पैदा होती है। एक इंसान खुद को बहुत बड़ा समझने लगता है। अब अगर उसका सामना किसी ऐसे इंसान से हो, जिसे ईश्वर ने उससे

ऊपर रखा हो, तो यह पहले वाले इंसान के लिए बहुत मुश्किल वक़्त होता है। आम तौर पर वह यह मान नहीं पाता कि दूसरा इंसान बड़ा है और वह छोटा है। वह अपनी बड़ाई के टूटने को बरदाश्त नहीं कर पाता। उसकी शख्सियत में दरार आ जाती है। वह अपनी बड़ाई को बचाने के लिए दूसरे इंसान को गलत साबित करने लगता है।

वह उस पर झूठा इल्जाम लगाता है। वह उसका अपमान करता है, ताकि अपनी श्रेष्ठता की भावना को तसल्ली दे सके। वह उसकी इज़्जत पर हमला करता है, ताकि उसे बेइज़्जत करके अपनी घमंडी ज़हिनियत को खुराक दे सके। वह खुद ही तरह-तरह की बातें गढ़कर उसे छोटा दिखाने की कोशिश करता है, ताकि इसके ज़रिए उसे यह एहसास हो सके कि वह खुद ही बड़ा है। अगर इंसान हक़ीक़त को स्वीकार करने के लिए तैयार रहे, तो सारी शिकायतों की जड़ कट जाए, क्योंकि इंसान हक़ीक़त स्वीकार नहीं करता, इसलिए वह शिकायत से ऊपर उठने में कामयाब नहीं हो पाता।

चोटी के लोग

अमेरिका से 1986 में एक किताब छपी थी, जिसका नाम है 'पीक परफ़ॉर्मर्स' (सबसे बेहतरीन काम करने वाले)। इस किताब में आधुनिक अमेरिका के उन लोगों का अध्ययन किया गया है, जिन्होंने ज़िंदगी के मैदान में हीरो जैसी भूमिका निभाई है। इस सिलसिले में लेखक ने एक बात लिखी है कि एक ताक़तवर मक़सद ही वह चीज़ है, जो इंसान के अंदर शानदार कोशिश की भावना जगाती है और उसे ग़ज़ब की कामयाबी तक पहुँचाती है।

1967 में अमेरिका ने इंसानों वाला पहला रॉकेट चाँद पर भेजा था। रॉकेट के लॉन्च होने से पहले इस प्रोजेक्ट पर काम कर रहे एक विशेषज्ञ, जो टीम में कंप्यूटर प्रोग्रामर था, ने एक बयान दिया। उसने देखा कि काम के दौरान कुछ ग़ैर-मामूली बात हो गई। हज़ारों औरतें और मर्द जो इस प्रोजेक्ट पर काम कर रहे थे, वे सब-के-सब अचानक सुपर अचीवर्स बन गए। उन्होंने इतना शानदार काम करना शुरू कर दिया, जैसा उन्होंने अपनी पूरी ज़िंदगी में पहले कभी नहीं किया था।

काम सिर्फ 18 महीनों में हैरतअंगेज रफ्तार से पूरा हो गया। उस शख्स ने कहा, “मैं जानना चाहता था कि हम सब लोग इतना बढ़िया काम क्यों कर रहे हैं? जब मैंने यह सवाल अपने मैनेजर के सामने रखा, तो उसने पूरब की तरफ चाँद की ओर इशारा करते हुए कहा—

लोग हज़ारों साल से वहाँ जाने का सपना देखते आए हैं और हम वह करने जा रहे हैं।”

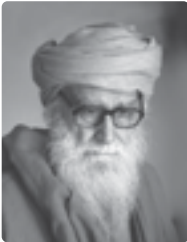
यह एक सच्चाई है कि इंसान को सबसे ज़्यादा जो चीज़ प्रेरित करती है, वह है उसके सामने किसी बड़े मक़सद का आ जाना। एक बड़ा मक़सद इंसान की छुपी हुई क़ाबिलियत को जगा देता है। वह इंसान को हर तरह की कुर्बानी देने के लिए तैयार कर देता है। वह एक आम इंसान को चोटी का इंसान बना देता है।



इंसानों की छुपी हुई ताकतों को ज़िंदगी भर पढ़ने के बाद एक महान मनोवैज्ञानिक अल्फ्रेड एडलर ने कहा कि इंसान की सबसे ग़ज़ब की ख़ूबी है— 'ना' को 'हाँ' में बदल देना।

ईश्वर ने इंसान को बेहद ख़ास क्राबिलियतों के साथ बनाया है। एक मनोवैज्ञानिक के ये शब्द उसी सच्चाई को मानते हैं। इस क्राबिलियत की सीमा यह है कि इंसान अँधेरे में भी रोशनी की एक किरण देख सकता है। वह बुरे हालात को अच्छे हालात में बदल सकता है। जब उसके पैरों तले ज़मीन खिसक जाती है, तो भी वह अपने लिए एक नया मैदान ढूँढ लेता है और उसमें मेहनत करके दोबारा अपनी मंज़िल तक पहुँच जाता है।

यह किताब इंसानी ज़िंदगी के इसी पहलू के बारे में है। यह नामुमकिन में मुमकिन को ढूँढने की एक कोशिश है। यह निराशा में आशा जगाने का एक संदेश है और शायद आज के इंसान को इसकी पहले से कहीं ज़्यादा ज़रूरत है।



मौलाना वहीदुद्दीन खान 'सेंटर फॉर पीस एंड स्पिरिचुएलिटी', नई दिल्ली के संस्थापक थे। मौलाना का मानना था कि शांति और आध्यात्मिकता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं : आध्यात्मिकता शांति की आंतरिक संतुष्टि है और शांति आध्यात्मिकता की बाहरी अभिव्यक्ति। मौलाना ने शांति और आध्यात्मिकता से संबंधित 200 से अधिक पुस्तकें लिखी हैं। विश्वशांति में अपने महत्वपूर्ण योगदान के लिए उन्हें अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान प्राप्त थी।

CPS International
centre for peace and spirituality

www.cpsglobal.org
info@cpsglobal.org

Goodword

www.goodwordbooks.com
info@goodwordbooks.com

ISBN: 978-93-49952-13-3



9 789349 952133